अवतार कथा

सभी पुस्तकों में अपनी बात कहने के लिये प्रस्तावना लिखी जाती है। हम हमारी बात कहने के लिये यह अवतार कथा कहते है। इस पुस्तक के १११ से ११८ पन्ने तक एक जन्म कथा छपी है वह है इस पुस्तक की पूर्व पर्याय की बात। मूल तो यह पुस्तक था "संशय तिमिर प्रदीप" उसका अनुवाद जिन संयोगो में करना पडा था इसकी पूरी कथा वह जन्म कथा में दी गई है। तो भी जीव का नित्यपणा एक गुण है। ऐसे अजीव भी द्रव्य है। इस नाते उनमें भी नित्यपणा का गुण है। पुस्तक द्रव्य रुप है इसलिये उसकी एक पर्याय थी गुजराती भाषा में। किन्तु हिन्दी भाषीओं के लिये यह उपयोगी न बन सकी अतः उसका बृहद रुप एक नयी पर्याय रुप यह नवीन पुस्तक का प्रकाशन आपके हस्तकमल में हम श्रद्धा के साथ पढने-पढाने को लिये और उनका प्रचार के लिये दे रहे है। आशा है कि आप शास्त्र की बात-आचार्यो की बात का पूरा समर्थन करेंगे।

यह पुस्तक प्रगट करने का विचार दो कारणों से हुआ है। ऐक तो "संशय तिमिर प्रदीप" पुस्तक अब अप्राप्य है। और दुसरा कारण है पू. आचार्य सुमतिसागरजी मुनि महाराज का उदयपुर में चातुर्मास जिसमे उन्होने तेरापंथ का खुब प्रचार कीया और बीस पंथ को जितना कटु कहने की शक्ति थी उतनी पुरी शक्ति खर्च करके नष्ट भ्रष्ट करने की कोशिश की। किन्तु वह सच नहीं था

तो भी पुराने आचार्यों का मत सही है, सत्य है, तर्क संगत है, सिरोधार्य है उसका योग्य समर्थन करके जो भ्रम उत्पन्न किया गया था उसका निरसत करन भी अनिवार्य था। ये दो कारणों से यह प्रकाशन हिन्दी में प्रगट हो रही है।

पुस्तक का विषय आप जब ग्रंथ पढेंगे तब स्पष्ट हो जायगा। एक या ज्यादा पुरुष या स्त्रीओं के कहने से जो प्राचीन है। और आर्षसंगत है वह बदल नहीं जायगा। वह तो चिरस्थायी है। हमारा प्रमाद, हमारी आलस, और हमारा ढिलापन उसमें कुछ बाधकरूप कार्य कर रहा है। इस प्रकाशन से वे सभी दुर्गुणों का नाश होगा और सत्य वस्तु का सही प्रकाश सर्वत्र जगमगाती रश्मिओं से अपना सही पथ आलोकित कर देगा। इसलिये प्रस्तावना में ज्यादा कुछ कहने के लिये है नहीं।

ऋषभ मुद्रणालय के संचालकजी ने निष्ठापूर्वक पुस्तक के सभी प्रेस संबंधी कार्य सुचारु रूप से सुन्दर और शीघ्रता से कर दिया है इसलिये उनका भी बहुत आभार मानता हुँ।

इस प्रकाशन में प्यारेलालजी कोटडिया एवं अनेक सज्जनों का एक या दुसरे प्रकार का सहयोग-सहकार और सहानुभूति रही इसलिये वे सभी का आभार मानता हुँ।

आपका जिनवाणी सेवक

ब्र० कपिलभाई कोटडिया

M. A. L. L. B.

1 अक्टुम्बर, 85 — 3, बार बंगला, हिंमतनगर (गुजरात)

आगम के आलोक में

प्यारेलाल कोटडिया

कोटडिया भवन

7, डोरे नगर, उदयपुर-313 001 (राज.)

अनन्तकाल से यह आत्मा मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेप, मोह में आसक्त होकर चतुर्गति में भ्रमण करती हुइ अनेक कष्ट उठा रही है। पुण्योदय से महान मनुष्य गति, उत्तम कुल और सद्-गुरूओं का संयोग मिला। श्री गुरु यद्यपि अनन्तकाल के मिथ्यात्व अज्ञान को दूर कर पापरूपी अशुभ और पुण्य रूपी शुभ क्रियाओं की निवृत्ति होने पर आत्म स्वरूप में अवस्थित हो मुक्ति-मार्ग पर आरूढ हैं। पर यह अवस्था वीतराग साधुओं को ही संभव है। अतः जैनाचार्यों ने विपय भोग में आसक्त प्राणियों [श्रावकों] पर करूणा-वुद्धि कर आत्म कल्याण के लिये मन्दिरों, तीर्थ स्थानों आदि का निर्माण कराने का एवं पूजा, भक्ति, अभिषेकादि विधानों का निरूपण किया और प्रत्येक कार्य यत्नाचार पूर्वक सावधानी से करने का उपदेश देकर शनैः-शनैः ध्यान आराधना में लगाने का अनेक प्रकार से प्रयत्न किया है।

इसी प्रयत्न के अन्तर्गत यह ग्रंथ [पुस्तक] जो लिखा गया है, जिसमें विशेष रूप से पूर्वाचार्यो द्वारा अभिषेक पूजा आदि का जो

विधान और उपदेश दिये गये हैं उनका सप्रमाण उल्लेख किया है। जिनागम में पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित आगम ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि गृहस्थ श्रावकों के सामाजिक कार्य, व्रत-विधान, पूजन आदि प्रत्येक क्रियाओं में पंचामृत अभिषेक, सचित् फल, फूल, पकवान, नैवेद्य आदि से पूजन विधान अपनी सहधर्मिणी पत्नी और कुटुम्ब परिवार के साथ बड़े नाच-गान से करने का उपदेश दिया है। परन्तु दुर्भाग्य है कि कुछ ग्रन्थ, आगम के नाम से प्रकाशित हुए हैं, और अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं, जिनमें आगम ग्रन्थों के नाम से गाथायें, श्लोक और उदाहरण दिये हैं उनमें से कुछ तो मूल ग्रंथों में है ही नहीं तथा कुछ है तो उनका अर्थ और भाव बदल कर लिखा गया है। मुनि, आर्यिका के आचार-विचार, परिचर्या आदि क्रियाओं का वर्णन भक्ति, वंदना, पूजन, स्तुति आदि में लगाकर भाव बदल कर व्यक्त किये हैं। पुराण आदि का अनुवाद करते हुए उनमें कहीं विषय ही बदल दिया है तो कहीं गाथा ही छोड़ दी है। जैसे उदाहरण के लिये पद्म पुराण पण्डित दौलतरामजी कृत भाषानुवाद में है। एवं पण्डित हुकुमचन्दजी भारिल्ल ने पण्डित टोडरमलजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखे ग्रंथ में पं० टोडरमलजी जो कि आगम और ज्ञान के धनी एवं पक्ष व्यामोह से कोसों दूर थे उस महान आत्मा के व्यक्तित्व को अपने पक्ष व्यामोह में तेरह पंथी सिद्ध करने का अनुचित प्रयत्न किया है। जबकि पण्डितजी ने अपनी लेखनी से कहीं भी कोई आगम-विरुद्ध या पंथवाद का

नाम नहीं लिया है। जो भी जहाँ लिखा है वह आगम को सामने रखकर नय विवक्षा से लिखा है। ऐसे ही केकड़ी निवासी पिता-पुत्र युगल कटारियाजी ने स्त्री अभिषेक पर एवं अन्य और भी अनेक लेख लिखे हैं, जो कि आपके स्ववचन से स्वप्रमाणित ग्रन्थों आगे-पीछे के संदर्भ से ही अप्रमाणित और मिथ्या साबित हो जाते हैं।

वास्तव में मूर्तिपूजा मूर्तिमान के कारण से होती है। मूर्ति तो मूर्ति ही है। जैसे-तलवार के हेतु तलवार के अनुरूप ही तल-वार की म्यान लकड़ी आदि की बनाई जाती है। तो भी अपनी आर्थिक सामर्थ्य शक्ति और श्रद्धा के अनुरूप म्यान को मखमल के कपड़े आदि से मढ़कर चाँदी, सोना, जवाहरात आदि से कला-पूर्ण सजाकर बनाते हैं। परन्तु यह सभी कार्य तलवार के हेतु किया जाता है। इसी तरह भक्त भक्तिवश मूर्तिमान भगवान की पूजा स्तुति प्रतिमूर्ति के द्वारा अपनी शक्ति, भक्ति, श्रद्धा एवं योग्यता से विवेकपूर्वक पूर्वाचार्यों के निर्देशानुसार आगमानुकूल करता है। यह भक्त पर निर्भर है कि वह पूजा अर्चना मूर्तिमान द्वारा मूर्ति करे या मूर्ति द्वारा मूर्तिमान की करे। इन भावनाओं को पंथवाद का जामा पहनाना एवं आग्रह पूर्वाग्रह करना अज्ञा-नता है।

विधानकर्त्ताओं को ग्रन्थों में प्रतिष्ठाचार्य, गृहस्थाचार्य, राज ऋषि नारद, क्रिया विधायक, पीठाचार्य, मठाधीश आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया है। और आगे समयानुसार इन्हीं क्रिया

कर्त्ताओं का भट्टारक रूप गादीधर वने और अव अधिष्ठातादि नामों से उल्लिखित होते है । जिनका कार्य मन्दिर वनवाना, पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा करवाना, विधान करवाना, आश्रम, मन्दिरों और शास्त्रों का संरक्षण करना, विद्यालय चलाना और आगमा-नुकूल धार्मिक शिक्षा देना आदि है ।

पंचामृताभिषेक आगमानुकूल है । यह सत्य है कि पंचामृत हो या जलाभिषेक हो, भावुकता और विवेक शून्यता मे सावद्य दोष लगता है । लेकिन आगम से अनभिज्ञ और भावुक लोगों के कारण से पूर्वाचार्यों की कृतिओं को तोड़–मरोड़ कर लिखना, उन्हें वदल देना, अर्थ और अनुवाद मनमाना करना यह तो आगम की ही विराधना है, और ज्ञानावरणीय कर्म के आस्त्रव का कारण है । अतः यथार्थ में अयत्नाचारों को रोक कर सही मार्ग दर्शन देना वुद्धिमानों का कर्त्तव्य है । परन्तु स्त्रियों को अभिषेक, प्रक्षाल पूजा आदि पुण्य और भक्ति के कार्यों से वंचित करना, रोकना तो आगम, अनुमान, तर्क और न्याय के विरुद्ध है । उन्हें भोग की सामग्री समझना और उनकी निन्दा करने का मतलव है आगम का भाव समझे विना अपलाप करना । आगम में जहाँ-जहाँ स्त्री पर्याय की निन्दा की है उसका भाव अपने हृदय में स्त्री सम्वन्धी जो राग है उसे निकालना है । वाह्य द्रव्य तो वाह्य में हमेशा उपकारी ही रहा है । और वाह्य द्रव्य तो पर है, हृदय में रागादि परिणति रखना ही आत्मघातक है, वाह्य द्रव्य नहीं । अतः आगम के संदर्भ को भली प्रकार न समझ कर पूजन आदि भक्ति मार्ग स्त्रियों से

द्वेष करना अज्ञानता है। आजकल उच्चकोटि के पण्डित भी पंथ-वाद के मोह में आकर अपनी लेखनी से अभद्र शब्दों का उपयोग करते हुए नहीं हिचकते हैं। जिसका फल धर्म प्रभावना नहीं अपितु दुर्गति का पात्र बनना है।

पूर्वाचार्यों ने अपने ध्यान आराधना में से समय बचाकर संसार में गृहस्थ अवस्था में फंसे भोले प्राणियों का मार्ग दर्शन देने के लिये उस समय ग्रंथों की रचना की जिस समय कागज व लेखन सामग्री का अभाव था। आचार्यों ने हरे ताजे ताड़पत्र, भोजपत्र और हरे ताजे बबूल आदि के तीक्ष्ण कांटों के द्वारा अति परिश्रम से ग्रंथों की रचना की और भोले लोग जो विषय वास-नाओं में फसे थे उन्हें मार्ग दर्शन कराने के लिये मन्दिर बनवाना, प्रतिष्ठा करवाना,पूजन अभिषेक आदि करवाना और पूजन सामग्री में प्रयोग के लिये जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य. दीप, धूप, फल आदि के प्रयोग का वर्णन किया है। पण्डित सदासुखजी ने गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, उड़द, मूँग, मोठ, रोटी, राबड़ी वाटिका के पुष्प आदि का वर्णन किया है। पण्डित टोडरमलजी नें भी गोम्म-टसार पूजा में पुष्प व नैवेद्य का वर्णन किया है। कहीं भी पूर्वा-चार्यों एवं पूर्व के दिग्गज पण्डितों ने चटक या पीले चावलों के उपयोग के लिये नहीं लिखा है। सिर्फ कृतकारीत अनुमोदना की अपेक्षा सामग्री के अभाव में चावल या जल आदि में सभी प्रकार की कल्पना कर मनोभाव से मुक्त को भक्ति की भावना पूर्ण करने का कहीं-कहीं वर्णन आता है।

इस ग्रंथ में पूर्वाचार्यों के पुष्ट प्रमाण अलग-अलग प्रकरण में दिये है जिसे पाठक हृदयंगम करे तथा सचित्त पूजन, स्त्री अभिषेक, मन्दिर कला, मूर्ति निर्माण में आने वाली अनेक प्रकार की सामग्री आदि का जो आगम ग्रन्थों में वर्णन किया है उनकी नामावली, उनका समय और उनकी रचनाओं की सूची दी जा रही है जिससे जिज्ञासु पाठक और संशय ग्रसित बन्धु उन सब ग्रंथों का पक्षाक्रान्त होकर अध्ययन करें और अपनी धारणा सुधारे। अधूरे पंथ और बीच के संदर्भ से ग्रंथ और ग्रंथकार के भावों का पता नहीं लग सकता तथा ग्रंथों के पढ़ने पर देश, काल, भाव और भाषा का भी ज्ञान रखते हुए पठन करना लाभकारी होगा। इस सूची में लगभग 85 आचार्य, भट्टारक, पण्डितों के नाम ईस्वी प्रथम शदी से लेकर 19 वीं शताब्दी तक के दिये जा रहे हैं जिन्होंने जल, चन्दन, नैवेद्य, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप, फल आदि से अभिषेक पूर्वक भक्ति पूजा का विधान ग्रन्थों में दिया है।

यह सूचि "जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष" तथा तीर्थंकर महावीर और उनकी परम्परा से तथा हमारे अध्ययन के सग्रहालय से तैयार की गई है। इसमें केवल उन्हीं ग्रन्थों के नाम दिये है जिनमें प्रसंगानुसार पूजा, भक्ति, स्तुति आदि का भी वर्णन आया है।

समय ई. स.	रचयिता	ग्रन्थ का नाम
१२७-१७९	आ. कुन्दकुन्द	रयणसार, दशभक्ति,(चारित्र-पाहुड, बोद्ध पाहुड)

१२७-१७६	आ. वट्टकेर (इन्हें-कोई-कोई आ. कुन्द-कुन्द ही कहते हैं)	मूलाचार
१-७वीं शता. तक	" शिवकोटी	भगवती आराधना
२-६ठीं " "	" यतिवृषभ	तिलोय पण्णत्ती
१७६-२२०	" उमास्वामी	तत्त्वार्थ सूत्र टीकायें
२ री शता.	" समन्तभद्र	जिन स्तुति शतक, रत्न करण्ड श्रावकाचार
५वीं "	" पुज्यपाद	जैनाभिषेक
६ ठी "	" योगेन्दु	नौकार श्रावकाचार
५५०	" कुमुद चन्द्राचार्य (सिद्धसेन दिवाकर)	शाश्वत जिन स्तुति, कल्याण मन्दिर स्त्रोत
छठी शता.	आ कार्तिवर	राम कथा
६-७वीं शता.	" पात्र केसरी	जिनेन्द्र स्तुति
" "	" अपराजित	भगवती आराधना पर विजयोदया टीका
६४०-६८०	" अकलंक देव	अकलंक स्त्रोत
६४३-६८३	" रविषेण	पद्मपुराण
६७७-७८३	कवि स्वयंभू	पउमचरिउ, रिट्ठनेमि चरिउ
७७५-८४०	आ. विद्यानन्द (पात्र केसरी)	सुपार्श्वनाथ स्त्रोत, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकालंकार
७७८-८२८	आ. जिनसेन	हरिवंश पुराण

लगभग ७९२-८२३	आ. वीरसेन	षट्खण्डागम और कषाय पाहुड पर धवल, जय धवल की टीकाएँ
८००-८४८	" जिनसेन (आ. वीरसेन के शिष्य)	जय धवला की अधूरी टीका आपने पूरी की एवं महापुराण, वर्द्धमानपुराण, पार्श्वाभ्युदय काव्य
८०३-८९५	आ. गुणभद्र	महापुराण का शेषकार्य अजीतनाथ से महावीर पर्यन्त का चरित्र, उत्तर पुराण, जिनदत्त चरित्र
९-१०वीं श.	आ. हरिषेण	कथाकोष ग्रंथ १५७ कथायें
८९३-९४३	" देवसेन	दर्शनसार, भावसंग्रह, आराधनासार, धर्म संग्रह
९२५-१०२३	" प्रभाचन्द्र	कथाकोष
९४१	कवि पम्प	आदिनाथ पुराण
९४२	आ. पद्मकीर्ति	पार्श्वनाथ पुराण
९४३	" वीरनन्दी	चन्द्रप्रभु चरित्र
९४३-९६८	" सोमदेव प्र.	नीति वाक्यामृत, यशस्तिलक चम्पू
९५०-९९०	" रविभद्र	आराधनासार
९६२-१०५५	" अमृतचन्द्र	पुरुषार्थ सिद्धि उपाय
९८८	कवि असग	वर्द्धमान चरित्र, शान्तिनाथ पुराण
११वीं शता.	आ. नयनन्दि	सुदंसण चरिउ, सयलविहि विहाण कव्व
९९३-१०४३	" पद्मनन्दि प्र.	जम्बूद्वीप पण्णत्ति

९९३-१०२१	आ. अमितगति	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सुभाषितरत्न सन्दोह, धर्म परीक्षा, उपासकाचार
९९८	" जयसेन	धर्म रत्नाकर
१०००-१०४०	" वादिराज	एकीभाव स्तोत्र, पार्श्वनाथ चरित्र यशोधर चरित्र
१०००	" क्षेमन्धर	वृतकथा मंजरी
१०-११वीं श.	" वीरनन्दि	चन्द्रप्रभचरित्र, आचारसार, शिल्पि संहिता
११वीं शता.	" नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती	चन्द्रप्रभचरित्र, आचारसार, शिल्पि संहिता, त्रिलोकसार
" "	आ. अभयनन्दि	पूजा कल्प
" "	" इन्द्रनन्दि	इन्द्रनन्दि संहिता, प्रतिष्ठा पाठ, शान्तिचक्र पूजा, अंकुरारोपण, पूजा कल्प, प्रतिमा संस्कारा रोपण-पूजा, मातृकायन्त्र पूजा, भूमि कल्प
" "	चामुण्डराय	चारित्रसार, त्रिषष्ठी श्लाका पुरुष चरित्र
१२	वादीभसिंह	गद्यचिंतामणी, क्षत्र चूड़ामणी (यशोधर चरित्र)
११-१२वीं श.	आ. पद्मनन्दि पं.	पद्मनन्दि पंचविंशत्तिका
११वीं शता.	" वसुनन्दि	वस्तुविद्या, जिनशतक, प्रतिष्ठापाठ वसुनन्दि-श्रावकाचार

११वीं शता.	" मल्लिषेण	महापुराण, नागकुमार चरित्र
" "	" मानतुंग	भक्तामर स्त्रोत
" "	" सोमदेव द्वि.	वृहत्कथा-सरित सागर
११-१२वीं श.	कवि हरिचन्द्र	धर्म शर्माभ्युदय, जीवन्धर चम्पू
१२वीं शता.	आ. नयसेन	धर्ममृत कथाएँ
" "	" मल्लिषेण द्वि.	ज्वालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, व्रज पंजरविधान, आदिपुराण एवं अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के टीकाकार
" "	पं. आशाधर	वाग्भट्ट संहिता, सागरधर्मामृत, भरतेश्वराभ्युदय, त्रिषष्ठी स्मृति शास्त्र, राजमति विप्रलम्भसटीक, भूपालचतुर्विशतिका टीका, जिन यज्ञ कल्प प्रतिष्ठापाठ, सहस्त्रनाम स्तवन, रत्नत्रयविधान टीका आदि
१३वीं शता.	कवि लक्खण	अणवयरयन पईव
" "	पं. गुणवर्म	पुष्पदन्त पुराण
" "	आ. पद्मनन्दि (आठवें)	यत्नाचार, श्रावकाचार, कुलकुण्ड, पार्श्वनाथ विधान, रत्नत्रय पूजा, देवपूजा, अनन्तकथा, रत्नत्रय–कथा आदि
१४२६	आ. दयासागर	धर्मदत्त चरित्र
१५वीं शता.	" सकलकीर्ति	आपकी लगभग ४० रचनाएँ हैं जो

		(पूर्व भट्टारक)	प्राकृत, संस्कृत, गुजराती और राजस्थानी भाषा में है। जिनमें प्रसंगवश पूजा प्रकरण के ग्रंथ ये हैं- शान्तिनाथ चरित्र, वर्द्धमान चरित्र मल्लिनाथ चरित्र, यशोधर चरित्र, धन्यकुमार चरित्र, सुकुमाल चरित्र, सुदर्शन चरित्र जम्बूस्वामी चरित्र, श्रीपाल चरित्र, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, पार्श्वनाथ पुराण, सिद्धान्तसार दीपक, व्रतकथाकोष, पुराणसार सग्रह, पंच परमेष्ठी पूजा इत्यादि
"	"	कवि रइधू	पद्मपुराण, पार्श्वनाथ पुराण, हरिवंशपुराण, जीवन्धर चरित्र
"	"	आ. विद्यानन्दजी	सुदर्शन चरित्र
"	"	" श्रुतसागर	आपकी अनेक रचनाएं है। अष्ट पाहुड पर टीका, बृहत् कथाकोष, श्रीपाल चरित्र, यशोधर चरित्र, महाभिषेकटीका (आशाधरकृत पर) पल्य विधानव्रतकथा, श्रुतस्कन्ध पूजा, सिद्ध चक्राष्टक पूजा, सिद्ध भक्ति

१४७०	आ. रत्नकीर्ति	भद्रबाहु चरित्र
१५वीं शता.	" सोमकीर्ति	प्रद्युम्न चरित्र, चारुदत्त चरित्र
" "	" यश:कीर्ति(प्रथम)	पाण्डवपुराण, हरिवंशपुराण
" "	श्रीचन्द्र	पुराणसार
१६वीं शता.	आ.शुभचन्द्र(सातवें)	आपकी अनेक रचनाएँ हैं।सम्यक्त्व कौमुदी,पाण्डवपुराण,करकण्डचरित्र,चन्द्रप्रभचरित्र, पद्मनाथचरित्र,प्रद्युम्नचरित्र, जीवन्धरचरित्र, चन्दन कथा, नन्दीश्वर कथा,
" "	ब्र. नेमिचन्द	आराधना कथा कोप
" "	पं. राजमल	पंचाध्यायि,लाटि संहिता, जम्बूस्वामी चरित्र,आदि ग्रंथ
" "	देवेन्द्र कीर्ति	कथा कोप
" "	चन्द्र कीर्ति	आदिनाथपुराण, पद्मपुराण, पार्श्वपुराण
१६०१	भट्टारक वादिचन्द्र	पाण्डव पुराण
१६५०	कवि अरूणमणी	अजित पुराण
१८वीं शता.	आ. जिनसागर	जीवन्धर पुराण
१७३३	पं. द्यानतरायजी	धम विलास,अनेक पूजा विधान भक्तिस्तोत्र आदि की रचनाएँकी
१७५५-६७	कवि देवीदास	चौवीसी पाठ (चौबिस तीर्थंकरों की पूजा)

१७३६	पं. टोडरमलजी	गोम्मटसार पूजा
१७३८-६६	पं दौलतरामजी	पद्मपुराण,आदिनाथपुराण,हरि-वंश पुराण, श्रीपालचरित्र, क्रिया कोष
१७५६	कवि भारामल	शीलकथा,चारुदत्त चरित्र,दर्शन कथा,दानकथा और भोज कथा
१७६१-१८४८	कवि वृन्दावनजी	चतुर्विंशति जिनपूजा पाठ, बीस चौबीसी पूजा, समवसरण पूजा
१८वीं शता.	पं. संतलालजी	सिद्ध चक्र पूजा-पाठ
" "	" सदासुखजी	रत्नकरण्ड श्रावकाचार, नित्य नियम पूजा
१९वीं शता.	" पन्नालालजी	सरस्वति पूजा
" "	" मनरंगलालजी	चौबीसी पूजा पाठ,सप्तर्षिपूज शिखर सम्मेदाचल माहात्म्य
१९वीं शता.	"जयचन्दजी छावड़ा	धन्य कुमार चरित्र
" "	पं.खुशालचन्द काला	हरिवंशपुराण,पद्मपुराण, धन कुमार चरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, वृहद कथा कोष

अतः पूर्वोक्त रचनाकारों ने पूजन में पंचामृत अभिषेक अ स्त्रीयों द्वारा अभिषेक का निषेध नहीं किया है। अपितु पंचा अभिषेक, स्त्रियों द्वारा अभिषेक एवं सचित् फलफूल और पकव आदि के उपयोग का वर्णन जगह-जगह मिलता है।

आभार

आर्थिक संस्थागत सहकार

१००१ हिंमतनगर दिगम्बर जैन मंदिर, सावर कांठा
१००१ संतरामपुर दिगम्बर जैन समाज-पंचमहाल
५०१ पादरा दिगम्बर जैन समाज वडोदरा
५०१ लाडनू दिगम्बर जैन समाज प्रतिष्ठा समिति राजस्थान
५०१ आ. शांतिसागर दि. जैन ग्रंथमाला, ईडर
५०१ दिगम्बर जैन समाज, सावला
५०१ दिगम्बर जैन समाज, लोहारिया
५०१ दशा हुंमड समाज उदयपुर
३०१ खाखड दि० जैन समाज
२५१ नेमीनाथ दिगम्बर जैन मंदिर वहेरामपुरा (अहमदाबाद)
२५१ दिगम्बर जैन पंच, करावली
५०१ अन्य स्वाध्याय प्रेमीओं से

आर्थिक महिला सहयोगीओं का आभार

२५०० श्रीमती सुशीलावेन वावुलाल शकरचंद अहमदावाद
१५०० श्री ब्र. मेना वाई—आ. सन्मति सागर संघ संचालिका
१००० श्री शारदा वेन पन्नालाल चोक्सी—विलेपारले
(मणीवेन की स्मृति में)
१००० श्री चंपावेन पन्नालाल अखेचंद विजयनगर
अपने पति की स्मृति में
५०१ श्री चित्रावाई दीघे—आ. विमलसागर संघ संचालिका
५०१ श्री गजीवेन अमृतलाल कचरालाल, भालक
५०१ श्री हसुमति वेन अमृतलाल शाह मांडवी
५५१ श्री कमलावेन चीमनलाल शाह वसो
५०१ श्री रतन वेन नेमचंद कोठारी—असारवा
५०१ श्री चंपावेन कपिलभाई कोटडिया हिमतनगर
५०१ श्री जयावेन रमणलाल शीवलाल कपडवंजः

आर्थिक सहकार देने वाले को शुभ नामावली

२००० श्री निर्मल कुमार सेठी लखनऊ
१००१ श्री पुनमचन्द जमनादास अमदावाद
१००१ श्री छगनलाल मोतीचन्द शाह वम्बई
१००० श्री निर्मल कुमार मिश्रीलाल गोहाटी
५०१ श्री सोमचंद चुनीलाल मेहता वदराड
५०१ श्री रसिकलाल नेमचंदशाह हिंमतनगर
५०१ श्री चंदुलाल रायचंद शाह वाकरोल
५०१ श्री सांकलचंद दवाचन्द छापीआ विजयनगर
५०१ श्री मोहनीचंद जवेरी वम्बई
५०१ श्री ववालाल मूलचंद शाह मोडासा
५०१ श्री राजेन्द्र नाथालाल शाह ईडर
५०१ ऐक सद्गृहस्थ— वडोदरा
५०१ श्री मनुभाई कांतिलाल कोटडिया पेटलाद
५०१ श्री अरविंद भाई मीठालाल कोटडिया पेटलाद
५०१ श्री वंसीलाल गेवीलाल कोठारी ऋषभदेव
५०१ श्री मगनलाल कस्तुरचंद जैन लोहारिया
५०१ श्री मीठालाल नेमचंद कोठारी असारवा
५०१ श्री ज्ञानचंद नंदलाल शेठ वम्बई
५०१ श्री डुंगरमलजी सवलावत डेह
५०१ नरेन्द्र अंवालल जैन आणंद
५०१ एम. आर. मींडा ट्रस्ट उदयपुर

संरंक्षणी सभा के प्रकाशन

१ धर्म पुण्य माला
२ आदि ब्रहना
३ रात्री भोजन त्याग
४ सन्मति चरित्र
५ संशय तिमिर प्रदीप
६ समता के साधन
७ सोहनगढ का एकांत
८ ग्रंथ त्रयी
९ धर्म पर कलंक
१० स्याद्वाद चक्र
११ आलाप पद्धति
१२ पुण्य के धाम
१३ पूजा भक्ति गुच्छ
१४ वोध कथा संग्रह
१५ जैन ज्योति त्रिलोक
१६ अष्ट पाहुड

आदि ४० ग्रंथों का संपादन ब्र० कपिल भाई ने किया है। आप इसमें से जो उपलब्ध है वह मँगवाकर स्वाध्याय कर सकते है। स्वाध्याय से ही आपका सोनागढ़ के विषय में जो मिथ्या मत है वह सही हो जायगा और अन्य आचार्यों से लिखित प्राचीन शास्त्रों को पढने का सद्भाव जागृत होगा। अंत में आप त्याग मार्ग को पकडने की क्षमता वाले व्यक्ति बन सकेंगे और वही उद्धार का मार्ग है।

—ब्र० कपिल भाई

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक

ब्र. कपील भाई कोटडिया
हिम्मतनगर

रतन वेन कोठारी
अहमदावाद

कमलावेन चिमनलाल
वसो

मीट्ठालाल नेमचन्द कोठारी

चन्दुलाल रायचन्द
वाकरोल

सुशीलाबेन बाबुलाल शाह
अहमदाबाद

मणीबेन सुन्दरलाल
चोकसी, आमोद

श्री पन्नालाल
अखेचन्द शाह →
विजयनगर

सोमचन्द चुन्नीलाल मेहता
वदराड़

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जयाबेन रमणलाल शाह
कपडवंज
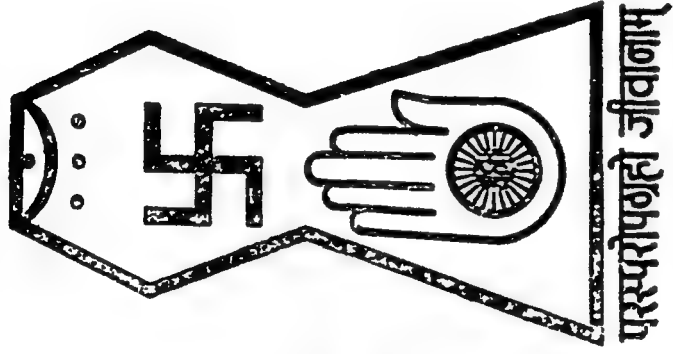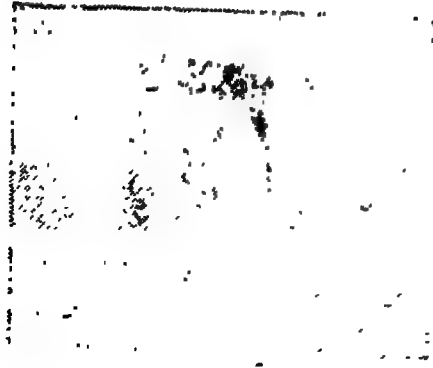
↑
ब्र. कपील भाई कोटड़िया
हिम्मतनगर

श्रीमती चपांबेन कपीलभाई कोटडिया →
हिम्मतनगर

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

संशयतिमिरप्रदीप

॥ मंगलाचरण ॥

[१]

शरद निशाकर कान्ति सम विशद कान्ति जिन देह ।
चन्द्रप्रभु जिनदेव के पद नमु धर मन नेह ॥

[२]

इन्द्र साधु जनवृन्द कर बन्दित चरण त्रिकाल ।
जगजन चिर सञ्चित कलिल शमन करहु मुनिपाल ॥

[३]

तुमगुण जलधि गँभीर अति मुनिपति भी तिहिं पार ।
लगै न तो पर का कथा जे जन विगत विचार ॥

[४]

अशरण शरण दयाल चित हे जिन तुम मुख चन्द ।
जगमिथ्यासन्ताप को शीतल करहु अमन्द ॥

[५]

तुव यशलता सुहावनी भविजन मन अभिराम ।
कुमतितापसन्तप्त पर करहु छाय सुख धाम ॥

[६]

कलिघनपङ्कनिमग्नजन तिनहिं निकाशन शूर ।
प्रभु तुव चरण सरोज विन नहिं समरथ वलपूर ॥

[७]

चिर उपचित अघविधि विवश आवहिं विघन प्रचण्ड ।
ह्वै कृपाल शिशु "उदय" पर ईश करहु शतखंड ॥

[८]

तुम प्रभाव इह अल्प अति पुस्तक लिखुं जन हेतु ।
सो दुर्लंघ भवजलधि महिं वनो सुदृढ़ सुख सेतु ॥

महर्षियों का उद्देश्य

यदि कहा जाय कि गृहस्थों के लिये आचार्यों का जितना उद्देश्य है वह प्रायः अशुभकार्यो की ओर से परिणामों को हटाकर जहां तक हो सके शुभ कार्यों की ओर लगाने का है। ऐसा कहना किसी प्रकार अनुचित न होगा। इस वात को सब कोई जानते हैं कि गृहस्थों को दिन रात अपने संसारिक कामों में फंसा रहना पड़ता है। उन्हें अपने किये हुये पाप कर्मों की निर्जरा करने के लिये दिन भर में अच्छी तरह से शायद एक घंटा मिलना कठिन हो ऐसी अवस्था में उन्हें संसार को छोड़ने का उपदेश देना एक तरह से कार्यकारी नहीं कहा जा सकता।

इस कहने का यह मतलब नहीं समझना चाहिये कि उन लोगों की संसार के छोड़ने की उत्कंट इच्छा रहते हुये भी निषेध हो ? नहीं, किन्तु जो लोग सर्वतया सांसर में फंसे हुये हैं उसकी ओर से एक मिनट के लिये भी चसकना दुश्वार हैं उन्हीं लोगों के बाबत यह कहना है। हां यह माना जा सकता है कि उन लोगों के लिये संसार का निराश करना बेशक कठिन है परन्तु इसका यह अर्थ नंही कहा जा सकता कि ऐसे लोग दिन भर में एक घंटा भी धर्मकार्य में नहीं लगा सकते हों। और जिन लोगों का दिल संसार सम्बन्धी विषयादिकों से विलकुल विरक्त हो गया है उन लोगों के लिये किसी तरह का प्रतिवन्ध भी नहीं है कि वे इतनी अवस्था के सुधरने पर ही ससार छोड़ने का प्रयत्न करें। किन्तु उनकी इच्छा के अनुसार ऐसे लोगों के लिये सदा ही बन का रास्ता खुला रहता है। परन्तु महर्षियों को तो इन लोगों का भी भला करना इष्ट है जिन्हें संसार से छुट्टी पाने का मौका मिलना कठिन है। यही कारण है कि आचार्यों ने गृहस्थों के लिये सबसे पहले कल्याण का मार्ग जिन भगवान की पूजन करना बताया है। भगवान की पूजन करने वालों का चित्त जब तक पूजन की ओर लगा रहता है तब तक वे संसार सम्बन्धी बातों से अवश्य पृथक रहते हैं। इसका अनुभव उन लोगों को अच्छी तरह से है जिन्हें जिन देव की सेवा के करने का समय मिला है।

पूजन के भी द्रव्यपूजन और भावपूजन ऐसे दो विकल्प है। उसमें आज यहां पर भावपूजन के विषय का गौण करके

द्रव्यपूजन के विषय पर मीमांसा करेंगे। वैसे तो पूजन अनेक तरह और अनेक द्रव्यों से हो सकती है परन्तु मुख्यतः जलादि आठ द्रव्यों से करने का उपदेश है। काल के परिवर्तन से जैनियों में प्राचीन संस्कृत विद्या की कमी हो गई इसी कारण कितनी क्रियाओं में फेरफार हो गया है। इसीलिये आज इस विषय के लिखने की जरूरत पड़ी है। हम इस लेख में क्रम से इस विषय का परिचय करावेंगे कि वर्तमान में किन-किन क्रियाओं में अन्तर हो गया है जिन का पुनरुद्धार होने से जिन मत के यथार्थ उपदेश का पालन हो सकेगा।

पञ्चामृताभिषेक

पञ्चामृताभिषेक को सशास्त्र होने पर भी कितने लोगों का मत एक नहीं मिलता। कितनों का कहना है कि पञ्चामृताभिषेक के करने से जलाभिषेक की अपेक्षा कुछ अधिक लाभ संभव होता तो ठीक भी था परन्तु यह न देख कर उल्टी हानि की संभावना देखी जाती है। इसलिये पञ्चामृताभिषेक योग्य नहीं है।

पञ्चामृताभिषेक में इक्षुरसादि मधुर वस्तुएं भी मिली रहती हैं और जब उन्हीं मधुर वस्तुओं से जिन प्रतिमाओं का अभिषेक किया जायगा फिर यह कैसे नहीं कहा जा सकता कि मधुर पदार्थों के संसर्ग से जीवों की उत्पत्ति न होगी? कदाचित कहो कि अन्त में जलाभिषेक के होने से उक्त दोष की निवृत्ति हो

सकेगी ? परन्तु तो भी यह संभव नहीं होता कि घृतादिको को सचिक्कणता तत्काल जल से दूर हो जायगी। इत्यादि

केवल इसी युक्ति के आधार पर पञ्चामृताभिषेक के निषेध करने को कोई ठीक नहीं कह सकता। यह युक्ति तो तभी ठीक कही जाती जब पञ्चामृताभिषेक करने वाले इक्षुरसादिकों से अभिषेक करके ही अभिषेक कर्म की समाप्ति कर देते। सो तो कहीं पर भी देखा नहीं जाता। अब रही सचिक्कणता की, सो इसका समाधान भी हो सकता हैं। ग्रन्थकारों ने जहां इक्षुरसादिकों से अभिषकों का करना लिखा है वहीं पर नाना प्रकार के वृक्षादिकों के रसों तथा दधि आदि आम्ल पदार्थों से भी करना लिख दिया है और जहां तक मैं ख्याल करता हूं उपर्युक्त वस्तुओं से अभिषेक करने का यही आशय है कि प्रतिमाओं पर सचिक्कणता अथवा मधुर पदार्थों का संसर्ग न रहने पावे। इस विषय का विशेष खुलासा इन्द्रनन्दि पूजासार में देख सकते हैं।

पञ्चामृताभिषेक का नतो पहली युक्ति के आधार पर निषेध हो सकता है और न दूसरी युक्ति के द्वारा करना सिद्ध होता है। क्योंकि ये दोनों ही युक्तियें निराधार हैं। ये तो जिस तरह निषेध की कल्पना है उसी तरह उसका समाधान है। किसी बात के निषेध अथवा विधान में केवल युक्तियों की प्रबलता ठीक नहीं कही जा सकती। युक्ति के साथ कुछ शास्त्र प्रमाण भी होने चाहिये। यदि केवल युक्तियों को आधार पर विश्वाश करके शास्त्रों के प्रचार का बिल्कुल निषेध कर दिया होता तो, आज

सम्पूर्ण मत मतान्तर कभी के रसातल में पहुंच गये होते। परन्तु यह कब संभव हो सकता था? इसी से हमारा कहना है कि पहले शास्त्रों का आश्रय लेना चाहिये। और शक्ति भर विविध युक्तियों के द्वारा उन्हीं के पुष्ट करने का उपाय करते रहना चाहिये। क्योंकि प्राचीन तत्त्व ज्ञानियों का अनुभव सत्य और यथार्थ कल्याण का कारण है। हम भी आज प्राकृत विषय को पहले शास्त्रों के द्वारा खुलासा करते हैं। फिर यथानुरूप युक्तियों के द्वारा भी सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।

भगवान् उमास्वामि श्रावकाचार में—

शुद्धतोयेक्षुसर्पिभिर्दुग्धदध्याम्रजै रसैः।
सर्वौषधिभिरुच्चूर्णभावात्संस्नापये जिनान्॥

अर्थात्—शुद्धजल, इक्षुरस, घी, दूध दही, आम्ररस और सर्वोषधि इत्यादिकों से जिन भगवान् का अभिषेक करता हूं।

श्रीवसुनन्दि श्रावकाचार में—

गाथा—

गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं।
जम्हि दिणे संजादयं जिणएवहणं तद्दिणे कुज्जा॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरगंधजलपुएणविविहकलसेहिं।
णिसि जागरं च संगीयणाड्याईहिं कायव्वं॥
णन्दीसरअठदिवसेसु तहा अएणेसु उच्चियपव्वेसु।
जंकीरई जिणमहिमा वएणेया कालपूजा सा॥

अर्थात्— जिस दिन भगवान् के गर्भवतार, जन्माभिषेक, दीक्षाकल्याण, ज्ञानकल्याण और मोक्षकल्याण हुवे हों उस दिन इक्षुरस, घी, दही, दूध, और गन्धजल इत्यादिको से भरे हुवे कलसों से अभिषेक करने को, रात्रि में जागरण तथा संगीत नाटकादि करने को, तथा इसी तरह दसलाक्षण, शोडपाकरण और रत्नत्रयादि योग्य पर्वों में अभिषेकादि करने को काल पूजा कहते हैं।

श्रीवामदेव भावसंग्रह में कहते हैं कि—

ततः कुम्भं समुद्धार्य तोयचोचेक्षुसद्रसैः।
सद्घृतैश्च ततो दुग्धैर्दधिभिः स्नापये जिनम्॥

अर्थात्— पश्चात् कलशोद्धार पूर्वक जिन भगवान् का इक्षुरस, आम्ररस, घी, दूध और दही से अभिषेक करता हूं।

श्रीयोगीन्द्रदेव श्रावकाचार में लिखते हैं कि—

जोजिणुण्हावइ घयपयहिं सुरहिं ण्हाविज्जइ सोइ।
सो पावइ जोजंकरइ पहुपहिउ लोए॥

अर्थात्— जो दिन भगवान् का घी और दूध से स्नान अर्थात अभिषेक करते हैं वे देवताओं के द्वारा स्नान कराये जाते हैं। इसे सब कोई स्वीकार करेंगे कि जो जैसा कर्म करते हैं वे वैसा ही उसका फल भी पाते हैं।

श्रीयशस्तिलक महाकाव्य के अष्टमोच्छ्वास में लिखा हैं कि

द्राक्षाखर्जूरचोचेक्षुप्राचीनामलकोद्भवैः।
राजादनाम्रपूगोत्थैः स्नापयामि जिनं रसैः॥

अर्थात्—दाख, खजूर और इक्षुरसादिकों के रस से जिन भगवान् का अभिषेक करता हूं।

श्रीचन्द्रप्रभु चरित्र में विद्वत्प्रवर दामोदर उपदेश देते हैं कि—

अभिषेकं जिनेशानामीक्षुः सलिलधारया।
यः करोति सुरैस्तेन लभ्यते स सुरालये॥
जिनाभिञ्चिनं कृत्वा भक्तया घृतघटैर्नरः।
प्रभायुक्तविमानस्य जायते नायकः सुरः॥
संस्नापयेज्जिनान्यस्तु सुदुग्धकलशौस्त्रिधा।
क्षीरशुभ्रविमाने स प्राप्नोति भोगसम्पदम्॥
येनार्हन्तोऽभिषिच्यन्ते पीनदधिघटैः शुभैः।
दधितुल्यविमाने स क्रीडयति निरन्तरम्॥
सर्वोषध्या जिनेन्द्राङ्गं विलेपयति यो नरः।
सर्वरोगविनिर्मुक्तं प्राप्नोत्यङ्गं भवं भवे॥

अर्थात्—जो जिन भगवान् का इक्षुरस की धारा से अभिषेक करता है वह अभिषेक के फल से स्वर्ग को प्राप्त होता है। घृत के कलशों से जिन भगवान् का अभिषेक करने वाला स्वर्ग में देवताओं का स्वामी होता है वह दूध के भरे हुवे कलशों से जिन भगवान को स्नान कराता है। वह दूध के समान शुभ्र विमान में विविध प्रकार की भोगोपभोग सामग्री को भोगने वाला होता है। जिसने जिन देव का वहुत गाढे दही के भरे हुए कलशों से अभिषेक किया है। उसे दधि के समान निर्मल विमान में क्रीड़ा करने का सुख उपलब्ध होता है।

जो पुरुष सर्वौषधि से जिन भगवान के शरीर में लेपन करता है उसके लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि वह जन्म-जन्म में सम्पूर्ण रोगों से रहित शरीर को धारण करता है।

भगवानकुन्दकुन्दाचार्यकृत षट्पाहुड़ ग्रंथ की श्रुतसागरी वृत्ति में लिखा है कि—

तथाचकारात्पाषाणघटितस्यपि जिनविम्बस्य पञ्चामृतैः, स्नपनं, अष्टविधैः पूजाद्रव्यैश्च पूजनं कुरुत यूयं, वन्दनाभक्तिश्च कुरुत। यदि तथा भूतं जिनबिम्बं न मानयिष्यथ गृहस्था अपि सन्तस्तदा कुम्भोपाकादिनरकादौ पतिष्यथ यूयमिति।

अर्थात् यहां पर वैयावृत्य का प्रकरण है। इसमें चकार से पाषाण की जिन प्रतिमा का पञ्चामृत करके अभिषेक और अष्ट-प्रकार पूजन द्रव्यों से पूजन करो। तथा वन्दना भक्ति भी करो। जो इस प्रकार की जिन प्रतिमाओं को स्वीकार नहीं करोगे तो गृहस्थ होते हुए भी कुम्भीपाकादि नरकों में पड़ोगे।

श्री धर्म संग्रह में :—

गर्भादिपञ्चकल्याणमर्हतां यद्दिनेऽभवत्
तथा नन्दिश्वरे रत्नत्रयपर्वणि चार्चताम्
स्नपनं क्रियते नाना रसैरिक्षुघृतादिभि :
तत्र गीतादिमांगल्यं कालपूजा भवेदियम्

अर्थात्—जिस दिन अरहन्त भगवान् के गर्भादि पञ्चकल्याण हुये हैं उस दिन नन्दीश्वर पर्व के दिन तथा रत्नत्रयादि पर्वों में

इक्षुरस और घृतादिकों से अभिषेक तथा संगीत जागरणादि शुभ कार्यों के करने को कालपूजन कहते हैं।

श्री पाल चरित्र में लिखा है कि :—

> कृत्वा पञ्चामृतैर्नित्यमभिषेकं जिनेशिनाम्
> ये भव्याः पूजयन्त्युच्चैस्ते पूज्यन्ते सुरादिभिः ।

अर्थात् पञ्चामृत से जिनभगवान् का अभिषेक करके जो भव्य पुरूष पूजन करते हैं उन्हें देवता लोग निरन्तर उपासना की दृष्टि से देखते रहते है।

श्री मूलसंघाम्नायी हरिवंश पुराण में :—

> पञ्चामृतैर्भृतैः कुम्भैर्गन्धोदकवरैः शुभैः
> संस्नाप्य जिनसन्मूर्ति विधिनाऽऽनर्चुरुत्तमाः ॥

अर्थात्— इक्षुरसादि पञ्चामृतों से भरे हुये कलशों से जिन भगवान् का अभिषेक करके पूजन करते हुवे।

पट्कर्मोपदेश रत्नमाला में :—

> पञ्चामृतैः सुमंत्रेण मंत्रितैर्भक्तिनिभरः
> अभिषिच्य जिनेन्द्राणां प्रतिविम्बानि पुण्यवान् ।

अर्थात्— पवित्र मंत्र पूर्वक, इक्षुरसादि पञ्चामृतों से जिन भगवान् का अभिषेक करना चाहिये। इत्यादि अनेक प्राचीन शास्त्रों में पंचामृताभिषेक के सम्वन्ध मे लिखा हुआ मिलता है इसलिये शास्त्रानुसार वाधित नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न— यद्यपि शास्त्रों में पंचामृताभिषेक करना लिखा है परन्तु साथ ही जरा बुद्धि पर भी जोर देना चाहिये। इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि जिन धर्म वीतरागता का अभिवर्द्धक है। और जब जिन प्रतिमाओं पर इक्षुरसादिकों से अभिषेक किया जायगा फिर उस समय वीतरागता ठीक बनी रहेगी क्या ?

उत्तर— जिनधर्म वीतरागता का अभिवर्द्धक है इसे हम भी स्वीकार करते हैं परन्तु इस से पंचामृभिषेक का निषेध कैसे हो सकेगा। इस बात की खुलासा करना चाहिये। पंचामृताभिषेक वीतरागता का क्यों प्रतिरोधक है ? मेरी समझ मे यह बात नही आती कि पंचामृताभिषेक में ऐसा कौन सा कारण है जिससे जिन धर्म का उद्देश ही नष्ट हुआ जाता हैं। फिर तो यों कहना चाहिये कि यह एक तरह बाल क्रीड़ा हुई कि पंचामृताभिषेक के नहीं करने से तो जिन धर्म का उद्देश बना रहता है और करने से नष्ट हो जाता है। तो फिर जलाभिषेक मानने वालों को यह दोष बाधा नहीं देगा क्या ? पंचामृताभिषक के निषेध के लिये दो कारण कहे जा सकते है—

[१] तीर्थंकरो का समवशरण में अभिषेक नहीं होता इसलिये प्रतिमाओं का भी नहीं होना चाहिये।

[२] पंचामृताभिषेक सरागता का द्योतक है इसलिये योग्य नही है परन्तु ये दोनों कारण बाधित हैं। समवशरण में अभिषेक के न होने से प्रतिमाओं पर अभिषेक करना असिद्ध नहीं ठहर सकता।

क्योंकि समवशरण मे तो जलाभिषक भी नहीं होता फिर प्रति-माओं पर भी निषेध स्वीकार करना पड़ेगा। पञ्चामृताभिषेक को सरागता कारण भी नहीं मान सकते। क्योंकि जब जिन मंदिर बंधवाना, रथयात्रा निकलवाना, प्रतिष्ठादि करवानी आदि कार्य सरागता के कारण नहीं है फिर पञ्चामृताभिषेक ही क्यों? जिस तरह ये सरागता के पूर्णतया कारण होने पर भी प्रभावना के माने जाते हैं उसी तरह पञ्चामृताभिषेक को मानने में जिन धर्म के उद्देश को किसी तरह बाधा नहीं पहुंच सकती। अभिषेक सम्बन्ध में श्री सोमदेव स्वामी के वाक्यों को देखिये —

श्री केतनंवाग्वनितानिवासं पुण्यार्जनक्षेत्रमुपासकानाम्।
स्वर्गापवर्गं गमनैकहेतुं जिनाभिषेकं श्रयमाश्रयामि॥

प्रश्न— मूलाचार प्रभृति ग्रन्थों में साधु पुरुषों के लिये गन्धजल से शरीर संस्कारदिकों का भी निषेध है तो प्रतिमाओं पर पञ्चामृताभिषेक कैसे सिद्ध हो सकेगा? क्योंकि प्रतिमा भी तो पञ्चपरमेष्ठी की है।

उत्तर— प्रतिमाओं और मुनियों के कथन की समानता नहीं होती। इतने पर भी यदि पञ्चामृताभिषेक अनुचित समझा जाय तो, मुनियों के स्नान का त्याग है फिर प्रतिमाओं पर अभिषेक क्योंकर सिद्ध हो सकेगा? यदि कहो कि मुनियों को अस्पर्श शूद्रादिकों का स्पर्श होने पर मंत्रस्नान लिखा है तो क्या प्रतिमाओं को भी प्रायश्चित्त की आवश्यकता पड़ती है जो तुम्हारे कथनानुसार अभिषेक कराना माना

जाय। मुनियों के कथन से मिलाकर एक शुद्ध और निर्दोष विषय को बाधित कहना ठीक नहीं है।

प्रश्न— पञ्चामृत किसे कहते हैं यह भी समझ में नहीं आता ? कितने तो पञ्चामृत में मधु को भी मिलाते हैं।

उत्तर— पञ्चामृत के विषय में भट्टाकलंकदेव प्रतिष्ठा तिलक में यों लिखते हैं—

नीरं तरूरसश्चैव गोरसतृतीयं तथा।
पञ्चामृतमिति प्रोक्तं जिनस्नपनकर्मणि॥

अर्थात्— जल, वृक्षों का रस और तीन गोरस अर्थात् दूध, दही और घी इन्हीं पांच वस्तुओं को जिनाभिषेक विधि में पञ्चामृत कहते हैं। जिन शास्त्रों में पञ्चामृत में मधु का ग्रहण नहीं है किन्तु वैष्णव मत में मधु का पंचामृत में गृहण किया है। जैन शास्त्रों को मधु को अत्यन्त अपवित्र माना है फिर आप ही कहें कि महर्षि लोग इसे पवित्र कैसे कहेंगे ?

प्रश्न— पंचामृताभिषेक की सामग्री का योग मिलाने से वहुत आरंभ होता है और जिन धर्म का उद्देश आरंभ के कर्म करने का है।

उत्तर— पहले तो गृहस्थों को आरंभ का त्याग हीं नहीं हो सकता यदि थोडी देर के लिये मान भी लिया जाय तो क्या मन्दिर बन्धवाना, प्रतिष्ठा करवाना, रथयात्रा निकलवानी इत्यादि कार्यों में आरंभ नहीं होता और वह पंचा-

मृताभिषेक की अपेक्षा कितना है। आरंभ के त्याग का उपदेश तो मुनियों के लिये है। गृहस्थों को आरंभ कम करना चाहिये, नहीं कह सकते यह कहना किस शास्त्र के आधार पर है। अभिषेकादि सम्बन्ध में आरंभ घटाने का उपदेश करने वालों के प्रति श्रीयोगीन्द्र देव कृत श्रावकाचार में लिखा है—

आरंभे जिणएहावियए सावज्जं भणंति दंसणं तेण ।
जिमइमलियो इच्छुण कांइओ भंति ।।

और भी सार संग्रह में:—

जिनाभिषेके जिनवैप्रतिष्ठाजिनालये जैनसुपात्रतायाम्
सावद्यलेशो वदते स पापो स निन्दको दर्शनघातकश्च।

तात्पर्य यह है कि अभिषेकादि सम्बन्ध मे जो लोग आरंभादि बताकर निषेध करने वाले हैं उन्हें ग्रन्थकारों ने सर्व दोषों का पात्र बनाया है। और है भी ठीक क्योंकि जिसके करने से आत्मकल्याण होता है उसका निषेध कहां तक ठीक कहा जा सकेगा ? किन्तु आरंभ किस विषय का कम करना चाहिये उसके लिये धर्म संग्रह में इस तरह लिखा है:—

जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्विषं हन्ति या कृता ।
सा किन्न यजनाचारैर्भवं सावद्यमङ्गिनाम् ।।
प्रेरयन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः ।
तत्राल्पशक्तितेजस्सु दंशकादिषु का कथा ।।
भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमङ्गिनाम् ।

जीवनाय मरीचादिसदौषधविमिश्रतम् ।।
तथा कुटुम्बभोग्यार्थमारम्भः पापकृद्भवेत् ।
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा ।।

अर्थात्—जो जिन भगवान् की की हुई पूजा अनेक जन्मों के पापों को नाश करती है क्या वह पूजन के सम्बन्ध से उत्पन्न हुये सावद्यपापों को नाश नहीं करेगी ? अरे जहां प्रचण्ड वायु के वेग से पर्वतों के समान हाथी तक उड जाते हैं वहां अल्पशक्ति के धारक दंश मंशकादि क्षुद्र जीवों की तो कथा ही क्या है ? देखो। जिस प्रकार खाया हुआ केवल विष प्राणों के नाश का कारण होता है, परन्तु मरीचादि उत्तम औषधियों के साथ खाया हुआ वही विष जीवन के लिये होता है। इसी प्रकार जो आरंभ कुटुम्ब और भोग के लिये अर्थात् सांसारिक प्रयोजन के लिये किया जाता है, वह पाप के लिये ही होता है। परन्तु धर्म के कारणभूत दान, पूजन, प्रतिष्ठा, अभिषकादि के लिये जो आरंभ होता हैं वह निरन्तर हिंसा का लेश माना जाता है और वही आरम्भ गृहस्थों के लिये स्वर्गादि संपतियों का कारण होता हैं।

इसी तरह भगवान् समन्तभद्र स्वामी भी वृहत्स्वयंभूस्तोत्र में लिखते हैं:—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जिनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ।।

अर्थात्— जिस तरह समुद्र में पड़ी हुई विषय कणिका समुद्र के

जल को विकार रूप नहीं कर सकती। इसी तरह जिन भगवान् की पूजन करने वाले पुरुषों के बड़े भारी पुण्य समूह में पूजन के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ किंचित पाप का लव दोष का कारण नहीं हो सकता।

प्रश्न— पंचामृताभिषेक सम्बन्ध के श्लोक शास्त्रों में किसी ने मिला दिये हैं। और पंचामृताभिषेकादि सम्बन्ध के ग्रन्थों को भट्टारकों ने प्राचीन महर्षियों के नाम से बना दिये हैं। वास्तव में आचार्यों के नहीं हैं।

उत्तर—यह बात कैसे ठीक मानी जाय कि इस विषय क श्लोकों को किसी ने मिला दिये हैं? क्योंकि परीक्षा प्रधानियों के मता-नुसार ऐसा सत्य भी मान लिया जाय तो किसी किसी स्थानों के शास्त्रों में साध्य भी हो सकता हैं। परन्तु भारतवर्ष मात्र के स्थानों में यह बात संभव नहीं होती और न कोई बुद्धि-मान् इसे स्वीकार ही करेगा। पंचामृताभिषेक का वर्णन एक शास्त्र में नहीं, दो में नहीं दस में नहीं, पचास में नहीं, सौं में नहीं किन्तु प्रत्येक पूजापाठ, श्रावकाचार, प्रतिष्ठा पाठ, संहिता शास्त्र, त्रैवर्णिकाचार, कथाकोषादि जितने ग्रन्थ हैं उन सब में हैं। फिर पंचामृताभिषेक कैसे अनुचित हैं यह मालूम नहीं पडता। हाँ एक कारण इसके निषेध का कहा भी जा सकता हैं। वह यह हैं। अर्थात् जो बात जो विषय अपने अनुकूल हुआ उसे विनय दृष्टि से देखा और जो ध्यान में नहीं जचा उसे प्राचीन होने पर भी अनुपयोगी ——

इसको छोड़ कर दूसरा कारण अनुभव में नहीं आता। यदि यह ठीक न होता तो जिस पद्म पुराण के श्रद्धा पूर्वक पठन पाठन का दिनरात अवसर मिलता हैं उसी के प्रकरण को उपेक्षा क्यों ? जिस जगह पचामृताभिषेक तथा गन्धलेपनादि का वर्णन हैं।

तुम्हारे कथनानुसार कदाचित मान भी लिया जाय कि यह काम भट्टारकों का ही किया हुआ हैं तो फिर पंडित आशाधरादि विद्वानों के रचे हुवे शास्त्रों में इस सम्बन्ध के लेख नहीं होने चाहिये। क्योंकि भट्टारकों को उत्पात के पहले जैन मत में किसी प्रकार का पाषंड नहीं था। इसे उभय सम्प्रदाय के सज्जनों को निर्विवाद स्वीकार करना पड़ेगा। भट्टारकों की उत्पत्ति विक्रमाब्द १३१६ में हुई हैं और आशाधर १२०० के अनुमान में हुवे हैं। इसे लिखने से हमें यह वात सिद्ध करना है कि भट्टारकों से पहले के महर्षियों तथा विद्वानों के ग्रन्थों में पंचामृताभिषेक का वर्णन हैं। इसलिये पंचामृताभिषेक अनुचित नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न— पंचामृताभिषेक काष्ठासंघ से चला है। मूल संघ में तो केवल जलाभिषेक है।

क्योंकि— आदि पुराण में लिखा है:—

देवेन्द्राः पूजयन्त्युच्चैः क्षीरोदाम्भोभिषेचनैः।

अर्थात्— देवता लोग क्षीर समुद्र के जल से जिन भगवान का अभिषेक करते हैं।

उत्तर— यदि पंचामृताभिषेक काष्ठासंघ ने ही प्रचलित किया होता तो उसका विधान मूल संघ के ग्रन्थों में देखने में नहीं आता। परन्तु इसे तो उमास्वामी, वामदेव, वसुनन्दि, पूज्यपाद, कुन्दकुन्द, योगीन्द्रदेव, अकलंकदेव सोमदेव, इन्द्रनन्दि और श्रुतसागर मुनि आदि सम्पूर्ण मूल संघाम्नायी महर्षियों ने श्रावकाचार भावसंग्रह, जैनाभिषेक, षट्पाहुड़वृत्ति, प्रायश्चित, यशस्तिलक, पूजासार कथाकोषादि शास्त्रों में लिखा है। ये महर्षि मूलसंघी नहीं हैं क्या? इस विषय के सिद्ध करने का जो प्रयत्न करेंगे उनका बड़ा भारी उपकार होगा।

आदि पुराण के श्लोक में देवताओं ने जलाभिषेक किया हुआ लिखा है हम भी उसे स्वीकार करते हैं। परन्तु केवल जलाभिषेक के करने मात्र से तो पञ्चामृताभिषेक अनुचित नहीं कहा जा सकता। निषेध तो उसी समय स्वीकार किया जा सकेगा जब कि जिस तरह उसका करना सिद्ध होता है उसी तरह निषेध भी हो। और यदि ऐसा ही मान लिया जाय तो "देवता लोगों ने पञ्चामृताभिषेक किया" लिखा हुआ है फिर उससे जलाभिषेक का निषेध हो सकेगा?

इक्षुरसादिपञ्चामृतैरभिषेकं कृतवन्तः

यह पाठ शुभचन्द्र मुनि के शिष्य पद्मानन्दि मुनि ने नन्दीश्वर द्वीप की कथा में लिखा है। फिर कहो इस विषय के निर्णय के लिये क्या उपाय कहा जा सकेगा? हमारी समझ के अनुसार तो

"सर्वेषां लोचनं शास्त्रमिति" इस किंवदन्ती के अनुसार शास्त्रों के द्वारा निर्णय करके उसी के अनुसार चलना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि पञ्चामृताभिषेक सशास्त्र है। उसे स्वीकार करना अनुचित नहीं है। किन्तु स्वर्गादि सुखों का कारण है।

प्रश्न— पंचामृताभिषेक के करने से लाभ क्या है ?

उत्तर— जो लाभ जलाभिषेक के करने से होता है वही लाभ पंचामृताभिषेक के करने से भी मानने में कोई हानि नहीं है। यह तो भक्तिमार्ग है। इससे जितनी परिणामों की अधिक शुद्धता होगी उतना ही विशेष पुण्यबन्ध होगा। क्योंकि गृहस्थों का धर्म ही दान पूजादिमय है। इनके बिना गृहस्थों को परिणामों के निर्मल करने के लिये दूसरा अवलम्बन नहीं है।

गन्धलेपन

जिस तरह पंचामृताभिषेक करना शास्त्रों में लिखा हुआ है। उसी तरह गन्धलेपन अर्थात् जिन भगवान् के चरणों पर केशर का लगाना भी लिखा हुआ है। लिखा हुआ ही नहीं है किन्तु प्रतिष्ठादि क्रियाओं में गन्धलेपनादिकों के बिना प्रतिमाओं में पुज्यता ही नहीं आती। उसी गन्धलेपन के विषय में लोगों का यों कहना है कि:—

देव देव सवही कहैं देव न जाने कोय।
लेपपुष्प अरू केवड़ा कामीजन के होय॥
मेटो मुद्रा अवधि सों कुमति कियो कुदेव।
विघन अंग जिनविम्व को तजै समकिती सेव॥

सारांश यह है कि यद्यपि देवत्व की कल्पना सबही करते हैं। परन्तु देव के यथार्थ स्वरूप से प्रायः वे अनभिज्ञ हैं। इसलिये जिन लोगों का मत जिन प्रतिमाओं पर गन्धपुष्पादिकों के चढ़ाने का है वह ठीक नहीं है। जिन प्रतिमाओं की वास्तविक छवि को विगाड कर दुर्मतियों ने उन्हें कुदेव की तरह बना दी हैं। इसलिये सम्यग्दृष्टि पुरूषों से हम अनुरोध करते हैं कि जिन प्रतिमाओं के ऊपर गन्धपुष्पादि चढ़े हों उन्हें नमस्कारादि नहीं करना चाहिये

इसी तरह और भी असत्कल्पनाओं का व्यूह रचा जाता है। उसमें प्रवेश किये हुवे मनुष्यों का निकलना एक तरह कठिन हो जाता हैं। कठिन ही नहीं किन्तु नितान्त ही असंभव हो जाता है। यहीं कारण है कि आज विपरीत प्रवतियों के दूर करने के लिये प्राचीन महर्षियों के ग्रन्थों के हजारों प्रमाणों के दिखाये जाने पर भी किसी की उन पर श्रद्धा अथवा भक्ति उत्पन्न नहीं होती। अस्तु। उन ग्रन्थों को चाहे कोई न माने तो, न मानो वे किसी के न मानने से अप्रमाण नहीं हो सकते। परन्तु यह बात उन लोगों को चाहिये कि किसी विषय की समालोचना यदि करनी ही हो तो, जरा सरल और सीधे शब्दों में करनी चाहिये। कटुक शब्दों में की हुई समालोचना का समाज पर कैसा असर पड़ेगा, यह बात विचारने के योग्य है। लेखक महाशय ने जितनी कड़ी लिखावट जिन प्रतिमाओं के सम्बन्ध में लिखी है उससे भी कहीं अधिक उस सम्प्रदाय के लोगों पर लिखी होती तो हमें इतना दुःख और खेद नहीं होता जितना जिन प्रतिमाओं के सम्बन्ध की लिखावट के देखने से होता हैं।

ये दोहे चाहे किसी विद्वान् के बनाये हुवे हों अथवा छोटी बुद्धिवाले के। परन्तु ये प्राचीन नहीं है ऐसा कहने में किसी को हानि भी नहीं है। खैर! प्राचोन न होकर भी यदि शास्त्र विहित होते तो, हमें किसी तरह का विवाद नहीं था। परन्तु केवल प्राचीन शास्त्रों को अपनी की हुई असत्तर्कों से सदोष बताना यह भी अनुचित हैं। इन दोहों का मतलब अर्थात यों कहो कि अपने दिली विचार बुद्धिमानों की दृष्टि में कहां तक प्रमाण भूत हो सकेंगे ? इसे मैं नहीं कह सकता।

लेखक महाशय ने जिनभगवान् के ऊपर गन्धपुष्पादिकों के चढ़ने से उन्हें कामी पुरुष की उपमा दी है यह उनके शान्त भाव का परिचय समझना चाहिये। जरा पाठक विचारे कि महाराज भरत चक्रवर्त्ति के विषय में "भरत जी घर ही में वैरागी" यह किम्वदन्ती आज तक चली आती है। परन्तु यदि साथ ही उनके छ्यानव हजार अङ्गनाओं आदि ऐश्वर्य के ऊपर भी ध्यान दिया जाय तो, कोई इस तरह उग्दार नहीं निकल सकता। और उनके आन्तरङ्गिक पवित्र परिणामों की ओर लक्ष्य देने से यह लोकोक्ति अनुचित भी नहीं कही जा सकती। इतने प्रभूत ऐश्वर्यादिकों के होने पर भी महाराजभरत चक्रवर्त्ति के सम्वन्ध में किसी ग्रन्थकार ने उन्हें यह उपमा नहीं दी कि वे इतने आडम्वर के संग्रह के सम्वन्ध से कामुक हैं। उसी प्रकार गृहस्थ अवस्था में रहते हुवे तीर्थंकर भगवान् को भी किसी ने कामी नहीं लिखा। फिर शास्त्रानुसार किंचित गन्ध पुष्पादिकों के सम्वन्ध से त्रिभुवन पूजनीय

जिनदेव के विषय में इस तरह अश्लील शब्द के प्रयोग को कौन अभिभव की दृष्टि से न देखेगा ?

कदाचित कहो कि यह कहना तो ठीक है परन्तु जो पहिले कहा गया था कि गन्धपुष्पादिकों के बिना प्रतिमाओं में पूज्यत्व ही नहीं आता। उसी तरह हम भी तो यह कह सकते हैं कि प्रतिष्ठादिकों के समय में तो अलंकारादिकों का भी संसर्ग रहता तो फिर इस वक्त भी जिन प्रतिमाओं को भूषणादि पहराना चाहिये।

किसी विषय का निषेध अथवा विधान हमारे किये नहीं होता। यही कारण है कि आज हम हजारों प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों को प्राचीन विषयों के सम्बन्ध में देते हैं तो भी उन्हें कोई स्वीकार नहीं करते। फिर जिस बात का खास हमारे द्वारा विधान होगा उसे तो कब स्वीकार करने के। इसलिये गन्धपुष्पादिकों के चढ़ाने का विधान जब जैनशास्त्रों में लिखा हुआ मिलता है तब ही हमें उसके प्रचार की आवश्यकता पड़ी है। और अलंकारादिकों के विषय में आचार्यों का मत नहीं है इसलिये उनका निषेध किया जाता है।

लेखक का दूसरा कथन जिन प्रतिमाओं पर यदि गन्धपुष्पादि चढ़े हों तो, उन प्रतिमाओं को नमस्कार पूजनादि के निषेध में है।

परन्तु यह कहना भी निराबाध नहीं है। पहले तो प्रतिष्ठित जिनप्रतिमायें किसी समय में अपूज्य नहीं हो सकती। यदि थोड़ी देर के लिये यही बात मान ली जाय तो, उन लोगों के मत से

अपूज्य प्रतिमाय फिर पूज्य नहीं होनी चाहिये। और यह कहते हुवे तो हमने बहुतों को देखे हैं कि जब तक गन्धपुष्पादिक प्रतिमाओं पर चढ़े रहते हैं तब तक तो वे अपूज्य रहती हैं और जब उनका गन्धपुष्पादि दूर कर दिया जायगा उसी समय वे पूज्य हो जायेगी इसका तो यह मतलब कहा जा सकता है कि पूज्य तथा अपूज्यत्व की शक्ति गन्धपुष्पादिकों में है स्वतः प्रतिमाओं में पूज्यत्व नहीं है। इसलिये जब गन्धपुष्पादिक चढ़े हुवे रहते हैं तब तो प्रतिमाओं का प्रभुत्व चला जाता है और ज्योंही उसे जल से धो डाला उसी समय प्रभुत्व, दौड कर आ बैठता है। इस पर हमारी यही समीक्षा है कि जिन प्रतिमाओं के त्रैलोक्य पूज्यत्व गुण को अतिशय अल्प गन्ध के हरण कर लेता है उन प्रतिमाओं के दर्शनों से हमारे जीवन जीवन के पाप कैसे दूर हो सकेंगे? जिन प्रतिमाओं में अपने बड़े भारी पूज्यत्व गुण की रक्षा जरा से गन्ध से करने की सामर्थ्य नहीं है उन प्रतिमाओं के पूजन विधानादिकों से कर्म समूह का पराजय होना एक तरह से दुष्कर ही करना चाहिये।

यदि केवल गन्धपुष्पों के चढ़ने मात्र से जिन प्रतिमाओं में अपूज्यत्व की कल्पना कर ली जाय तो भामंडल, छत्र, रथ, और चामरादिक पदार्थों का निरन्तर सम्बन्ध रहने से क्योंकर पूज्यता बनी रहेगी? भामंडलादि तो गन्धपुष्पों और भी अधिक हानि का कारण है।

प्रश्न-- भामंडलादिकों का प्रतिमाओं से सम्बन्ध नहीं रहता है। और गन्धपुष्पादिकों को तो उनके चरणों पर ही चढ़ाने

पड़ते है। इसलिये भामंडलादिकों और गन्धपुष्पादिकों की समानता नहीं हो सकती। और यदि यही बात मान ली जाय तो, अकंलक स्वामी के प्रतिमा पर तन्तु मात्र के डालने में वह अपूज्य क्यों मानी गई थी? जिस तरह तन्तु प्रतिमाओं के निग्रन्थता का बाधक है उसी तरह गन्धलेपनादिकों की भी कहना किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता।

उत्तर— इस बात को कौन नहीं कहेगा कि भामडलादिकों का प्रतिमाओं से स्पर्श नहीं होता। परन्तु हां केवल इतना फर्क अवश्य देखा जाता है कि गन्धपुष्पादिकों का सम्बन्ध चरणों से होता है और भामंडलादिकों का पीठादिकों से केवल इतना फर्क से स्पर्श ही नहीं होना यह कोई नहीं कह सकता। इतने पर भी अकलंकस्वामि के विषय को उठाकर दोष देना अयोग्य नहीं है क्या? अस्तु। यदि अकलंकदेव के विशेष कार्य को उदाहरण बना कर निषेध किया जाय तो भी तो निराबाध नहीं ठहर सकता। इस बात को सब कोई जानते हैं कि जिन भगवान् के अभिषेक के बाद उनका मार्जन करने के लिये हाथ २ दो दो हाथ कपड़े की जरूरत पड़ती है। जरूरत ही नहीं पड़ती, किन्तु उसके बिना काम ही नहीं चलता। फिर उस समय प्रतिमाएं पूज्य रहेंगी? अथवा अपूज्य? यदि कहोगे पूज्य ही बनी रहेंगी तो जिस तरह वस्त्र का

सम्बन्ध रहने से प्रतिमायें पूज्य वनी रहती हैं उसी तरह शास्त्रानुसार गन्धपुष्पादिकों के चढ़ने से भी किसी तरह पूज्यत्व में वाधा नहीं आ सकती। कदाचित् किसी कारण विशेष के प्रतिवन्ध से यह वात ध्यान में न आवे तो मैं नहीं कह सकता कि उसकी उल्टी युक्ति को कोई स्वीकार करेगा ?

प्रश्न— माना हमने कि कपड़े का लगाना एक तरह प्रतिमाओं के निग्रन्थता का बाधक है। परन्तु इसके विना काम नहीं चलता। इसलिये मार्जन क्रिया को शास्त्रानुसार होने से लगाना ही पड़ता है। परन्तु गन्धपुष्पादिकों के तो अभाव में भी काम निकल सकता है। दूसरे वस्त्र का उसी समय तक सम्वन्ध रहने से प्रतिमाओं की शान्त मुद्रा में किसी तरह का विकार भी नहीं आता। और गन्धपुष्पादिकों के सम्बन्ध से तो प्रत्यक्ष शान्त मुद्रा में विकार दिखाई देता है। इसलिये भी कह सकते हैं कि गन्धपुष्पादिकों का चढ़ाना अनुचित है।

उत्तर—किसी विषय को बाधा देना उसी समय ठीक कहा जा सकता है कि जव बाधा देने वालों का कहना निर्दोष सिद्ध हो जाय। और यदि अपना कहा हुआ अपने पर ही सवार हो जाय तो, कोन बुद्धिमान उसे योग्य कहेगा ? तो जव तुम कपड़े को निग्रन्थ स्वरूप का बाधक मान चुके हो

परन्तु अनुरोध वश तथा शास्त्रानुसार होने से उस का उपयोग करना ही पड़ता है। फिर उसी तरह गन्धलेपन को शास्त्रानुसार स्वीकार करने में कोन सी हानि कही जा सकेगी ? यदि शास्त्रों में गन्धलेपन का विधान न होता और लोग मनमानी प्रवृति से उसे स्वीकार करने लग जाते तो, तुम्हारा कहना वेशक ठीक कहा जा सकता था। परन्तु ऐसा न होकर जब वह शास्त्रानुसार है फिर उसे सादर स्वीकार करना चाहिये। गन्धलेपन से शान्त-मुद्रा का भङ्ग वताना भी ठीक नहीं है। जव थोड़े से गन्धलेपन से शान्तमुद्रा का भङ्ग कहोगे तो, क्या उसी तरह हाथ २ दो दो हाथ वस्त्र के सम्बन्ध से शान्तमुद्रा का भङ्ग हम नहीं कह सकते हैं ? यदि वास्तव में तत्त्व-दृष्टि मे विचारा जाय तो इस प्रकार कहना किसी तरह अनुचित नहीं कहा जा सकता। जिन लोगों के मत से गन्ध लेपनादि के संसर्ग से जिन प्रतिमाओं की शान्तमुद्रा का भङ्ग होना माना जाता है उन लोगों के सुक्ष्मतर अभि-प्रायों के अनुसार प्रतिमाओं को करोड़ों रूपयों के लागत के जिनालयों में विराजमान करना, चांदी सोने के रथा-दिकों में वैठाकर बाजारों में सवारी निकालना, तथा उ-नके ऊपर लाखों रूपयों के छत्र,चामर, और भामंडलादि लगाना ये सब कारण शांतमुद्रा के वाधक हैं। इसीकारण मुनियों को इनके सम्बन्ध का निषेध किया गया है। क्या

शान्तमुद्रा के धारण करने वालों के लिये छोटे से मकान में काम नहीं चलता ? सिंहासन,भामंडल, छत्र, चामरादिकों के न रहने से सौम्य छवि में बाधा आवैगी क्या ? अथवा वीतरागियों का रथ में वैठे विनाकाम नहीं चलेगा ? मैं तो इन बातों को स्वीकार नहीं कर सकता ।

प्रश्न— वीतरागियों के लिये न तो मन्दिरों की आवश्यकता है । न सिंहासन, भामंडल, छत्र, और चामरादिकों को जरूरत है । और रथ में वैठे विना काम नहीं चलता सो भी नहीं है । किन्तु यह एक भव्य पुरूषों की गाढ़ भक्ति का परिचय है । तथा पहले भी समवशरणादिकों की रचना होती थी इसलिये प्राचीन और शास्त्रोक्त भी है । इसी कारण इतना विस्तार वढ़ाया जाता है ।

उत्तर — इसी तरह प्रतिपक्ष में हम भी यह कह सकते हैं कि वीतराग भगवान् को गन्धलेपनादिकों की कोई जरूरत नहीं परन्तु यह पूजक पुरूष की अखंड भक्ति का परिचय है । इसलिये गन्ध लेपनादि क्रियायें की जाती हैं । अन्यथा गन्धलेपन तो दूर रहें, किन्तु भगवत्की पूजन करने की भी कोई आवश्यकत्ता नहीं है ।

प्रश्न— फिर तो यह वात भक्ति के उपर निर्भर रही ? यदि यही वात है तो, तुम्हारे कथनानुसार अलंकारादिक भी भक्ति के अंग हो सकते हैं ।

उत्तर— पहले तो यह प्रश्न ही वेढंग है। अर्थात् यों कहना चाहिये कि शास्त्रविरुद्ध होने से यह प्रश्न ही नहीं हो सकता। यदि मान भी लिया जाय तो, इसका उत्तर पहिले भी हम लिख आये हैं। फिर भी यह कहना है कि यह विधान शास्त्रानुसार नहीं है। इसलिये प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसे भी यदि कोई स्वीकार न करें तो, यह दोष केवल हमारे ऊपर ही क्यों ? उन लोगों पर भी तो लागू हो सकता है जो गन्ध लेपनादिकों का निषेध करने वाले हैं। क्योंकि जिस तरह वे मन्दिरादि कार्यों के करने को भक्ति का परिचय बताते हैं। उसी तरह अलंकारादिक भी भक्ति के अंग भूत कहे जा सकते हैं।

गन्धलेपन को युक्तियों के द्वारा बहुत कुछ लिख चुके हैं अब देखना चाहिये कि इस विषय का शास्त्रों में किस तरह वर्णन हैं।

भगवान् उमास्वामी कृत श्रावकाचार में:—

प्रभाते घनसारस्य पूजा कार्या जिनेशिनाम्

तथा:—

चन्देन विना नैव पूजां कुर्यात्कदाचन।

अर्थात्— प्रातःकाल में जिन भगवान् की घनसार से पूजन करनी चाहिये। तथा पूजक पुरूष को योग्य है कि पूजन चन्दन के बिना कभी नहीं करे। खुलासा यों है कि जिन भगवान् की पूजन प्रातःकाल में घनसार से, करने का उपदेश है। मध्यान्ह

काल में पुष्पों से, और संध्या समय में दीपक से, परन्तु विशेष इतना है कि इन तीनों समय में चन्दन पूर्वक पूजन करनी चाहिये।

भाव संग्रह में श्री वामदेव महाराज लिखते हैं:—

चंदणसुअंधलेओ जिणवरचलणेसु
कुणइ जो भविओ।
लहइ तणु विक्किरियं सहावस-
सुअंधयं विमलं॥

अर्थात्— जो भव्य पुरुष जिन भगवान् के चरणों पर सुगंध चन्दन का लेप करते हैं वे स्वाभाविक सुगंधमय, निर्मल और वैक्रियक शरीर को धारण करते हैं।

श्री वसुनन्दि श्रावकाचार में:—

कप्पूरकुंकुमायरुतरुक्कमिस्सेण चंदणसेण।
वरबहुलपरिमलामोयवासियासासमूहेण॥
वासाणुमग्ग संपत्तामयमत्तालिरावमुहलेण।
सुरमउडघडियचरणं भत्तिए समलहिज्ज जिणं॥

भावार्थ— देवताओं के मुकुट से घर्षित जिन भगवान के चरण कमलों पर कप्पूर, केशर, अगुरू, और मलयागिरि चन्दन आदि अतिशय सुगन्धित द्रव्यों से मिला हुआ, अत्यन्त सुगन्ध से दशों दिशाओं के समूह को सुगन्धित करने वाला, और अपनी स्वभाविक सुगन्ध से आई हुई भ्रमरों को श्रेणि के शब्दों से

शब्दायमान पवित्र चन्दन के रस से भक्ति पूर्वक लेप करना चाहिये ।

श्री पद्मनन्दि पच्चीसी में:—

यद्वद्वचो जिनपतेर्भवतापहारि
नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत् ।
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रणं करोति ।।

अर्थात्— इस संसार में जिस तरह जिन भगवान् के वचन संसार के संताप को नाश करने वाले हैं, और शीतल भी हैं उसी तरह मैं शीतल नहीं हूं। इसी कारण मेरे द्वारा चढ़ा हुआ चन्दन आप के चरणों का आश्रय करता है। इसी श्लोक की टीका में लिखा है कि :— "अनेन व्रतेन चन्दनं प्रक्षिप्यते टिप्पका च दीयते" इति ।

श्री अभयनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ति श्रेयोविधान में यों लिखते हैं:—

काश्मीर पंकहरि चन्दनसारसान्द्र-
निष्यन्दनादिरचितेन विलेपनेन ।
अव्याजसौरभतनुं प्रतिमां जिनस्य
संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ।।

भावार्थ— स्वभाव से सुगन्धित शरीर को धारण करने वाली जिन भगवान् की प्रतिमाओं को केसर और हरिचन्दनादि

सुगन्धित द्रव्यों मे बनाये हुए विलेपन से संसार के दुःखों को नाश करने के लिये पूजता हूं।

श्री वसुनन्दि जिन संहिता में लिखा है :—

अनर्चितं पदद्वंद्वं कुंकुमादिविलेपनैः।
विम्बं पश्यति जैनेन्द्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥

अर्थात– केशरादिकों के विलेपन से रहित जिन भगवान् के चरण कमलों के दर्शन करनेवाला ज्ञान करके हीन समझना चाहिये।

श्री एक सन्धि संहिता में लिखा है :—

यस्य नो जिनविम्वस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः।
पादपद्मद्वयं भव्यैस्तद्वन्द्यं नैव धार्मिकैः ॥

अर्थात— जिन जिनप्रतिमाओं के चरणों पर केशरादि सुगन्ध द्रव्यों का विलेपन नहीं लगा हुआ हो उन्हें धर्मात्मा पुरुष नमस्कारादि नहीं करें।

इन्द्रनन्दि पूजा सार में :—

ॐ चन्दनेन कर्पूरमिश्रणेन सुगन्धिना।
व्यालिम्पामी जिनस्याङ्घ्री निलिम्पाधीश्वरार्चितौ ॥

अर्थात्— इन्द्रादिकों से पूजनीय जिन भगवान् के चरण कमलों पर कर्पूर से मिले हुवे और सुगन्धित, चन्दन से लेपन करते हैं।

श्री धर्मकीर्त्ति कृत नन्दीश्वर पूजन में :—

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचन्दनेन
ये जैनपादयुगलं परिलेपयन्ति ।
तिष्ठन्ति ते भविजनाः सुसुगन्धगन्धा
दिव्याङ्गनापरिवृताः सततं वसन्ति ॥

अर्थात्— जो जिन भगवान् के चरण कमलों पर कर्पूर केशरादिकों के रस से मिले हुवे सुगन्धित चन्दन का लेप करते हैं। वे भव्य पुरुष निरन्तर देवाङ्गनाओं से वेष्ठित होते हुवे स्वर्ग में निवास करते हैं।

पूजा सार में कहा है:—

ब्रह्मघ्नोऽथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृत् ।
जिनाङ्घ्रिगन्धसर्पकान्मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥

अर्थात्— ब्रह्म हत्या को किये हुवे हो, गाय का घात किया हो, अथवा चोर हो, ये भी दूर रहे, किन्तु सम्पूर्ण पापों का करने वाला भी क्यों न हो, जिन भगवान् के चरणों के गन्ध का स्पर्श करने से सम्पूर्ण पापों से उसी समय रहित हो सकेगा।

वसुनन्दि श्रवकाचार में:—

चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसंपएणो ।

अर्थात्— जिन भगवान् के चरणों पर लेप करने वाला सौभाग्य करके युक्त होता है।

श्री ब्रह्म नेमिदत्त नेमिनाथ पुराण में यों लिखते हैं;—

चन्दनागुरुकाश्मीर सम्भवैः सुविलेपनैः ।
जिनेन्द्रचरणाम्भोजं चर्चयन्ति स्म शर्म्मदम् ।।

अर्थात्— चन्दन, अगरू, और केशर से बनाये हुवे विलेपन से जिन भगवान् के चरण कमलों को पूजते हुवे ।

श्री षट्कर्मोपदेशरत्नमाला में:—

इतीमं निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती ।
श्री जिनप्रतिविम्बानां स्नपनं समकारयत् ।।
चन्दनागुरुकर्पूरसुगन्धैश्च विलेपनम् ।
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसन्ध्यकम्

अर्थात्—इस प्रकार निश्चय करके जिन भगवान् की प्रतिमाओं का सात दिन तक अभिषेक कराती हुई। तथा चन्दन, अगरू, और कर्पूरादि सुगन्धित वस्तुओं से जिन भगवान के ऊपर अनुराग पूर्वक विलेपन करती हुई। इत्यादि वहुत से प्राचीन २ ग्रन्थों में गन्ध लेपन करना लिखा हुआ है। इसलिये गन्धलेपन न तो सरागता का द्योतक है और न उसके लगने से प्रतिमायें अपूज्य होती हैं। जो लोग इस विषय के सम्बन्ध में दोष देते हैं वह शास्त्रानुसार नहीं है इसलिये प्रमाण भी नहीं माना जा सकता

प्रश्न— पद्मनन्दि पच्चीसी में लेपन के स्थान में आश्रय पद का प्रयोग किया गया है। परन्तु आश्रय के प्रयोग से लेपन अर्थ नहीं हो सकता।

उत्तर— यदि आश्रय पद का लेपन अर्थ हम अपने मनोनुकूल करते तो तुम्हारा कहना ठीक भी था। परन्तु जब कोषादिकों में भी यही अर्थ मिलता है तो, वह अप्रमाण नहीं हो सकता। दूसरे उस श्लोक की टीका में स्पष्ट लिखा हुआ है कि इस पद से लेपन लगाना चाहिये। फिर हम उसे अप्रमाण कैसे कह सकते हैं ?

श्री पंडित शुभशील, अनेकार्थ संग्रह कोष में विलेपन शब्द की जगहँ और भी कितने प्रयोग लिखते हैं:—

> विलेपने चर्चनचर्चिते
> समाश्रयाऽऽलंभनसंश्रयाश्च ।
> समापनं प्रापणमाप्तिरीप्सा
> लब्धिः समालब्धिरथोपलब्धिः ॥

अर्थात्— चर्चन, चर्चित, समाश्रय, आलंभन, संश्रय, समापन प्रापण, आप्ति, ईप्सा, लब्धि, समालब्धि और उपलब्धि इन प्रयोगों को विलेपन अर्थ की जगहं लिखना चहिये।

प्रश्न— चर्च धातु के प्रयोग पूजन अर्थ में आते हैं इसलिये कितनो जगहँ चर्च धातु के प्रयोग से लेपन अर्थ किया गया है वह ठीक नहीं है। कितनीं जगहँ "चर्चें तं सलिलादिकः" इसी तरह पाठ भी आता है। यदि चर्च धातु का लेपन अर्थ ही किया जाय तो साथ ही जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प,

नैवेद्य, दीप, धूप, और फल ये अष्ट द्रव्य भी जिन भगवान् के ऊपर चढ़ाना पड़ेंगे ?

उत्तर— जैनाचार्यों के मतानुसार एकान्त से अर्थ करना अनेकान्त का बाधक है। यदि चर्च धातु के प्रयोग केवल पूजन अर्थ में ही आते होते तो, यह बात ठीक मान ली जाती। परन्तु सैंकड़ो जगहें चर्च धातु के प्रयोगों का लेपन अर्थ भी तो किया गया है। फिर लेपन अर्थ का निषेध कैसे माना जा सकेगा ? दूसरे चर्च धातु का लेपन अर्थ करने में प्रमाण भी मिलते हैं। ऊपर पंडित शुभशील का मत तो दिखा ही आये हैं। और इसी तरह अमर कोष में भी लिखा हुआ मिलता हैं। अमर कोष के विषय में तो यहां तक किम्वदन्ती सुनने में आती है कि इसके कर्त्ता महाकवि श्री धनजन्य थे। अमरसिंह तथा इन में घनिष्ठ सम्बन्ध था। अमरसिंह ने अमरकोष को किसी तरह हरण करके उसे अपना बना लिया। अस्तु। जो कुछ हो उसमे हमें कुछ प्रयोजन नहीं। परन्तु अमरकोष अभी अमरसिंह के नाम से प्रसिद्ध हो रहा है।

स्नानं चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकोऽथ प्रबोधनम्।

अर्थात्— चर्चा, चार्चिक्य और स्थासक ये तीन नाम चन्दनादि सुगन्ध वस्तुओं से लेप करने के हैं।

"लेपे च सेवने चादी चर्चयामि" इति।

अर्थात्— लेपन तथा पूजन अर्थ में "चर्चयामि" ऐसा प्रयगो करना चाहिये। कहने का मतलब यह है कि चर्च धातु के प्रयोग बहुधा करके लेपन अर्थ में आते हैं और कहीं कहीं पूजन अर्थ में भी आ जाते हैं। इसलिये जहां गन्ध अथवा पुष्प पूजन का सम्बन्ध हो वहां पर ऊपर लगाने अथवा चढ़ाने का अर्थ करना चाहिये। और अष्टद्रव्यादिकों का सम्बन्ध हो वहां पूजन अर्थ करना चाहिये इस अर्थ के करने में किसी तरह की बाधा नहीं आती। बाधा उस समय में आ सकती थी जब और आर्ष ग्रन्थों में लेपन का निषेध होता इतने पर भी यदि पूजन अर्थ ही करना योग्य माना जाय तो, भाव संग्रह, वसुनन्दि संहिता, श्रावकाचार, पूजासारादि ग्रन्थों में खास लेपन शब्द प्रयोग आया है वहां पर किस तरह निर्वाह किया जायगा ?

प्रश्न— वसुनन्दि संहिता, तथा एकसन्धि संहिता के श्लोकों से विरोध का आविर्भाव होता है ?

उत्तर— वह किस तरह ?

प्रश्न— यदि यही बात ठीक मान ली जाय तो, क्या केवली भगवान् के दर्शन पूजनादि करने वाले अज्ञानी अथवा अधमात्मा कहे जा सकेगें ?

उत्तर— क्या इसे ही विरोध कहते हैं ? अस्तु। परन्तु यह कहना ठीक नही हैं। क्योंकि केवली भगवान् और प्रतिमाओं की पूजनादि विधियों में प्रायः अन्तर देखा जाता है।

उत्तर— अकृत्रिम तथा कृत्रिम प्रतिमाओं में भी प्रतिष्ठादि क्रियाओं का भेद रहता है। एक की प्रतिष्ठादि होती है एक की नहीं होती यह भी सामान्य भेद नहीं है। यह भी दूर रहे, परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है कि अकृत्रिम प्रतिमाओं पर गन्ध नहीं लगता है शास्त्रों में तो गन्ध लगाने का प्रमाण मिलता है फिर उसे अप्रमाण नहीं कह सकते। इसलिये जिस अभिप्राय से वसुनन्दि स्वामी का कहना है वह बहुत ठीक है। उस में किसी तरह का विरोध नहीं कहा जा सकता। इतने पर भी यदि यह बात न मानी जाय तो, केवली भगवान् का अभिषेक नहीं होता फिर प्रतिमाओं का भी नहीं होना चाहिये। केवली भगवान् अन्तरीक्ष रहते हैं प्रतिमाओं को भी वैसे ही रहना चाहिये केवलीजिन परस्पर में कभी नहीं मिलते हैं प्रतिमाओं को भी एक जिनालय में एक ही को रहना चाहिये। इत्यादि

प्रश्न— खैर! मान लिया जाय कि केवली भगवान् की और प्रतिमाओं की पूजनादि विधियों में अन्तर है। परन्तु अकृत्रिम प्रतिमाओं में तो भेद नहीं रहता? फिर इनके दर्शन पूजनादि करने वालों को ज्ञान हीन कहना पडेगा?

मुनि कनककीर्त्ति नन्दीश्वर द्वीप पूजन विधान में यों लिखते हैं:—

विलेपनं दिव्यसुगन्धद्रव्यं
येषां प्रकुर्वन्त्यमराश्च तेषाम्।

कुर्वेऽहमङ्गे वरचन्दनाद्यै-
र्नन्दीश्वरद्वीपजिनाधिपानाम् ॥

अर्थात्— नन्दीश्वर द्वीप में जाकर जिनके शरीर में देवता लोग सुगन्धित चन्दनादि द्रव्यों से लेप करते हैं उन्हीं जिन भगवान् के पावन देह में उत्तम चन्दनादि वस्तुओं से आज में भी विलेपन करता हूं।

चन्द्रप्रभु चरित्र में पण्डित दामोदर भी यों ही लिखते हैं:—

अकृत्रिमं मनोहारि स्वपरिवारमण्डितः ।
ततः सोऽगाज्जिनागारं निजसद्मनि संस्थितम् ॥
त्रिः परीत्य विनम्राङ्गों जिनेन्द्रप्रतिमाः शुभाः ।
नत्वा पुनः स्तुतिञ्चक्रे फलदैस्तद्गुणव्रजैः ॥
जलैः सुरभिभिः शीतैः सच्चन्दनविलेपनैः ।
मुक्ताक्षतैः शुभैः पुष्पैश्चरूभिश्च सुधामयैः ॥
रत्नदीपैः कृतोद्योतैः सद्धूपैर्घ्राणतर्पणैः ।
सुरद्रुमोद्भवैः सारैः फलौघैः सत्फलप्रदैः ॥
भव्यनिकर चित्तेषु हर्षोत्कर्षविधायिनीम् ।
पूजां भगवतोऽकार्षीव्दहुभवाघनाशिनीम् ॥

भावार्थः— फिर वह अच्युतेन्द्र अपने मडल में स्थित मनोहर अकृतिम जिन मन्दिर में गया। वहां तीन प्रदक्षिणा देकर जिन भगवान् की सुन्दर प्रतिमाओं की स्तुति करने लगा। फिर सुगन्धित और अत्यन्त शीतल जल से, उत्तम २ चन्दनादि

द्रव्यों के विलेपन से, मोतियों के अक्षतों से, नाना प्रकार के मनोहर फूलों से, अमृत मयी नैवेद्यों से, प्रकाशित रत्नों के दीपकों से, नासिका के सन्तुष्ट करने वाली धूप से, और उत्तम फलों के देनेवाले अच्छे २ नारङ्गी अनार, आम आदि फलों से, भव्य पुरुषों के चित्त में हर्ष को बढ़ाने वाली और जीवन जीवन के पापों को नाश करने वाली जिन भगवान् की पूजन करता हुआ। इससे जाना जाता है कि अकृत्रिम प्रतिमाओं पर भी चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन किया जाता है।

प्रश्न— वसुनन्दि संहिता तथा एक सन्धि संहिता में गन्धलेपन रहित प्रतिमाओं के पूजनादिकों का सर्वदा निषेध किया गया है। केवल निषेध ही नहीं किन्तु उनके पूजनादि करने वालों को अज्ञानी तथा अधर्मात्मा बताया गया है। यह बात समझ में नहीं आती कि इन श्लोकों के ग्रन्थकर्त्ताओं का क्या मतलब है? दूसरे इन श्लोकों के अर्थ पर विचार करने से यह भी प्रतीति होती है कि ग्रन्थ कर्त्ताओं के समय में उन लोगों के मतका प्रचार था जो गन्ध लेपनादिकों का निषेध करने वाले हैं। अधिक विचार करने से और भी प्राचीन सिद्ध हो सकते हैं? फिर यों कहना चाहिये कि गन्ध लेपनादिकों के निषेध करने की प्रथा आधुनिक नहीं है किन्तु प्राचीन है।

उत्तर— वसुनन्दि संहिता तथा एक सन्धि संहिता में महर्षियों ने जो कुछ लिखा है वह ठीक है। क्योंकि शास्त्रों के विरुद्ध चलनेवालों को केवल वसुनन्दि स्वामी ही बुरा नहीं लिखते हैं किन्तु सम्पूर्ण महर्षि लोग. सम्पूर्ण लोक समाज बुरा बताते हैं। यही कारण है कि आज सत्यार्थ मत के प्रतिकूल चलने से श्वेताम्बर, बौद्ध, यापनीय आदि मतों को हमारे शास्त्रों में मिथ्यात्व के कारण बनाये हैं। क्या इस बात को कोई अस्वीकार करेगा कि उक्तमत जैनमुनियों के द्वारा नहीं चलाये गये हैं। मान लिया जाय, कि जो लोग अपने पदस्थ मे भ्रष्ट हुवे हैं उन्हीं ने इन मतों को चलाये हैं। अब उन्हें जैन मत के अनुयायी नहीं कहना चाहिये। अस्तु हम भी इस बात को स्वीकार करते हैं। परन्तु पीछे से वे कुछ भी हो जांय उन से हमारा कुछ मतलब नहीं। प्रयोजन केवल इसी बात से है कि वे लोग पहले जैन मत के सच्चे अनुयायी थे। परन्तु फिर विरुद्ध होने से उन्हें महर्षि लोग बुरा कहने लगे। उसी तरह जब गन्ध लेपन की शास्त्रों में आज्ञा मिलती है फिर उनके निषेध करने वालों को यदि जिनाज्ञा के भङ्ग करने वाले कहें तो कौनसी हानि है। यह मेरा लिखना वसुनन्दि स्वामी आदि के श्लोकों को लेकर नहीं है क्योंकि उस समय में तो, ऐसे मत का अंश भी नहीं था। किन्तु लोक

प्रवृत्ति को देख कर लिखा है। कदाचित् कहो कि फिर वसुनन्दि स्वामी के इस तरह निषेध करने का क्या अभिप्राय है? क्योंकि किसी विषय का निषेध तो उसी समय हो सकता है जिस समय उसका प्रचार भी हो।

मैं जहां तक इस विषय पर अपने ध्यान को देता हूं तो, मेरी समझ के अनुसार वसुनन्दि स्वामी के निर्लेप प्रतिमाओं के सम्बन्ध में लिखने का यह कारण प्रतीत होता है। गन्ध लेपन पूजनादि में तो लगाया ही जाता है। परन्तु यदि एक तरह इसे प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का भी चिन्ह कहा जाय तो, कुछ हानि नहीं है और इसलिये वसुनन्दि स्वामी का भी कहना है कि प्रतिमाओं के निर्लेप रहने से यह नहीं कहा जा सकता कि ये प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। इसी धोखे से अप्रतिष्ठित प्रतिमाओं को भी लोग पूजने लग जांय तो आश्चर्य नहीं। इसके सिवा और बात ध्यान में नहीं आती। यह कोई नियम नहीं है कि जिसका प्रचार हो उसी का निषेध होता है कितनी बातें ऐसी देखने में आती हैं जिनका प्रचार तो नहीं है और निषेध है ही। यही कारण है कि जैनियों में मांस, मदिरा और शिकारादिकों प्रचार न होने पर भी उन्हें सख्ती के साथ में इनके त्याग का उपदेश दिया जाता है।

गन्ध लेपनादिकों को निषेध करने वालों का मत प्राचीन हो, सो भी नहीं है। इस विषय में प० वखतावरमल अपने वनाये हुवे "मिथ्यात्व खण्डन ग्रन्थ" में यों लिखते हैं:—

आदि पुरूष यह जिन मत भाष्यो,
भवि जीवन नीके अभिलाष्यो।
पहले एक दिगम्बर जानौ,
तातें श्वेताम्बर निकसानौ ।।
तिन में पकसि भई अति भारी,
सो तो सब जानत नर नारी।
ताही मांझि वहसि अब करिकैं,
तेरहपंथ चलायो अरिकैं ।।
तब कितेक बोले बुधिवन्त,
किह नगरी उपज्यो यह पंथ।
किह सम्वत कारण कहु कौन,
सो समझाय कहो तजि मौन ।।

प्रथम चल्यो मत आगरे श्रावक मिले कितेक।
सोलह सै तीयासिये गही कितुक मिलि टेक ।।
काहू पण्डित पैं सुनें किते अध्यातम ग्रन्थ।
श्रावक किरिया छांड़ि कै चलन लगे मुनि पन्थ ।।
फिर कामा में चलि परयौ ताहि के अनुसारि।
रीति सनातन छांड़ि कै नई गही अघकारि।।
केसर जिनपद चरचिवौ गुरू नमिवो जगसार।
प्रथम तजी ए दोय विधि मनमह ठानि असार ।।
ताहि के अनुसार तें फैल्यो मत विपरीत।
सो सांची करि मांनिया झूठ न मांनहु मीत ।।

इस कथा के अनुसार यह ठीकर मालूम पड़ता है कि जिन लोगों का मत गन्ध लेपनादि विषयों के निषेध करने का हैं वह समीचीन नहीं है। इसलिये अन्तिम कहना यह है कि:—

सुक्ष्मञ्जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धञ्च तद्ग्राह्यं नात्यथा वादिनो जिनाः

अर्थात्— बुद्धि के मन्द होने से कोई वात हमारी समझ में न आवे तो उसे अप्रमाण नहीं कहनी चाहिये। किन्तु जिन भगवान् अन्यथा कहने वाले नहीं है। इसलिये उसे आज्ञा के अनुसार ग्रहण करनी चाहिये।

पुष्प पूजन

पुष्पपूजन तथा गन्धलेपन का प्रायः एक ही विषय है। जिस तरह जिन भगवान् के चरणों पर गन्धलेपन किया जाता हैं उसी तरह पुष्पों को भी चरणों पर चढ़ाने पड़ते हैं। कितनी शंकाओं का समाधान गन्धलेपन लेख में हो सकेगा। इसलिये इस लेख में विशेष बातों को न लिखकर आवश्यकीय बातें लिखे देते हैं। पुष्प पूजन से हमारा असली अभिप्राय चरणों पर चढ़ाने का है। परन्तु इसके पहले सचित्त पुष्पों को चढ़ाने चाहिये या नहीं? इस प्रश्न का समाधान करना जरूरी हैं। यही कारण है कि कितने लोग तो इस समय भी प्रायः सचित्त पुष्पों से पूजन करते हैं और कितने चावलों को केशर के रंग से रंग कर उन्हें पुष्प पूजन की

जगहें काम में लाते हैं। यह सम्प्रदाय योग्य है या अयोग्य, इस विषय का समाधान इसी ग्रन्थ के "पुष्प कल्पना" नामक लेख से हो सकेगा। यहां प्राकृत विषय सामान्य पुष्प पूजन का होने से लिखा नहीं गया है। पुष्प पूजन के विषय में शास्त्रों की आज्ञा को पहले ही खुलासा किये देते हैं।

भगवान् उमास्वामी श्रावकाचार में यों लिखते हैं:—

पद्मचम्पजात्यादिस्त्रग्भिः सम्पूजयेज्जिनान्।

अर्थात्— कमल, चम्पक और जाति पुष्पादिकों से जिन भगवान की पूजन करनी चाहिये।

श्री वसुनन्दि श्रावकाचार में लिखा है कि:—

मालियकयं वकणरियं पयासोयवउलतिलएहिं।
मन्दारणायचम्पयपउमुप्पल सिन्दुवारेहिं॥
कणवीर मल्लियाइ कचणारमयकुन्दकिक्कराएहिं।
सुखणजजुहियापारिजासवणढगरेहिं॥
सोवएणरूवमेहिं य सुवादामेहिं बहुप्पयारेहिं।
जिणपनसंकयजुयलं पूजिज्ज सुरिन्दसयमहियं॥

अर्थात्— मालती, कदम्ब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, तिलक वृक्ष के पुष्प, मन्दार, नागचम्पा, कमल, निगुडीं, कणवीर, मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकर कल्पवृक्ष के पुष्प, परिजात और सुवर्ण चांदो के पुष्पादिकों से पूजनीय जिन भगवान् के चरण कमलों की पूजन करना चाहिये।

इन्द्रनन्दि पूजासार में कहा है:—

ॐ सिन्दुवारैर्मन्दारैः कुन्दैरिन्दीवरैः शुभैः ।
नन्द्यावर्त्तादिभिः पुष्पैः प्रार्चयामि जगद्गुरुम् ।।

अर्थात्— सिन्दुवार, मन्दार पुष्प, कुन्द, कमल और नन्द्या-वर्तादि उत्तम२ फूलों से जगदगुरु जिन भगवान् को पूजा करता हूं ।

धर्मसार में लिखा है कि:—

इतपुष्पधनुर्वाणसर्वज्ञानां महात्मनाम् ।
पुष्पैः सुगन्धिभिर्भक्त्या पदयुग्मं समर्चये ।।

अर्थात्— कामदेव के धनुप को नाश करने वाले जिन भग-वान् के चरण कमलों को भक्ति पूर्वक कमल, केतकी, चमेली, कुन्द, गुलाब, केवड़ा, मन्दार, मल्लि, वकुल आदि नाना तरह के सुगन्धित पुष्पों से पूजता हूं ।

पण्डित आशाधर कहते हैं कि:—

सुजातिजातीकुमुदाब्जकुन्दै-
मन्दारमल्लीवकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमाला मुखरैर्जिनेन्द्र-
पादारविन्दं द्वयमर्चयामि ।।

अर्थात्—उन्मत्त भ्रमरों की श्रेणि से शब्दायमान, जाती, कुमुद, कमल, कुन्द, मन्दार, मल्लिका पुष्प, वकुल केवड़ा, कचनार

आदि अनेक प्रकार के फूलों से जिन भगवान् के चरण कमलों की पूजन करता हूं।

पद्म पुराण में:—

सामादंभूं जलोभ्द्रूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति।
विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति निरन्तरम्॥

इत्यादि अनेक शास्त्रों में सचित्त पुष्पों के चढ़ाने की आज्ञा हैं। परन्तु अब तो कई लोग सचित्त पुष्पों के चढ़ाने में आनाकानी करते हैं। उनका कहना है कि, मान लिया जाय कि सचित्त पुष्पों के चढ़ाने की आज्ञा है, परन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिकों के अनुसार यह ठीक नहीं है। कितने कारणों से किसी२ जगहँ शास्त्रों की आज्ञा भी गौण माननी पड़ती है। शास्त्रों में तो मोतियों के अक्षत, तथा रत्नों के दीपक भी लिखे हुवे हैं परन्तु अभी उनका चढ़ाने वाला तो देखने में नहीं आता। इसी तरह पुष्पों के विषय को भी सचित्तादि दोषों के कारण होने से गौण कर दिया जाय तो हानि क्या है?

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिकों का आश्रय लेकर सभी आज कल अपनी२ बातों को दृढ़ करते हैं। परन्तु मैं नहीं समझता कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिकों का क्या आशय है? मेरी समझ के अनुसार तो इनका यह आशय कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र, कालादिकों का यह तात्पर्य समझना चाहिये कि किसी काम को शक्ति के अनुसार करना चाहिये। मान लो कि

धर्म कार्य में हमारी शक्ति हजारों रूपयों के लगाने की है तो उतना ही लगाना चाहिये। शक्ति के बाहर काम करने वालों की अवस्था किसी समय में विचारणीय हो जाती है इसे सब कोई स्वीकार करेंगे। इसी तरह समझ लो कि इस विकराल कलिकाल में साधु व्रत ठीक तरह रक्षित नहीं रह सकता। इसलिये गृहस्थ अवस्था में ही रहकर अपना आत्म-कल्याण करना चाहिये। यही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावादिकों का मतलब कहा जा सकता है इसके विपरीत धर्म कार्यों में किसी तरह हानि बताना ठीक नहीं है।

प्रश्न— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिकों का यह मतलब नहीं है। किन्तु पुष्पादिकों के चढ़ाने में हिंसादि दोष देखे जाते हैं और हमारा धर्म हैं अहिंसामयी। फिर तुम्हीं कहो कि इस विपरीत प्रवृति को देखकर और लोग कितना उपहास करेंगे?

उत्तर— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिकों का यह अर्थ ठीक नहीं है। पुष्पादिकों के चढ़ाने में पहले तो हिंसा होती ही नहीं क्योंकिः—

भावो हि पुण्याय मतः शुभः पायाय चाशुभः।

अर्थात्— शुभ परिणामों से पुण्य का बंध होता है और खोटे परिणामों से पाप का बंध होता है। इसलिये भावों को पाप कार्यों की ओर से बचाये रखना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि

जिन मन्दिरादिकों के बनवाने में तथा प्रतिष्ठादि कार्यों के कराने में प्रायः हिंसा का प्राचुर्य देखा जाता है परन्तु इन्हें अत्यन्त पुण्य के कारण होने से हिंसा के हेतु नहीं मान सकते। मुनि लोग बहुत सावधानता से ईर्या समिति पूर्वक गमन करते हैं उनके पावों के नीचे यदि कहीं से जन्तु आकर हत जीवित हो जाय तो भी वे दोष के भागी नहीं कहे जा सकते। उसी तरह पुष्पों के चढ़ाने में यत्नाचार करते हुवे भी यदि दैव गति से किसी प्राणि का घात हो जाय तो भी वह दोष का कारण नहीं कहा जा सकता। जैन मत में परिणामों की सबसे पहले दरजे में गणना है। इसका भी यही तात्पर्य है कि कोई काम हो वह परिणामों के अनुसार फल का देने वाला होता है। जो जिन भगवान् की पूजन पवित्र परिणामों से की हुई अतिशय फल को देने वाली होती है वही परिणामों की विकलता से की हुई प्रत्युत हानि की कारण हो जाती है। जिन प्रतिमाओं की पूजन करने से पुण्य बन्ध होता है परन्तु वही पूजन विदिशाओं में करने से कुल धनादिकों के नाश की कारण हो जाती है इस विषय में :—

उमास्वामि महाराज यों लिखते हैं :—

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्पूजां चेच्छ्रीजिनेशिनः।
तदा स्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यां समंततिः॥
अग्नेयां च कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने।
वायव्यां संततिर्नैव नैऋत्यां तु कुलक्षया॥
ईशान्या नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी।

अर्थात्— यदि पूजक पुरुष पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जिन भगवान् की पूजन करे तो, सन्तति का नाश होता है। दक्षिण दिशा में करने से मृत्यु होती है। अग्नि दिशा में की हुई पूजा दिनों दिन धनादिकों की हानि की कारण होती है। वायव्य दिशा में करने से सन्तति नहीं होती है। नैऋत्य दिशा में करने से वंश का नाश होता है। और ईशान दिशा की ओर की हुई पूजा सौभाग्य की हरण करने वाली होती हैं। सारांश यह है कि पुण्य कर्मों से पापों के होने की भी संभावना है। इसी उदाहरण को पुष्पों के सम्बन्ध में भी ठीक कह सकते हैं। भक्ति पूर्वक जिन भगवान् की पूजन में काम लाये जायं तो, अत्यन्त अभ्युदय के कारण होते हैं। इस विषय का उदाहरण समन्त भद्रस्वामी रत्न करण्ड में लिखते हैं:—

अर्हच्चरणपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ।।

तथा सूक्ति मुक्तावलि में:—

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुर-
स्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते।

अर्थात्—जो जिन भगवान् की फूलों से पूजा करते हैं देवाङ्गनाओं के नेत्रों से पूजन किये जाते हैं। अर्थात् पुष्प पूजन के फल से स्वर्ग में देव होते हैं।

उन्हीं पुष्पों के सम्बन्ध में सचित्त होते हैं। इनके चढ़ाने से हिंसा होती है। इत्यादि असंभावित दोषों के बताने से लोगों के दिल को विकल करना कहां तक ठीक कहा जा सकेगा यह मैं नहीं कह सकता।

पुष्पों के चढ़ाने में हिंसा नहीं होती यह ठीकर बता चुके हैं। इतने पर भी जिन्हें अपने अहिंसा धर्म में बाधा मालूम पड़ती है उन से हमारा यह कहना है जिन मत में संकल्पी तथा आरंभी इस तरह हिंसा के दो विकल्प हैं। कहना चाहिये कि पुष्पों के चढ़ाने में कौन सी हिंसा कही जा सकेगी? यदि कहोगे संकल्पी हिंसा है तो, उसे सिद्ध करके बतानी चाहिये। मैं जहां तक ख्याल करता हूं तो, पुष्पों के चढ़ाने से संकल्पी हिंसा कभी नहीं हो सकती। और न इसे कोई स्वीकार करेगा।

यदि पुष्पों के चढ़ाने में संकल्पी हिंसा मान ली जाय तो, आज ही जैनियों को अपने अहिंसा धर्म का अभिमान छोड़ देना पड़ेगा। असंबद्ध प्रलाप करने वालों को जरा भगवान् की आज्ञा का भय रहना चाहिये। कदाचित् आरंभी हिंसा कहोगे तो, पुष्पों का चढ़ाना तुम्हारे कथन से ही सिद्ध हो जायेगा। क्योंकि गृहस्थों को संकल्पी हिंसा छोड़ने का उपदेश है। आरंभी हिंसा का नहीं। इसे हम स्वीकार करते हैं कि यद्यपि धर्म कार्यों में किसी अंश में हिंसा होती है परन्तु इन्हें प्रचुर पुण्य के कारण होने से वह हिंसा नहीं

मानी जा सकती। इसी तरह धर्म संग्रह के कर्त्ता का भी अभिमत है:—

जिनालयकृतौ तीर्थयात्रायां विम्बपूजने।
हिंसा चेत्तत्र दोषांशः पुण्यराशौ न पापभाक्॥

अर्थात्— जिन मन्दिर के बनाने में, तीर्थों की यात्रा करने में जिन भगवान् की पूजन में, हिंसा होती है परन्तु इन कार्यों के करने वालों को पुण्य बहुत होता है इसलिये वह हिंसा का अंश पापों का कारण नहीं हो सकता।

किन्तुः—

जिनधर्मोद्यतस्यैव सावद्यं पुण्यकारणम्।

अर्थात्— जो धर्मकार्यों के करने में सदैव प्रयत्नशील रहते हैं उन्हें सावद्य, पुण्य का कारण होता है।

भगवान् की पूजन करना धर्म कार्य है उस में और लोग क्यों हसेंगे? हम यदि किसी तरह का अन्याय करते तो, वेशक यह ठीक हो सकता था। खैर इतने पर भी वे इसी बात को पकडे रहें तो क्या इनके कहने से हमें अपना धर्म छोड़ देना चाहिये? नहीं। ढूंढिये लोग मूर्त्ति पूजन का निषेध करते हैं। वैष्णव धर्म की निन्दा करते हैं। दुर्जन सज्जनों को बुरी दृष्टि से देखते हैं तो, क्या

हमें मूर्त्तिपूजनादि कार्यों को परित्याग कर देना चाहिये ? यह समझ ठीक नहीं है जो बातें प्राचीन काल से चली आई हैं उन्हें मानना चाहिये ।

पुष्प पूजन को सामान्यता से सिद्ध कर चुके, सचित्त पुष्पों का चढ़ाना शास्त्रानुसार निर्दोप वता चुके । अब प्रकृत विपय की ओर झुकते हैं । प्रकृत विपय हमारा जिन भगवान् के चरणों पर पुष्प चढ़ाना, सिद्ध करना है । वैसे तो जिस तरह गन्धलेपन के विपय की शंकाओं का समाधान है उसी तरह इस विपय का भी समाधान कर लेना चाहिये ।

विशेष शास्त्रानुसार कुछ और लिखे देते हैं उसे देख कर पाठक अपनी हृदय गत विशेप शंकाओं का और भी निर्णय कर लेवें । यह प्रार्थना है ।

श्री त्रिवर्णाचार में लिखा है कि:—

जिनाङ्घ्रि स्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके ।

अर्थात्— जिन भगवान् के चरणों पर चढ़ी हुई पुष्प माला को अपने पवित्र कंठ में धारण करनी चाहिये । तात्पर्य यह है कि पूजक पुरुष को जिन भगवान् की पूजन करते समय इस तरह का संकल्प करना लिखा है:—

"इन्द्रोहमिति"

अर्थात्— मैं इन्द्र हूं इस तरह संकल्प करके जिन भगवान् को पूजन करनी चाहिये। पूजन करने वाले को पूजन के समय सम्पूर्ण अलंकारादि पहरे रहना चाहिये। इसी विषय में यों लिखा है:—

वस्त्रयुग्मं यज्ञसुत्रं कुंडले मुकुटं तथा।
मुद्रिकां कङ्कणं चेति कुर्याच्चन्दनभूषणम्॥
ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं दर्भैस्त्रिपंचभिः स्मृतम्।
मुष्टयग्रं वलयं रम्यं पवित्रमिति धार्यते॥
एवं जिनाङ्घ्रिगन्धैश्च सर्वाङ्गं स्वस्य भूषयेत्।
इन्द्रोहमिति मत्वात्र जनपूजा विधीयते॥

अर्थात— दो वस्त्र, यज्ञोपवीत, दोनों कानों में कुण्डल, मस्तक के ऊपर मुकुट, मुद्रिका, कङ्कण, चन्दन का तिलक, और ब्रह्मग्रन्थि करके युक्त अथवा पांच दर्भ से बना हुआ मनोहर वलय जिसे पवित्र भी कहते हैं, इन संपूर्ण अलङ्कारों को धारण करे। तथा इसी तरह जिनभगवान् के चरणों पर चढ़े हुए चन्दन से अपने सर्व शरीर को शोभित करके मैं इन्द्र हूं ऐसा समझ के जिनभगवान् की पूजन करनी चाहिये। इसी अवसर में उक्त पुष्प माला के कण्ठ में धारण करने की आज्ञा है।

पं०—आशाधर प्रतिष्ठा पाठ में लिखते हैं:—

जिनाङ्घ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाम्
इमां स्वर्गरमादूतीं धारयामि वरस्त्रजम्॥

अर्थात्— जिन भगवान् के चरणों के स्पर्श होने मात्र से त्रिभुवन के जीवों पर अनुग्रह करने में समर्थ और स्वर्ग की लक्ष्मी के प्राप्त कराने में प्रधान दासी, पवित्र पुष्प माला को कंठ में धारण करता हूं।

इसी प्रतिष्ठा पाठ में और भी—

श्री जिनेश्वर चरण स्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला महा-भिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति ।

अर्थात्—जिन भगवान् के चरण कमलों के स्पर्श से अमोल्य पूजन हुई है। इसलिये वह पुष्पमाला महाभिषेक की समाप्ति होने पर अन्त में बड़े भारी धन के साथ भव्य पुरुषों को ग्रहण करनी चहिये ।

तथा वृत्तकथा कोष में श्री श्रुतसागर मुनि लिखते हैं:—

तत्प्रश्नाच्छ्रेष्ठिपुत्रीति प्राह भद्रे शृणु ब्रुवे ।
व्रतं ते दुर्लभं येनेहामुत्र प्राप्यते सुखम् ।।
शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेऽर्हताम् ।
स्नापनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ।।
ध्रीयते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः ।
कण्ठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च ध्रीयते ।।

अर्थात्— सेठ की पुत्री के प्रश्न को सुनकर अर्यिका कहती

हुई। हे पुत्रि ! मैं तुम्हारे कल्याण के लिये व्रत का उपदेश कहती हूं। उस व्रत के प्रभाव से इसलोक में तथा परलोक में दुर्लभ, सुख प्राप्त होता है। उसे तुम सुनो। श्रावण सुदि सप्तमी के दिन जिनभगवान् का अभिषेक तथा आठ प्रकार के द्रव्यों से पूजन करके वृषभजिनेन्द्र के मस्तक पर नाना प्रकार के फूलों से बनाया हुआ मुकुट तथा कंठ में पुष्पों की माला पहरानी चाहिये। विशेष विधि को इस जगहँ उपयोगी न होने से नहीं लिखी है।

भगवान् इन्द्रनन्दि पूजासार में लिखते हैं:—

जैनक्रमाब्जयुगयोग विशुद्धगन्ध-
सम्बन्धबन्धुरविलेपपवित्रगात्रः।
तेनैव मुक्तिवश कृत्तिलकं विधाय-
श्रीपादपुष्पधरणं शिरसा वहामि॥

अर्थात्— जिनभगवान् के चरण कमलों पर चढ़ने से पवित्र गन्ध के सम्बन्ध से मनोहर विलेपन करके पवित्र शरीर वाला मैं, उसी चन्दन से मुक्ति के कारण भूत तिलक को करके चरणों पर चढ़े हुवे पुष्पों को मस्तक पर धारण करता हूं।

श्री यशस्तिलक में भगवत्सोमदेव महाराज लिखते हैं:—

पुष्पं त्वदीय चरणार्चन पीठसङ्गा-
च्चूडामणि भवति देव जगत्त्रयस्य।
अस्पृश्यमन्यशिरसि स्थितमप्यस्ते
को नाम साम्यमनुशास्तु रवीश्वराद्यैः॥

अर्थात्— हे भगवान्! तुम्हारे चरणों की पूजन के सम्बन्ध से पुष्प भी तीन जगत का चूड़ामणि होता है। और दूसरों के मस्तक पर भी चढ़ा हुआ अपवित्र हो जाता है। इसलिये इस संसार में ऐसा कौन पुरुष है जो सूर्यादि देवों को आपके समान कह सके। अर्थात् जगत में आपकी समानता कोई नहीं कर सकता।

श्री आराधना कथा कोष में—

तदागोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः।
भोः सर्वोत्कृष्ट! मे पद्मं ग्रहाणेदमिति स्फुटं॥
उक्त्वा जिनपादाब्जोपरिक्षिप्त्वाशु पङ्कजम्।
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्म्मदम्॥

अर्थात्— किसी समय कोई गोपालक जिनभगवान् के आगे खड़ा होकर हे सर्वोत्तम! मेरे इस कमल को स्वीकार करो। ऐसा कह कर उस कमल को जिन भगवान् के चरणों पर चढ़ा करके शीघ्र चला गया। ग्रन्थकार कहते हैं कि उत्तम कर्म मूर्ख पुरुषों को भी अच्छे फल का देने वाला होता है।

श्री इन्द्रनन्दि पूजासार में लिखा है:—

एनोबन्धान्धकूप प्रपतितभुवनोदञ्चन प्रौढ रज्जुः
श्रेयः श्रीराजहंसी हरिणविशरूह प्रोल्लसत्कन्दवल्लिः।
स्फारोत्फुल्लभासं नयनषडनश्रेणिपेया विधेयात्
पुष्पस्रग्मञ्जरी नः फलमलघु जिनेन्द्राङ्घ्रि दिव्याङ्घ्रि-
पस्था॥

इसी तरह कथाकोष, व्रतकथा कोप, संहिता, प्रतिष्ठापाठादि अनेक शास्त्रों में पुष्पादिकों को चरणों पर चढ़ाना लिखा हुआ है। उसे न मानकर उल्टा दोष बताना अनुचित है।

प्रश्न— त्रिवर्णाचार किनका बनाया हुआ है?

उत्तर— सोमसेनाचार्य का।

प्रश्न— ये तो भट्टारक हैं?

उत्तर— अस्तु। क्या हानि है?

प्रश्न— हानि क्यों नहिं? भट्टारकों के ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मान सकते। क्योंकि जिस तरह वे नाना तरह के आडम्बर के रखने पर भी अपने को गुरू कहते हैं परन्तु शास्त्रों में तो गुरू का यह लक्षण है—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते॥

अर्थात्— गुरू को विषय सम्बन्धी अभिलाषा, आरंभ और परिग्रह नहीं होने चाहिये। ये लक्षण भट्टारकों में नहीं घटते हैं। इसी तरह उन्हीं ने अपनी पक्ष को दृढ़ करने के लिये शास्त्रादि भी अन्यथा बना दिये हों तो क्या आश्चर्य है?

उत्तर— इसे भी एक तरह का असंबद्ध प्रलाप कहना चाहिये। मैं नहीं कह सकता भट्टारकों ने ऐसा कौन सा बुरा काम किया है। जिस से उनके किये हुवे असीम उपकार पर भी पानी सा फिरा जाता है।

यदि आज भट्टारकों की सृष्टि की रचना न होती तो देहली में बादशाह के "या तो तुम अपने गुरुओं को बताओं अन्यथा तुम्हें मुसलमान होना पड़ेगा" इस दुराग्रह को कोई दूर कर सकता था? अथवा कितनी जगहें आपदग्रस्त जैन धर्म को भट्टारकों के न होने से बेखटके कोई किये देता था? जो आज उनके उपकार के बदले वे स्वयं एक तरह की बुरी दृष्टि से देखे जाने लगे हैं। अस्तु, और कुछ नहीं तो इतना तो अवश्य कहेंगे कि उन लोगों का यह कथन चन्द्रमा के ऊपर धूल फेकने के समान है जो लोग भट्टारकों के व्यर्थ अपवाद करने में दत्तचित्त हैं।

मान लिया जाय कि वे निर्ग्रन्थ गुरु के तुल्य नहीं है परन्तु इतना न होने से वे इतने विनय के भी के योग्य न रहें जो विनय साधारण अथवा मांसभक्षी आदि धर्मवाह्य मनुष्यों का किया जाता है? केवल वर्तमान प्रवृति को देखकर परम्परा तक को कलंकित बना देना वुद्धिमानी नहीं हैं। खैर! भट्टारक तो दूर रहें परन्तु शास्त्रों में मुनियों तक के विषय में अनाचार देखाजाता है तो, किसी एक अथवा दो मुनियों के दुराचार से सारे पवित्र मुनि समाज को दोष देना ठीक कहा जा सकेगा? नहिं। उसी तरह सब जगहें समझ लेना चाहिये।

मैं नहिं कह सकता कि लोगों के हृदय में यह कल्पना कैसे स्थान पा लेती है कि भट्टारकों ने प्राचीन मार्ग के विरुद्ध ग्रन्थों को बना दिये हैं। यह बात उस समय ठीक कही जाती जब दस

पांच, अथवा दो एक, ग्रन्थ जिनमत के सिद्धान्त के विरुद्ध बताये होते। परन्तु किसी ने आज तक इस विषय को उपस्थित करके अपने निर्दोष होने की चेष्टा नहीं की। क्या अब भी कोई ऐसा इस जगत में है जो भट्टारकों के बनाये हुवे ग्रन्थों को प्राचीन मार्ग के विरुद्ध सिद्ध कर सके? यदि कोई इस विषय में हाथ डालेंगे तो उनका हम बड़ा भारी अनुग्रह मानेंगे।

खैर! इस विषय को चाहे कोई उठावें अथवा न उठावे हम अपने पाठकों को एक दो विषय को लेकर इस बात को सिद्ध कर बताते हैं कि भट्टारकों का जितना कथन है वह प्राचीन पथ का अनुसरण करने वाला है। इस समय विवादनीय विषय मुख्यतया गन्धलेपन, पञ्चामृताभिषेक, अथवा पुष्प चढ़ाना, ये हैं। और जितने शेष विवाद हैं वे सब इन्हीं पर निर्भर हैं। इनकी सिद्धि होने पर और विषयों की सिद्धि होने में फिर अधिक देरी नहीं लगेगी।

मैं आशा करता हूं कि भगज्जिसेनाचर्य कृत आदिपुराण, श्री वीरनन्दि महर्षि कृत चन्द्रप्रभुकाव्य, भगवद्गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति कृत त्रैलोक्यसार, आदि ये ग्रन्थ प्रायः प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में कोई यह नहीं कह सकता हैं कि ये ग्रन्थ प्रमाण नहीं हैं। इन्हीं में इस तरह लिखा है:—

आदि पुराण में लिखा हैं कि—

यथाहिकुलपुत्राणां माल्यं गुरुशिरोधृतम्।
मान्यमिव जिनेन्द्राङ्घ्रि स्पर्शान्माल्यादिभूषितम्।

अर्थात्— जिस तरह पवित्र कुल के बालकों को अपने बड़े जनों के मस्तक पर की पुष्पमाला स्वीकार करने योग्य है उसी तरह जिन भगवान् के चरणों पर चढ़े हुए पुष्पमाल्य तथा चन्दनादि तुम्हें स्वीकार करने योग्य हैं।

भगवद्गुणभद्राचार्य उत्तरपुराण में यों लिखते हैं—

जयसेनापि सद्धर्म्मं तत्रादायैकदा मुदा।
पर्वोपवासपरिम्लानतनुरभ्यर्च्य सार्हतः।
तत्पादपङ्कजाश्लेष पवित्रां पापहां स्त्रजम्।
चित्रां पित्रेऽदित द्वाभ्यां हस्ताभ्यां विनयानता॥

अर्थात्— किसी समय पवित्र धर्म को स्वीकार करके, अष्टान्हिका पर्व सम्बन्धी उपवासों से खेद खिन्न शरीर को धारण करने वाली जयसेना जिन भगवान् की पूजन करके भगवान के चरण कमलों पर चढ़ने से पवित्र और पापों के नाश करने वाली पुष्पमाला को विनय पूर्वक अपने दोनों हाथों से पिता के लिये देती हुई।

त्रैलोक्यसार में भगवन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्त्ति लिखते हैः-

गाथाः—

चंदणाहिसेयणच्चणसङ्गीयवलोयमन्दिरेहिं जुदा।
कोडणगुणणगिहहिं अविसालवरपट्टसालाहिं॥

अर्थात्— चन्दन करके जिन भगवान् का अभिषेक, नृत्य सङ्गीत का अवलोकन, मन्दिरों में योग्य क्रीडा का करना, और विशाल पट्टशाला करके, और सम्बन्ध आगे की गाथा में है। यहां पर प्रयोजन मात्र लिखा है।

श्री वीरनन्दि चन्द्रप्रभु काव्य में लिखते हैं—

वीतरागचरणौ समर्च्य सद्गन्धधूपकुसुमानुलेपनैः

अर्थात्— चक्रवर्ति पहले धूप, गन्ध, पुष्प और अनुलेपनादिकों से जिनभगवान् के चरणों की पूजन करके फिर चक्ररत्न की पूजन करता हुआ, इसी तरह गन्धलेपनादिकों का विधान भट्टारकों के ग्रन्थों में लिखा हुआ है। इनके सिवाय और अधिक कोई बात हमारे ध्यान में नहीं आती। इसे कितने आश्चर्य की बात कहनी चाहिये कि दो वर्ष के बच्चे को भी इस तरह साहस के करने की इच्छा जाग्रत नहीं होती है। फिर तत्त्व के जानने वालों में असत्कल्पना करना कहां तक ठीक कहीं जा सकेगी ? क्या उन्हें पाप का भय नहीं था ? नहिं नहिं, यह कहना सर्वथा अनुचित है कि भट्टारकों ने मनमाने बना डाले हों। मैंने जहां तक अपनी बुद्धि पर जोर दिया है तो, मुझे भट्टारकों का कहना भी महर्षियों के समान निर्दोष दीखा है। और शक्तयनुसार उसे सिद्ध भी कर सकता हूं। जिस किसी महोदय को मेरे लिखे से और भी अधिक इस विषय की आशंका हो वे कृपया अनुग्रहीत करें। मैं अवश्य उस विषय के निर्णयार्थ प्रयास करूंगा।

प्रश्न— इन प्रमाणों में जितने ग्रन्थ कथा भाग के भी हैं। उनको तो आज्ञा के समान प्रमाणता नहीं हो सकती। क्योंकि कथा भाग के ग्रन्थों में केवल उन लोगों का कर्तव्य लिखा रहता है। कथा भाग के ग्रन्थों को आज्ञा के समान मानने से राजा वज्रकर्ण की तरह भी अनुकरण करना पड़ेगा ?

उत्तर— कथा भाग सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रमाण देने से हमारा केवल इतना ही प्रयोजन है कि कितने लोग ऐसाभी कह देते हैं कि, हां शास्त्रों में तो अमुक बात लिखी है परन्तु उसे किसी ने की भी ? इस प्रश्न का अवकाश उन लोगों को न रहे। परन्तु इस से यह नहीं कह सकते कि उन ग्रन्थों को बिलकुल प्रमाणता ही नहीं है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो प्रायः वृद्ध लोग कहा करते हैं कि अपनी पुरानी चाल पर चलो, कुकर्म मत करो तुम्हारे कुल में सब सदाचारी हुये हैं तुम्हें भी वैसे ही होना चाहिये इत्यादि। यह भी कुल के गुरू जनों का कर्तव्य है तो, इस छोड़ कर उल्टे चलना चाहिये क्या ? अथवा शास्त्रों में भी बड़े२ सत्पुरुष पवित्र कर्मो के करने वाले हो गये हैं। उनका कृतकार्य हमारी प्रवृति में भी आ रहा है तो, क्या वह ठीक नहीं कहा जा सकेगा ? कथा भाग के ग्रन्थों में अथवा आज्ञा विधायक शास्त्रों में अर्थात यों कहो कि प्रथमानुयोग और चरणानुयोग में इतना ही भेद है कि

पहले का तो, पुण्य कर्तव्य, आज्ञा के समान स्वीकार किया जाता हैं और पाप कर्मों का परित्याग किया जाता है। दूसरा सर्वथा माननीय ही होता है। और विशेष कुछ नहीं है।

प्रश्न— व्रत कथा कोष में भगवान् को मुकुट पहराना लिखा हुआ है क्या अब भी कुछ कसर रही ? वीतरागभाव में कुछ परिवर्तन हुआ या नहीं ? यह लेख तो, दृढ़ निश्चय कराता है कि अब दिगम्बरीयों को एक तरह श्वेताम्बरी ही कहना चाहिये।

उत्तर— नित्य और नैमित्तक इस तरह क्रियाओं के दो भेद हैं। नित्य क्रिया में पूजनादि प्रायः सामान्य विधि से होती है और नैमित्तिक क्रियाओं में कितनी बातें नित्य क्रियाओं की अपेक्षा विशेष भी होती हैं। नित्यक्रिया में जिन भगवान् को मुकुट नहीं पहराया जाता। परन्तु नैमित्तक क्रिया में व्रत के अनुरोध से पहराना पड़ता है। इसलिये दोषास्पाद नहीं कहा जा सकता। नित्यक्रिया में अर्द्ध रात्रि को पूजन करना कहीं नही देखा जाता। परन्तु चन्दनषष्टी, तथा आकाशपञ्चमी आदि व्रतों में उसी समय करनी पड़ती है। वैसे ही मुनियों को रात्रि में बोलने का निषेध है परन्तु विशेष कार्य के आ पड़ने पर सब काम करने पड़ते हैं। इस लिये कार्यानुरोध से इसे

अनुचित नहीं कह सकते। इस जिनाज्ञा के मानने में चाहे श्वेताम्बरी कहो या अन्य, हमें कुछ विवाद नहीं है। यह तो अपनी२ समझ है। कल ढूंढिये लोग यह कहने लगे कि "ये लोग मन्दिरादि बनवाने में बड़ी भारी हिंसा करते हैं। इन लोगों का अहिंसा विषयक धर्माभिमान बिल्कुल अरण्य प्रलाप के समान समझना चाहिये। इत्यादि" तो क्या उनसे झगड़ा करें? नहि। बुद्धिमान् पुरूष इसे अच्छा नहीं समझते। महर्षियों की आज्ञा मानना हमारा धर्म है। उनके निर्दोष वचनों को ठीक नहीं बताना यह धर्म नहीं है।

प्रश्न— अष्टमी, चतुर्दशी आदि पुण्यतिथियों में जैनी लोग हरित अर्थात् सचित्त पदार्थों को नहीं खाते हैं। परन्तु दुःख होता है कि वही सचित्त पदार्थ इन्ही पुण्यतिथि तथा पर्वों में जिनभगवान् के ऊपर चढाये जाते हैं? खैर! सचित्त भी दूर रहे, परन्तु वह भी अनन्त काय!

उत्तर— यह प्रश्न बिल्कुल अनुचित है। परन्तु क्या करें उत्तर न दिया जाय तो भी ठीक नहीं है। इसलिये जैसा प्रश्न है उसी तरह उत्तर दिये देते हैं। अष्टमी, चतुर्दशी, तथा और पर्वों में हम हरित पदार्थों का नहीं खाते हैं यह ठीक है। परन्तु खाने की और चढ़ाने की समानता तो नहीं है। यदि इसी विषयदृष्टान्त से चढ़ाने का निषेध मान

लिया जाय तो उसी के साथ अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथी में उपवास भी किया जाता है फिर जिनभगवान् को भी उपोषित रखना चाहिये। उस दिन उनका अभिषेक तथा पूजनादि नहीं होना चाहिये। क्योंकि फिर तो हर एक बातों की समानता ही तुम्हारी बातों को दृढ़ करेगी? हमें इस बात का बहुत खेद होता है कि, कहां त्रैलोक्यनाथ, और कहां हम सरीखे पुरुषों की तर्क वितर्क परन्तु इस बात की कहे कौन? यदि कहें भी तो उसे स्वीकार करना मुश्किल है। अस्तु जो कुछ हो इतना कहने में कभी पींछा नहीं करेंगे कि यह शङ्कायें नहीं हैं किन्तु सीधे मार्ग पर चलते हुए पुरुषों को उस से विचलित करने के उपाय हैं।

प्रश्न— जिनभगवान् के चरणों पर पुष्पों का चढ़ाना खूब बता चुके और साथ ही श्रावकों के लिये उनके ग्रहण करने का सिद्धान्त भी कर चुके। परन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस विषय को कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार में, सकलकीर्त्ति ने सद्भाषितावली आदि में निषेध किया है उसी निर्माल्य विषय को एक दम उड़ा दिया। क्या अभी कुछ शङ्कास्थल है जिस से जिन भगवान् के ऊपर चढ़े हुवे गन्ध माल्य को निर्माल्य न कहें?

उत्तर— हमने जितनी बातें लिखी हैं वे ठीक शास्त्रानुसार हैं। इसी तरह तुम भी यदि किसी एक भी विषय का विधि

निषेध करते तो, हमें इतने कहने की कोई जरूरत न थी परन्तु शास्त्र कहां, वे तो केवल नाम मात्र के लिये हैं। चलना तो अपनी इच्छा के आधीन है। यह तो वही कहावत हुई कि "माने तो देव नहीं तो भींत का लेव" परन्तु इसे अपने आप भले ही अच्छी समझ ली जाय। बुद्धिवान् लोग कभी नहीं मानेंगे। हमें कुन्दकुन्द स्वामी का लेख मान्य है। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह बहुत ठीक है। हमें न तो उन के लेख में कुछ सन्देह है और न कुछ विवाद है। परन्तु कहना चाहिये अपनी, जो पद पद में सन्देह भरा हुआ मालूम पड़ता है। जिनभगवान् के लिये चढ़ाया हुआ गन्ध निर्माल्य नहीं होता। और यदि मान लिया जाय तो उसी तरह गन्धोदक भी निर्माल्य कहा जा सकेगा।

प्रश्न— गन्धोदक निर्माल्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि शास्त्रों में उसे पवित्र माना है ?

उत्तर— जब गन्धोदक का ग्रहण करना शास्त्रानुसार होने से उसे निर्माल्य नहीं कहते हो फिर गन्धमाल्यादिकों का ग्रहण करना शास्त्रानुसार नहीं है क्या ?

देखो ! संहिता में लिखा है:—

गन्धोदकं च शुद्ध्यर्थं शेषां सन्ततिवृद्धये।
तिलकार्थं च सौगन्ध्यं गृह्णन्स्यान्नहि दोषभाक्॥

अर्थात्—पवित्रता के लिये गन्धोदक को, सन्तान वृद्धि के अर्थ आशिका को, और तिलक के लिये चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं को, उपयोग में लाने वाला गृहस्थ दोष का भागी नहीं हो सकता। कहिये यह तो शास्त्रानुसार है न ? अब निर्विवाद सब बातों को स्वीकार करनी चाहिये।

पाठक ! आपके ध्यान में पुष्पों का चढ़ाना आया न ? हमारा लिखना शास्त्रों के विरूद्ध तो नहीं है ? जिस तरह शास्त्रों में पुष्प पूजन के सम्बन्ध में लिखा है वह उपस्थित है। इसे स्वीकार करके अनुग्रहीत किजीये।

नैंवेद्य पूजन

कितने लोग तो नवेद्य की जगहँ नारियल के खण्डों को नैंवेद्य की कल्पना करके उन्हें काम में लाते हैं और कितनों का कहना है यह ठीक नहीं है। जैन शास्त्रों में नैंवेद्य पूजन के विषय का उल्लेख है उस जगहँ विविध प्रकार के बने हुवे घेवर, फेनी, मोदक आदि पकवानों का तथा तात्कालिक पवित्र भोजन सामग्री के चढ़ाने के लिये लिखा हुआ है। कितने लोग पकवानों को चढ़ाना स्वीकार करते हुवे भी कच्ची सामग्री का निषेध करते हैं। उनका कहना है कि चौके के बाहर का भोजन श्रावकों के भी योग्य नहीं रहता फिर परमात्मा की पूजन में उसे ठीक कौन कहेगा ?

चौके के बाहर का भोजन प्रवृति के अनुसार श्रावक के योग्य यदि ठीक नहीं भी कहा जाय तो कोई हर्ज की बात नहीं है। परन्तु जिन भगवान् की पूजन में उसका विधान होते हुए भी निषेध करना ध्यान में नहीं आता। पहले तो इस विषय को महर्षियों ने लिखा है और सैकड़ो कथायें भी इस विषय की मिल सकती है जिन से कच्ची सामग्री का चढ़ाना निर्दोष ठहर सकता है। जरा मीमांसा करने का विषय है कि— कच्ची भोजन सामग्री इसीलिये निषेध की जाती है न ? कि वह चौके के बाहर की श्रावकों के भी योग्य नहीं रहती इसलिये पूजन मे भी अयोग्य है। परन्तु यह कारण ठीक मालूम नहीं पड़ता। पूजन की और भोजन की समानता नहीं हो सकती। और न पूजन में भोजन की अपेक्षा से कोई वस्तु चढ़ाई जाती है। पूजन करना केवल परिणामों की विशुद्धता का कारण है। नैवेद्य के चढ़ाने से न तो भगवान् सन्तोष को प्राप्त होते हैं और न चढ़ाने से क्षुधार्त्त रहते हों सो भी नहीं है। परन्तु महर्षियों ने यह एक प्रकार से सीमा बांध दी है कि जिन भगवान् क्षुधा तृषादि अठारह दोषों से रहित हैं इसलिये वही अवस्था हमारी हो। यही नैवेद्य से पूजन करने का अभिप्राय है। संसार में इसे कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि साधु पुरूषों के संसर्ग से पुरूषों में साधुता (सज्जनता) आती है और दुर्जनों के सहवास से दौर्जन्यता। इसी तरह क्षुधार्त की सेवा क्षुधा नहीं मिट सकती। किन्तु जो इस विकल्प रहित है उसी की उपासना करने से मिटैगी। जिन भगवान् में ये दोष नहीं देखे जाते

हैं इसलिये नैवेद्य से हमें उनकी उपासना करनी पड़ती है नैवेद्य सामान्यता से खाने योग्य पदार्थों को कहते हैं और उसी के चढ़ाने की शास्त्रों में आज्ञा है। फिर उस में यह विकल्प नहीं कर सकते कि पक्वनादि चढ़ाना योग्य है और तात्कालिक प्रासृक भोजन सामग्री योग्य नहीं है। परिणामों की पवित्रता के अनुसार कच्ची तथा पक्कानादि सभी सामग्री का चढ़ाना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इसी विषय को शास्त्रप्रमाणों से और भी दृढ़ करने के लिये विषेश लिखना उचित समझते हैं।

श्री वसुनन्दि श्रावकाचार में लिखा है कि:—

दहिदुद्धसप्पिमिस्सेहिं कमलमत्तएहिं वहुप्पयारेहिं
तेवट्ठिवजणेहिं य वहुविहपक्कणभेएहिं ।।
रूप्यसुवण्णकंसाइथालणिहिएहिं विविह भरिएहिं ।
पूयं वित्थारिज्जा भत्तिए जिणद पयपुरओ ।।

अर्थात्— दधि दुध और घी से मिले हुवे चावलों के भात से, शाक और व्यजनों से तथा अनेक तरह के पकवानों से सुवर्ण, चांदी, कांसी, आदि के थालों से जिन भगवान् के चरण कमलों के आगे पूजन करनी चाहिये।

श्री धर्मसंग्रह श्रावकाचार में:—

केवलज्ञानपूजायां पूजितं यदेनकधा ।
चारुभिश्चरुभिर्जैनपादपीठं विभूषये ।।

अर्थात्— केवल ज्ञान के समय की पूजन में अनेक प्रकार से पूजन किये गये जिन भगवान् के चरण सरोजों को मनोहर व्यञ्जनादि नैवेद्यों से विभूषित करता हूं।

श्री इन्द्रनन्दि पूजासार में :—

ॐ क्षीरशर्कराप्रायं दधिप्राज्याज्यसंस्कृतम् ।
साान्नाय्यं शुद्धपात्रस्थं प्रोत्क्षिपामि जिनेशिनः ॥

अर्थात्— दूध शक्करादि मधुर पदार्थों से युक्त, दधि से बनाये हुवे अतिशय पवित्र नैवेद्य को जिन भगवान् के चरणों के आगे स्थापित करता हूं।

श्री वसुनन्दि प्रतिष्ठासार में:—

स्वर्णादिपात्रविन्यस्तं दृग्मनोहारि सद्रसम ।
विस्तारयामि सान्नाय्यमग्रतो जिनपादयोः ॥

अर्थात्— सुवर्ण चांदी रत्नादिकों के पात्रों में रखे हुवे, दीखने में नेत्रों को बहुत मनोहर, और अच्छे२ रसों से बने हुवे नैवेद्य से जिन भगवान् के चरणों के आगे चढ़ाता हूं। इसी तरह पद्मनन्दि पच्चीसी, जिन संहिता, नवकार श्रावकचारादि संम्पूर्ण शास्त्रों की आज्ञा है। इसलिये नैवेद्य में सब तरह की सामग्री चढ़ानी चाहिये।

वसुनन्दि स्वामी ने नैवेद्य पूजन के फल को कहते हुवे कहा है किः—

जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंतितेयसम्पण्णो ।
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावीपसरीरो ।।

अर्थात्— जिन भगवान् के आगे नैवेद्य के चढ़ाने से कान्तिमान तेजस्वी, अपूर्व सामर्थ्य का धारक तथा लावण्य समुद्र की वेला के तरंगों के समान शरीर का धारक होता है। इसी विषय के विशेष देखने की इच्छा रखने वाले षट्कर्मोपदेश रत्नमाला नामक ग्रन्थ में देख सकते हैं।

दीप पूजन

दीप पूजन के सम्बन्ध में वसुनन्दि स्वामी का कहना है कि:-

दीवेहिं णियपदोहामियक्कतेएहिं धूमरहिएहिं ।
मंदमंदाणिलवसेण णच्चतहिं अच्चणं कुज्जा ।।
यणपडलकम्मणिचयव्वदूरमवसारियंधयारेहिं ।
जिणचरणकमल पुरओ कुणिज्ज रयणंसुभत्तिए ।।

अर्थात्— अपनी प्रभा समूह से सूर्य के समान तेज को धारण करने वाले, धूमरहित शिखा से संयुक्त, मन्द मन्द वायु से नृत्य को करते हुवे, और मेघपटल के समान कर्म रूप अंधकार के समूह को अपने प्रकाश से दूर करने वाले दीपकों से जिन भगवान् के चरण कमलों के आगे रचना करनी चाहिये।

श्री योगीन्द्र देव श्रावकाचार में यों लिखते हैं:—

दीवंदइ दिणइ जिणवरहं मोहं होइणट्ठाइ

अर्थात्— जो जिन भगवान् की दीपक से पूजा करते हैं उनका मोह अज्ञान नाश को प्राप्त होना है।

श्री इन्द्रनन्दि पूजासार में लिखा है:—

ॐ केवल्यावबोधार्को द्योतयन्नखिलं जगत्।
यस्य तत्पादपीठाग्रे दीपान् प्रद्योतयाम्यहम्॥

अर्थात्— जिनके केवल ज्ञान रूप सूर्य्य ने सम्पूर्ण जगतको प्रकाशित किया है उन जिन भगवान् के चरणों के आगे दीपकों को प्रज्वलित करता हूं।

श्री धर्मसार संग्रह में लिखा है कि:—

सुत्रामशेखरालीढरत्नरश्मिभिरंचितम्।
दीपैर्दीपिताशास्यैर्द्योतयेऽर्हत्पदद्वयम्॥

अर्थात्–दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले दीपकों से इन्द्र के मुकुट में लगे हुवे रत्नों की किरणों से युक्त जिन भगवान् के चरणों को, प्रकाशित करता हूं।

श्री पद्मनन्दि पच्चीसी में यों लिखा है:—

आरार्त्तिकं तरलवन्हिशिखा विभाति
स्वच्छे जिनस्य वपुषि प्रतिबिम्बितं सत्।
ध्यानानलो मृगयमाण इवावशिष्ठं
दग्धुं परिभ्रमति कर्मचयं प्रचण्डम॥

अर्थात्— जिन भगवान् के निर्मल शरीर में चञ्चल अग्नि की शिखा करके युक्त, आरत्तिक अर्थात्— आरति करने के समय का दीप समूह प्रतिविम्वित होता हुआ शोभा को प्राप्त होता है। इस जगहँ भगवान्पद्मनन्दि उत्प्रेक्षा करते हैं कि जो दीपक जिन भगवान् के शरीर में प्रतिविम्वित होता है वह वास्तव में दीपक समूह नहीं है किन्तु बाकी के बचे हुवे प्रचण्ड कर्मसमूह को भस्म करने के लिये ढूंढने वाला ध्यान रूप अग्नि है क्या ?

श्री उमास्वामी श्रावकाचार में लिखते हैं:—

मध्यान्हे कुसुमैः पूजा सन्ध्यायां दीपधूपयुक्।
वामांगे धूपदाहश्च दीपपूजा च सम्मुखी ।।
अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्।

अर्थात्— मध्यान्ह समय में जिन भगवान् की पूजन फूलों से, और संध्या काल में दीप धूप से करनी चाहिये। वाम भाग में धूप दहन करनी चाहिये। दक्षिण भाग में दीपक चढ़ाने की आज्ञा है। और दीप पूजन जिन भगवान् के सामने होनी चाहिये।

श्री षट्कर्मोपदेश रत्नमाला में:—

त्रिकालं वरकर्पूरघृतरत्नादिसंभवैः।
प्रदीपैः पूजयन् भव्यो भवेद् भाभारभाजनम् ।।

अर्थात्— उत्तम कर्पूर, घी, और रत्नादिकों के दीपकों से तीनों काल जिनभगवान् की पूजन करने वाला कान्ति का भाजन

होता है। अर्थात्— दीपक से पूजन करने वाला अतिशय तेज का धारण करने वाला होता है।

महर्षियों की प्रत्येक ग्रन्थों में इसी तरह आज्ञा है परन्तु इस समय की प्रवृति के देखने से एक तरह विलक्षण कल्पना का प्रादुर्भाव दिखाई पड़ता है। क्या अविद्या को अपने ऐसे विषम विष का प्रयोग चलाने के लिये जैन जाति ही मिली है ? क्या आचार्यों का अहर्निश परिश्रम निष्प्रयोजन की गणना में गिना जावेगा ? क्या जैनसमाज उनके भारी उपकार की कदर नहीं करेगा ? हन्त ! यह अश्रुत पूर्व कल्पना कैसी ? यह असंभावित प्रवृति— कैसी ? यह महर्षियों के वचनों से उपेक्षा कैसी ? नहिं नहिं ठीक तो है यह तो पञ्चम काल है न ? महाराज चन्द्रगुप्त के स्वप्नों का साक्षाकार है। वे लोग शान्त भावों का सेवन करें जिन्हें अपने प्राचीन गुरूओं के वचनों पर भरोसा है। यह शान्त भाव कभी उन्हें कल्पतरू के समान काम देगा। परन्तु शान्तभाव का यह अर्थ कभी भूल के भी करना योग्य नहीं है कि अपने शान्त होने के साथ ही महर्षियों के भूतार्थ वचनों के बढ़ते हुवे प्रचार को तोक कर उन्हें भी सर्वतया शान्त करदें। ऐसे अर्थ को तो, अनर्थ के स्थानापन्न कहना पड़ेगा। इसलिये आर्षवचनों के प्रचार में तो दिनों दिन प्रयत्नशील होते रहना चाहिये।

हमें दीप पूजन की मीमांसा करना है। पाठक महाशय भी जरा अपने उपयोग को सावधान करके एक वक्त उस पर विचार कर डालें।

जिस तरह नैवेद्य की जगहँ नारियल के खण्ड काम में लाये जाते हैं वही प्रकार दीपक का भी है। परन्तु विशेष यह है कि दीपक की जगहँ उन्हें केशर के मनोहर रंग से रंग लिये जाते हैं। चाहे और न कुछ हो तो न सही परन्तु पूजक पुरुष की इतनी इच्छा तो अवश्य पूर्ण हो जाती है कि दीपक की तरह उनका रंग पीला हो जाता है। अच्छा होता यदि इसी तरह आठों द्रव्यों की जगहँ भी किसी एक द्रव्य से ही काम ले लिया जाता। और इससे भी कितना अच्छा होता यदि इसी पवित्र संकल्पित दीपक से सर्वगृह कार्य निकाल कर तैलादिकों के अपवित्र दीपकों का विदेशी वस्तुओं के समान बहिष्कार कर दिया जाता। खेद ! विचार बुद्धि हमारा आश्रय छोड चुकी ? आचार्यों के परिश्रम का विचार नहीं, शास्त्रों की आज्ञा का विचार नहीं। जो कुछ किया वह सब अच्छा है। सच पूछो तो इसी भ्रमात्मक श्रद्धान ने हमें रसताल में पहुचाया। इसी ने हमारे पवित्र भाग्य पर पानी फेरा। अस्तु।

जब किसी महाशय से अपने भ्रमात्मक ज्ञान की निवृति के लिये पूछा जाता है कि इस तरह दीपक के संकल्प करने की विधि किस शास्त्र में मिलेगी तो कुछ देर तक तो उनके मुहँ की ओर तरसना पड़ता है। यदि किसी तरह दया भी हुई तो यह युक्ति आकर उपस्थित होती हैं कि जब साक्षाज्जिन भगवान् का संकल्प पाषाणादिकों में किया जाता हैं तो, दीपक तथा पुष्पों के संकल्प में क्या हानि हैं ? इस अकाट्य युक्ति का भी जब "जिन भगवान्

का प्रतिमाओं में संकल्प नाना तरह के मंत्रों से होता हैं तथा शास्त्रानुसार हैं। इस आज्ञा के न मानने से धर्म कर्म का नाश होना सम्भव हैं। दूसरे, जीवों को सुखों का कारण भी हैं। परन्तु दीपक के विषय में न तो कोई मंत्रविधान हैं न कोई शास्त्रविधान हैं और प्राचीन हो सो भी नहीं हैं।" इत्यादि युक्तियों से प्रतीकार किये जाने का यदि किसी तरह उपाय किया भी तो फिर विचारे पूछने वाले की एक तरह वारी आ जाती हैं। यदि पूछने वाला खुशामदी हुआ तो हां में हां मिला कर उनके चित्त की शान्ति कर देता हैं। यदि स्वतंत्रावलम्बी हुआ तो उनकी क्रोध वन्हि से प्रशान्त होना पड़ता हैं। यद्यपि वन्हि से शान्तिता नहि होती परन्तु इस विषम विषय की आलोचना में असभाव्य को भी संभाव्य मानना पड़ता हैं। जो हो परन्तु हमारा आत्मा इस विषय पर गवाई नहीं देता कि इस तरह दीपक को जगहें नारियल के खंड युक्त कहें जा सकें ? इसलिये सारसंग्रह के श्लोकों को यहां पर लिखते हैं उनका ठीकर शास्त्रानुसार समाधान करके हमारे चित्त शान्ति करेंगे उनका अत्यन्त अनुग्रह मानेंगे।

नालिकेरोद्भवैः खण्डैः पीतरक्तीकृतैरहो।
पूजनं शास्त्रतः कस्माद्रीतिर्निस्सारिताऽधुना॥
निद्रागारविवाहादौ दीप्रदीपालिकालिभिः।
प्रयत्नेन कृतं दीपं पूजने निन्द्यते कुतः॥
गणनाथमुखात्पूर्वसूरिभिः किन्न निश्चितम्।
पुष्पदीपादिभिश्चार्हन्पूज्यो नो वेत्ति तद्वद॥

असत्यात्यागिभिः प्रोक्तं चेन्मिथ्या तत्त्वया कथम्।
बोधत्रिकं विना बुद्धं मत्प्रश्नस्योत्तरं कुरु ।।
आरम्भपुष्पादिपूजनात्कति मानुषाः ।
दुर्गति प्रययुश्चेति विस्तरं वद शास्त्रतः ।।
यतोऽस्माकं भवेत्सत्या प्रतीतिस्तव भाषिते ।
नो दृष्टः शास्त्रसन्दोहश्चेद् वृथा कुपथं त्यज ।।

अर्थात— केशरादिकों के रंग से रंगे हुये नारियल के टुकड़ों से जिनभगवान् का पूजन करना यह रीति किन शास्त्रों में से निकाली गई है ? शयन भवन में तथा विवाहदिकों में दीपकों की श्रेणियें अनेक तरह के उपायों से जलाई जाती है फिर पूजन में क्यों की जाती है ? जिनदेव के मुखकमल से पूर्वाचार्यो ने "दीप पुष्प, फलादिकों से जिनभगवान् पूज्य है या नहीं" इस तरह का निश्चय किया था या नहीं ? झूंठे वचनों को किसी तरह नहीं बोलने वालों का कहा हुआ ठीक नहीं हैं यह बात मति श्रुति, और अवधि ज्ञान के बिना कैसे जानी गई ? मेरे इन प्रश्नों का उत्तर ठीकर देना चाहिये । पुष्प, दीप, फलादिकों से जिनभगवान् की पूजन करने से कितने मनुष्य दुर्गति को गये यह बात विस्तार पूर्वक कहो ? जिससे तुम्हारे कथन में हमारी सत्य प्रतीति हो यदि कहोगे हमने शास्त्रों को नहीं देखे है तो फिर अपने कुमार्ग को तिलाञ्जली दो ।

प्रश्न— यह तो ठीक है परन्तु घृत तो, इस काल में पवित्र नहीं

मिलता है फिर क्या ऐसे वैसे घी को काम में ले आना चाहिये ?

उत्तर— इस समय घी पवित्र नहीं मिलता यह कहना शेथल्यता का सूचक है। प्रयत्न करने वालों के लिये कोई बात दुष्प्राप्य नहीं है फिर यह तो घी है। अच्छा यह भी मान लिया जाय कि पवित्र घी नहीं मिलता फिर यह तो कहो कि श्रावक लोगो के लिये जो घी काम में आता है वह अपवित्र है क्या ? खैर ! श्रावकों की बात जाने दीजिये जो घी व्रती लोगों के काम में आता है वह कैसा है ? उसे तो पवित्र ही कहना पड़ेगा। उस घी को दीपकादि के काम में लाया जाय तो क्या हानि है ? हां एक बात तो रह ही गई ! नैवेद्य के बनाने में भी तो यही घी काम में लाया जाता है फिर उसी घी को एक जगहें अपवित्र कहना यह आश्चर्य नहीं है क्या ?

प्रश्न— कितने लोगों के मुंह से यह कहते हुवे सुना है कि गाय भैंस आदि को चरने के लिये जंगल में नहीं जाने देना चाहिये। उन्हें घर में ही रखकर खिलाना पिलाना चाहिये। जिससे वे अपवित्र पदार्थो को नहीं खाने पावें फिर उन्हीं के घी दूध आदि को जिनभगवान् की पूजन के काम में लाना चाहिये।

उत्तर— यह वर्णन किसी मूलग्रन्थ में नहीं देखा जाता। केवल मन की नवीन कल्पना है। और न किसी को इस विषय

में आगे पांव धरते देखा। फिर यह नहीं कह सकते कि इस प्रश्न का कितना अंश ठीक हैं। हम तो इस बात को पहले देखेंगे कि यह बात शास्त्रानुसार है या नहीं जो बात शास्त्रानुसार होगी उसे ही प्रमाण मानेंगे।

प्रश्न— यह कैसे कहते हो कि यह बात शास्त्रानुसार नहीं है ?

उत्तर— यदि हमारा कहना ठीक नहीं हैं तो तुम्हीं कहो कि किस शास्त्र में इस विधि का निकाल किया गया है ?

प्रश्न— क्रियाकोश में तो यह बात लिखी गई है ?

उत्तर— क्रियाकोप संस्कृत भापा का पुस्तक हैं क्या ?

प्रश्न— नहीं, भापा का।

उत्तर— वह किसी ग्रन्थ का अ वाद हैं ?

प्रश्न— यह ठीक मालूम नहीं परन्तु सुनते हैं कि इधर उधर के संग्रह से बनाया गया है।

उत्तर— यदि किसी मूल ग्रन्थ के आधार पर है तो वह अवश्य माननीय हैं। बिना आधार के भाषाग्रन्थ मूल ग्रन्थों की तरह प्रमाण नहीं हो सकते। यह बात विचारणीय है कि लोगों को तो महर्पियों के वचनों पर श्रद्धा नहीं होती फिर निराधार दश दश पांच पांच वर्ष के बने हुवे ग्रन्थों को कहां तक प्रमाणता हो सकेगी ? यह बात अनुभव के योग्य हैं। खैर ! हमारा यह भी आग्रह नहीं है कि वह थोडे दिनों का बना हुआ है इसलिये अप्रमाण है। थोड़े

दिनों का बना हुआ होने पर भी यदि वह प्राचीन महर्षियों के कथनानुमार होता तो किसी तरह का विवाद नहीं था।

प्रश्न— दीपक पूजन में वहुत होना है और दीपक के जोने में हिंसा भी होती है। इसलिये भी ठीक नहीं है ?

उत्तर— दीपक पूजन में आरम्भादि दोषों को वताने वालों के लिये लिखा है कि:—

> भणत्येवं कदा कोऽपि दीपपुष्पफलादिभिः।
> कृता पूजाऽत्र सावद्या कथं पुण्यानुवन्धिनी ॥
> तं प्रत्येवं वदेज्जैनस्यागे हिंसादिकर्मणाम्।
> मतिस्तव विशुद्धा चेद्वधूभोगादिकं त्यज ॥
> जिनयात्रारथोत्साहप्रतिष्ठाऽऽयतनादिषु।
> क्रियमाणेषु पापं स्यात्तर्हि कार्यं न तत्त्वया ॥

अर्थात्— यदि कोई कहें कि दीप, पुष्प, फलादिकों से की हुई जिनभगवान् की पूजन सावद्य (पाप) करके युक्त रहती है फिर वह पुण्य के वन्ध की कारण कैसे कही जा सकेगी ? उसके लिये उत्तर दिया जाता है कि यदि हिंसादि कर्मो के त्याग करने में तुम्हारी वुद्धि निर्मल हो गई है तो, स्त्री, पञ्चन्द्रिय सम्वन्धी भोगादिको के त्याग करने में प्रयत्न करो। तीर्थयात्रा, रथोत्सव, प्रतिष्ठा मन्दिरों का वनवाना आदि कार्यों के करने में यदि पाप होता है तो, तुम्हें नहीं करने चाहिये।

इन वातों के देखने से स्पष्ट प्रतीति होती है कि शास्त्रानुसार दीपक का चढ़ाना अनुचित नहीं है। किन्तु अच्छे फल का कारण है। इसी से तो कहा जाता है कि:—

तमखण्डन दीप जगाय धारूं तुम आगे।
सब तिमिर मोह क्षयजाय ज्ञान कला जागे॥

फल पूजन

कितने लोगों का विचार है कि वादाम, लवंग, इलायची छुहारे, पिस्ता आदि निर्जीव सूखे पदार्थ जब अनायासेन उपलब्ध होते हैं फिर विशेष श्रम से संग्रह किये हुवे हरित फलों के चढ़ाने से विशेष लाभ क्या है? यह वात समझ में नहीं आती। जैनियों का मुख्योद्देश जिस कार्य के करने से लाभ अधिक तथा हानि थोड़ी हो उसे करने का है। हरित फलों के चढ़ाने से जितनी हिंसा होती है उतना पुण्य होगा यह वात परिणामों के आधीन है। कदाचित् कहो कि हमारे परिणाम हरित फलों के चढ़ाने से ही पवित्र रहेंगे? परन्तु इसके पहले सामग्री की भी शुद्धता होनी चाहिये। कोई कहें कि हमारे परिणाम खोटे कामों के करने से अच्छे रहते हैं परन्तु उसे नीतिज्ञ पुरूष कव स्वीकार करने के हैं। तथा धर्म शास्त्रों से भी यह वात विरुद्ध है। इत्यादि।

हमारा यह कहना नहीं है कि सूखे फल न चढ़ाये जाँय।

परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कहा जा सकता कि इसके साथ ही आचार्यों की आज्ञा का उल्लङ्घन कर दिया जाय।

हरित फलों के निषेध के केवल दो कारण बताये गये हैं परन्तु बुद्धिमानों की नजर में वे उपयोगी नहीं कहे जा सकते। पहला कारण उनके सचित्त होने के विषय में है। परन्तु यह बात हम लोगों के लिये निभ सकैगी ? इसका जरा सन्देह है। यदि हम सचित्त वस्तुओं का परित्याग किये होते तो, यह बात किसी अंश में सफल हो सकती थी। परन्तु दिन रात सचित्त वस्तुओं के स्वाद पर तो हम मुग्ध हो रहे हैं फिर क्यों कर यह श्रेणि हमारे लिये सुखद कही जा सकेगी ?

प्रश्न— हम लोग सचित्त वस्तुओं का सेवन करते हैं उससे पूजन में भी चढ़ाना यह समानता कैसे हो सकेगी ? इसका तो यह अर्थ हो सकता है कि नाना तरह विषयोपभोगों का सेवन करते हैं जिनभगवान् का भी उनसे सम्बन्ध रहना चाहिये ?

उत्तर— हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि तुम अपने समान जिन भगवान् को भी बना लो। इसे तो एक तरह की असत्कल्पना कहनी चाहिये। परन्तु यह बात मीमांसा के आधीन है कि जो बात शास्त्रानुसार जिन भगवान के लिये नहीं लिखी हुई है उसका तो उनके लिये सर्वथा निरास ही समझना चाहिये। रहा शास्त्रानुसार विषय

का सो वह तो उसी प्रकार अनुष्टेय है जिस तरह उसका करना लिखा हुआ है। इसीलिये यह कहना है कि पहले तो शास्त्रों में हरित फलों के चढ़ाने की परम्परा है दूसरे सचित्त पदार्थों से हम विरक्त हों सो भी नहीं है फिर निष्कारण शास्त्रों की मर्यादा तोडना क्यों कर उचित कहा जा सकेगा।

सचित फलों के चढ़ाने से हिंसा होती है यह कहना भी ठीक नहीं है। इसे हम क्या कहें! सांसारिक कार्यों के करने में भी इस कठोर शब्द का उच्चारण करना हानि कारक मालुम पड़ता है। सच पूछिये तो जो शब्द जनियों के मुहँ पर लाने योग्य नहीं हैं वही शब्द जिन भगवान् की पूजन में जगहँ२ उच्चारण किया जाता है। इसे हृदय को संकीर्णता को छोड़ कर और क्या कह सकते हैं मैं नहीं समझता कि वे लोग जिन धर्म के लाभ से कभी अपनी आत्मा को शान्त करेगें। उन लोगों का यह कहना केवल ऊपरी ढंग का है कि हरित फलों के चढ़ाने से परिणामों की शुद्धि नहीं रहती इसलिये बाह्य साधनों की शुद्धि होनी चाहिये। वे लोग वहुत कुछ उत्तम मार्ग पर चलने वाले हैं जो किसी तरह भक्तिमार्ग में लगे हुवे हैं और जिन भगवान् की पूजनादि आस्था पूर्वक करते हैं। अरे! मान लिया जाय कि ऐसे लोग किसी तरह असमर्थ भी हुवे तो क्या हुआ परन्तु वे अपने परिणामों को तो विकल नहीं करते है। वे शुभ के भोक्ता होते हैं यह निश्चय है। जरा षट्कर्मोपदेशरत्नमाला को निकाल कर उसमें उस कथा

का मनन कर जाईये जिस में तोते के भक्ति पूर्वक आम्र फल के चढ़ाने का फल लिखा हुआ है। फलों के चढ़ाने से हिंसा होती है या नहीं इस विषय का समाधान प्रसंगानुसार "दीप पूजन" के विषय में भले प्रकार कर आये हैं। उसी स्थल से अपने चित्त का निकाल कर लेना चाहिये।

फलों के चढ़ाने से विशेष लाभ नहीं बताना यह भी स्वबुद्धि के अनुकूल कहना है। आचार्यों ने फलपूजन के फल के विषय में कहां तक लिखा है इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस२ ने फल पूजन से लाभ उठाया है उनका वर्णन ग्रन्थों में लिखा हुआ है। उसे देखो! श्रद्धान में लाओ!!

अब देखना चाहिये शास्त्रों में फलों के चढ़ाने का किस तरह उल्लेख है।

श्री धर्मसंग्रह में लिखा है कि:—

सुवर्णैः सरसैः पक्वैर्बीजपूरादिसत्फलैः।
फलदायि जिनेन्द्राणामर्चयामि पदाम्बुजम् ॥

अर्थात्— मनोभिलषित फल के देने वाले जिन भगवान् के चरण कमलों को सुन्दर वर्ण वाले और अत्यन्त मधुर रसवाले आम, केला, नारंगी, जम्बू, कवीट, अनार आदि उत्तम फलों से पूजता हूं।

श्री इन्द्रनन्दि संहिता में:—

ॐ मातुलिंगनारंगकपित्थक्रमुकादिभिः
फलैः पुण्यफलाकारैरचर्ययाम्यखिलाचितम् ।।

अर्थात्—त्रैलोक्य पूजनीय करके जिन भगवान् को पुण्य फल स्वरूप मातुलिंग, नारंगी, कवीट, सुपारी, नारियल आदि फलों से पूजन करता हूं ।

श्री वसुनन्दि पूजासार में यों लिखा है कि:—

नालिकेराम्रपूगादिफलैः सग्द्न्धसदृशैः ।
पूजयामि जिनें भक्तया मोक्षसौख्यफलप्रदम् ।।

अर्थात्— नारियल, आंवला, सुपारी, बीजपूर, सीताफल, अमरूद, निम्बू, आदि पवित्रगन्ध और उत्तम रसयुक्त फलों से अविनश्वर शिव सुख को देने वाले जिन भगवान् की अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजन करता हूं ।

श्री आदिपुराण में महाराज भरत चक्रवर्ति ने फलों से पूजन की लिखी है उसे जरा देखिये:—

परिणतफलभेदैराम्रजम्बूकपित्थैः
पनसलकुचमोचैर्दाडिमैर्मातुलिंगैः ।
क्रमुकरुचिरगुच्छैर्नालिकेरैश्चरम्यै-
गुरूचरणसपर्यामातनोदाततश्रीः ।।

अर्थात्— छह खड वसुधरा के स्वामि महाराज भरत चक्रवर्ति अपने जनक आदिजिनेन्द्र के चरण कमलों की पके हुवे और मनोहर आम्र, जम्बू, कपित्थ, पनस, कटहर, लकुच, केला,

दाडिम, नारंगी, सुपारी, नारियल आदि अनेक तरह के फलों से अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजन करते हुवे।

वसुनन्दि श्रावकाचार की आज्ञा है कि:—

जंबीरमोयदाडिमकाविस्थपणसूयनालिएरेंहि ।
हिंतालतालखज्जुरविवणारंगचारेंहि ॥
पुइफलतिंदुआमलयजंबूबिल्लाइसुरहिमिट्ठेंहि ।
जिणपयपुरओ रयणं फलेंहि कुज्जा सुपक्केंहि ॥

अर्थात्— जंबोर, कदलीफल, दाडिम, कपित्थ, पनस, नालिकेर, हिंताल, ताल, खर्जूर, किंदूरी, नारंगी, सुपारी, तिन्दुक आमला, जाम्बू, विल्व इत्यादि अनेक प्रकार के पवित्र सुगन्धित और मिष्ट, पके हुवे फलों से जिन भगवान् के चरण कमलों के आगे रचना करनी चाहिये।

फल पूजन में वसुनन्दि स्वामी पूजन के फल को कहते हुवे कहते हैं कि:—

जायइ फलेंहि संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो ।

अर्थात्— जिनभगवान् की फलों से पूजन करने वाले मोक्ष के सुख को प्राप्त होते हैं। इसी तरह जितने पुस्तक हैं उन सव में फल पूजन के सम्वन्ध से लिखा हुआ है। उसे ही मानना चाहिये। महर्षियों की आज्ञा का उल्लंघन करना अनुचित है।

पुष्प कल्पना

इस विषय में उमास्वामी महाराज का कहना है कि:—

पद्मचम्पकजात्यादिस्रग्भिः सम्पूजयेज्जिनान् ।
पुष्पाभावे प्रकुर्वीत पीताक्षतभवैः समैः ॥

अर्थात— कमल, चम्पक, केवड़ा, मालती वकुल, कदम्ब, अशोक, चमेली, गुलाब, मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकर, परिजात आदि पुष्पों से जिन भगवान् की पूजन करनी चाहिये। यदि कहीं पर उक्त फूलों का योग न मिले तो, चावलों को केशर के रंग में रंग कर पुष्पों की जगहँ काम में लाने चाहिये। यह तो तो महर्षियों की आज्ञा है। परन्तु इस समय तो प्रवृति कुछ और ही चल पड़ी है जो सर्व तरह के पुष्पों को मिलने पर भी कल्पित पुष्प काम में लाये जाते हैं। आचार्यो की आज्ञा थी किस तरह उसका स्वरूप वन गया कुछ और ही। महर्षियों का अभिमत साक्षात्पुष्पों के अभाव में चावलों के पुष्पों के चढ़ाने का था परन्तु उसका प्रतिरूप यह हो गया कि इन्हीं पुष्पों को चढ़ाना चाहिये हरित पुष्पों के चढ़ाने से पाप का वन्ध होता है।

कहिये पाठक ! देखा न ? आचार्यो की आज्ञा का वैपरीत्य। अव इस जगहं विचारणीय यह है कि किस विधि का श्रावकों को अवलम्वन करना चाहिये ? किस से भगवान् की आज्ञा की अखड पालन होगा ? मेरी समझ के अनुसार भगवान्

उमास्वामी महाराज की आज्ञा को बहुत गौरव होना चाहिये। क्योंकि महर्षियों के वचन और हम लोगों के वचनों की समानता नहीं हो सकती। वे तपस्वी हैं, पापकर्मों से अलिप्त हैं, अतिशय पूज्य हैं। और गृहस्थों की अवस्था कैसी है यह बात सब कोई जानते हैं। अब रही सचित्त पुष्पों के चढ़ाने तथा न चढ़ाने की सो इसका विशेष खुलासा पहले "पुष्प पूजन" सम्बन्धी लेख में कर आये हैं उसे देखकर निर्णय करना चाहिये।

प्रश्न— इस विषय में उपालम्भ देना अनुचित है। क्योंकि जिस तरह उमास्वामी ने लिखा है उस तरह मानते तो हैं? क्या उमास्वामी ने कल्पित पुष्पों को चढ़ाना नहीं लिखा है? और यह एकान्त ही क्यों जो हरित पुष्पों के होने तो उन्हें नहीं चढ़ाना और अभाव में चढ़ाना?

उत्तर— जब आचार्यो की आज्ञा पर बिल्कुल ध्यान ही नहीं दिया जाता फिर उपालम्भ क्यों न दिया जाय। हां उमास्वामी ने चावलों के पुष्पों का चढाना लिखा हैं परन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसके एक अंश को माना जाय और एक का सर्वथा परिहार ही कर दिया जाय। जब उमास्वामी के वचनों को मानते ही तो, उनके लिखे अनुसार मानना चाहिये। एक ही के वचनों में कमीवेशी करना ठीक नहीं है। एकान्त इसे नहीं कहते हैं किन्तु आचार्यो के वचनों को नहीं मानना यही एकान्त का स्वरूप है। अनेकान्त के मानने वाले यह कभी नहीं कह

सकते की आचार्यों के वचनों में प्रमाणता तथा अप्रमाणता भी है यह कहना बिल्कुल जिन मत से विरुद्ध है। इसलिये जिन मत के सिद्धान्तानुसार अनेकान्त के मानने वालों को जिस तरह जिन भगवान् की आज्ञा है उसी तरह उसे माननी चाहिये।

कलश कारिणी चतुर्दशी

भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी के दिन जिन भगवान् का अभिषेक सर्वत्र होता है। अभिषेक होने के बाद कितनी जगहें तो जिन भगवान् के चरणों पर चढी हुई पुष्पमाला को न्योछावर करके उसे श्रावक लोग स्वीकार करते हैं। और कितनी जगहें उक्त पुष्पमाला की विधि की तरह जल के भरे हुवे कलश को करते हैं इस तरह पृथक२ क्रियायें होती हैं। परन्तु शास्त्रों का पर्यालोचन करने से कलश सम्बन्धी विधि मनमानी मालूम पड़ती है। और पुष्पमाला की विधि प्राचीन तथा शास्त्रानुसार प्रतीति होती है। मैं जहां तक इस विषय का अनुसंधान करता हूं तो इसके अवतरण का कारण ज्ञात होता है जिस तरह हरित फल पुष्पादकों को सचित्त होने से उनका चढ़ाना अनुचित समझा गया उसी तरह इसे भी अनुचित समझा है यदि वास्तव में हमारा यह अनुसंधान ठीक निकला तो अवश्य कहूंगा कि यह कार्य शास्त्र-

विरूद्ध होने से अनुचित है। जरा शास्त्रों के ऊपर ध्यान देना चाहिये। शास्त्रों के देखे विना किसी विषय का छोड़ना तथा स्वीकार करना ठीक नहीं है।

प्रश्न— पहले तो जिनभगवान् को पुष्पमाला चढ़ा देना फिर उसे ही न्यौछावर करना, यह क्या जिनभगवान् का अविनय नहीं है? दूसरे, जब वह एक वक्त चढ़ चुकी फिर उसके ग्रहण करने का हमें अधिकार है? किन्तु उसके ग्रहण करने से उलटा आस्रव कर्म का बन्ध होता है ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने तत्वार्थसार में लिखा है।

तथाहिः—

चैत्यस्य च तथा गन्धमाल्यधूपादिमोषणम्।
अतितीव्रकषायत्वं पापकर्मोपजीवनम्॥
परुषासह्यवादित्वं सौभाग्यकरणं तथा।
अशुभस्येति निर्दिष्टा नाम्न आस्रवहेतवः॥

अर्थात्— जिनभगवान् सम्वन्धी ग्रन्थ, माल्य, और धूपादि द्रव्यों का चुराना, अत्यन्त तीव्रकषाय का करना, हिंसा के कारण भूत पापकर्मों से जीविका का निर्वाह करना, कठोर और नहीं सहन करने के योग्य वचनों का बोलना, इत्यादि अशुभ अर्थात पापकर्मो के अनेक कारण हैं। इन श्लोकों में गन्ध माल्यादिकों का भी ग्रहण आही चुका है। कदाचित् कहो कि हमने गन्ध-

माल्य को चुराया तो नहीं है यह कहना भी ठीक नहीं है। जब तुम कहते हो कि हमने उसे चुराया नहीं है हम तो उसे हजारों लोगों के सन्मुख लेते हैं अस्तु। उसके साथ में यह भी तो है कि जब तुमने उसे चुराया नहीं परन्तु जिनभगवान् ने तुम्हें दिया हो सो भी नहीं है इसलिये सुतरां उसे मुषितद्रव्य कहना पड़ेगा। उसके ग्रहण करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

उत्तर— जिन भगवान् पर चढ़ी हुई पुष्पमाल को न्यौछावर करने से जिन भगवान् का अविनय होता है यह कहना बिल्कुल कल्पित है इसमें अविनय के क्या लक्षण हैं यह मालूम नहीं पड़ता। क्या उसे जिनभगवान् के ऊपर चढ़ाई है इससे इतनी सामर्थ्य हो गई जो त्रैलोक्यनाथ का अविनय की कारण गिनी जाने लगी? एक वक्त चढ़ाई हुई माला को पुनः ग्रहण करना चाहिये या नहीं इस विषय का "पुष्प पूजन" नामक लेख में किसी संहिता की श्रुति को लिखकर ठीक कर दिया गया है। उसे देखना चाहिये फिर भी कहते हैं कि हां और द्रव्यों के ग्रहण करने का अधिकार नहीं है परन्तु गन्धोदक, गन्ध पुष्पमाल इनके ग्रहण करने में किसी तरह का दोष नहीं है।

तत्वार्थसार के श्लोकों का यह तात्पर्य नहीं है कि जिन-भगवान् के ऊपर चढ़े हुवे गन्धमाल्य को स्वीकार करने से आस्रव-

कर्म का वन्ध होता है। किन्तु जो पूजन के लिये रहता है उसके ग्रहण करने से आस्रवकर्म का वन्ध होता है। उलटा अर्थ करके लोगों के सन्देह पैदा करना ठीक नहीं है। यदि गन्धमाल्य के ग्रहण करने को मुषितद्रव्य कहा जाय तो, फिर गन्धोदक मुषित-द्रव्य क्यों नहीं ? इसमें क्या विशेषता है और गन्धमाल्य में क्या न्यूनता है इसे लिखना चाहिये।

इसी विषय का अर्थात्— जिन भगवान् के चरणों पर चढ़े हुवे गन्ध माल्य के ग्रहण करने का उपदेश देने वाले, आदि पुराण में भगवज्जिन सेनाचार्य, उत्तरपुराण में गुणभद्राचार्य आदि महर्षियों ने ठीक नहीं कहा है ऐसा कहने में जिह्वा को संकुचित नहीं होना पड़ेगा क्या ? यह विचारना चाहिये।

अभिषेक के वाद पुष्पमाला के न्योछावर करने में इस तरह शास्त्र में लिखा हुआ मिलता है:—

श्री जिनेश्वरचरणस्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला।
महाभिषेकावमाने बहुधनेन ग्राह्यभाव्यश्रावकेनेति ॥

यह श्रुति जिनयज्ञकल्प प्रतिष्ठा पाठ की है।

अर्थात्— जिनभगवान् के चरण कमलों के स्पर्श से अनमोल्य पूजन हुई है इसलिये वह पुष्पमाला भक्तिमान् श्रावकों को असीम धन खर्च करके ग्रहण करना चाहिये। कहिये पाठक वृन्द! शास्त्रों का कथन ठीक है न ? हम कहां तह कहें यदि एक दो

क्रियाओं में ही भेदभाव होता तो सन्तोष कर लेते परन्तु जगहँ २ यह विपमता हैं फिर यदि ऐसे ही उपेक्षा कर ली जाय तो शास्त्रमार्ग तो किसी दिन बिल्कुल अन्तरित हो जायगा इसलिये हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसके यथार्थ मन्तव्य को प्रगट करते रहें जिस से लोगों की श्रद्धा में न्यूनता न होने पावे। और यही प्रार्थना प्रत्येक जैनमहोदय से करते हैं कि अपनी कर्त्तव्य बुद्धि का परिचय ऐसी जगहँ में देने का संकल्प करें।

सन्मुख पूजन

जिस तरह जिनप्रतिमाओं को पूर्व उत्तरमुख विराजमान करने के लिये प्रतिष्ठापाठादिकों में लिखा हुआ है उसी तरह पूजक पुरूष को भी दिशा विदिशाओं का विचार करना आवश्यक है। इस पर कितने लोगों का कहना है कि जब समव शरणादिकों में यह बात नहीं सुनी जाती है कि पूजक पुरूप को अमुक दिशा में रहकर पूजन करनी चाहिये। और अमुक दिशा की ओर नहीं तो, फिर उसी प्रकार प्रत्येक जिनमन्दिरों में भी यही बात होनी चाहिये। हम नहीं कह सकते कि धर्मकार्यो में दिशा विदिशाओं का इतना विचार किस लिये किया जाता है। धर्मकार्यो में यह विधान ध्यान में नहीं आता ?

पाठक महाशय ! देखो न आचार्यो के वचनों में शका ? यही बुद्धि का गौरव है। अस्तु रहे हमें कुछ प्रयोजन नहीं। केवल

प्रकृत विषय पर विचार करना हमारा उद्देश है। जब छोटे से छोटे कार्यों में भी दिशा विदिशाओं का विचार किया जाता है फिर परमात्मा के मंगलमयी पूजनादिकों में इस बात को ठीक नहीं कहना क्या आश्चर्य का विषय नही है ? इस बात को आबालवृद्ध कहते हैं कि मंगलिक कार्य चाहे छोटा हो अथवा बड़ा उसे पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर मुख कर के करना चाहिये। विवाहदिकों में यह बात कितनी जगहें देखी होगी कि प्रायः क्रियायें पूर्व तथा उत्तरमुख की ओर की जाती हैं। गुरु भी शिष्य को पढ़ाते हैं तथा व्रतादिकों को ग्रहण करवाते हैं अथवा और कोई संस्कारादि क्रियाये करते हैं वे सब उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर मुख करके की जाती हैं। फिर नहीं कह सकते कि जिन-भगवान् की पूजन में यह बात ध्यान में क्यों नहीं आती ?

हां यह माना कि समवशरण में पूजन के समय दिशा विदिशाओं का विचार नहीं है परन्तु यह भी मालूम है कि समव शरण सम्बन्धी और कृत्रिम जिनमन्दिरादि सम्बन्धी विधियों में कितना अन्तर है ? कभी यह बात सुनी है कि समव शरण में जिनभगवान् का अभिषेक होता है तथा और कोई प्रतिष्ठादि विधियें होती हैं। परन्तु कृत्रिम जिनमन्दिारादिकों में तो इन के बिना काम भी नहीं चलता। उसी प्रकार समवशरण में यदि दिशा विदिशाओं का विधान न भी हो तो उस से कोई हानि नहीं होती। और यहां तो बहुत कुछ हानि की संभावना है इसी

लिये आचार्यों ने दिशा विदिशाओं का विचार किया है। समव-शरण में दिशा विदिशाओं का विचार है या नहीं इस विषय में अभी तक शास्त्र प्रमाण नहीं मिला है। इस कारण ऊपर का लेख इस तरह से लिखा गया है। पाठकों को ध्यान रखना चाहिये। यदि कहीं शास्त्र प्रमाण देखने में आया हो तो, इधर भी अनुग्रह करें।

श्री उमास्वामी श्रावकाचार में लिखा है:—

स्नानं पूर्वमुखी भूय प्रतीच्यां दन्तधावनम्।
उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि पूजा पूर्वोत्तरामुखी ।।

अर्थात्—स्नान पूर्वदिशा की ओर मुख करके करना चाहिये। उत्तरदिशा की तरफ मुह कर के दन्तधावन, दक्षिण दिशा की ओर शुक्ल वस्त्रों को, धारण करना योग्य है। तथा जिन-भगवान् की पूजन पूर्वदिशा ओर उत्तरदिशा की तरफ मुख करके करनी चाहिये।

और भी:—

तत्रार्चकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुखः।
दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत् ।।
पश्चिमाभिमुखः कुर्यात् पूजां चेच्छ्रीजिनेशिनः।
तदा स्यात्सन्ततिच्छेदो दक्षिणस्यां समन्ततिः ।।
अग्नेयां च कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने।

वायव्यां सन्ततिर्नैव नैऋत्यान्तु कुलक्षया ॥
ईशान्या नैव कर्त्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी ॥

अर्थात्— पूजक पुरुष को पूर्वदिशा तथा उत्तरदिशा में जिन भगवान् के सम्मुख रहना चाहिये। दक्षिण तथा विदिशाओं में पूजन करना ठीक नहीं है। वही खुलासा किया जाता है। जिन भगवान् को पूजन पश्चिम दिशा की ओर करने वाले के सन्तति का नाश होता है। दक्षिण की ओर को हुई पूजा मृत्यु की कारण होती है। अग्नि कोण में मुख करके पूजन करने वाले को दिनों दिन धन की हानि होती है। वायव्य कोण की ओर पूजन करने से सन्तान का अभाव होता है। नैऋत्यदिशा की तरफ की हुई पूजा कुल के नाश की कारण मानी गई है। और सौभाग्य हरण करने वाली ईशान दिशा में पूजा कभी नहीं करनी चाहिये।

तथा यशस्तिलक में भी पूजक पुरुष के दिशा विदिशाओं का विचार है:—

उदङ्.मुखं स्वयं तिष्ठेप्राङ्.मुखं स्थापयेज्जिनम्।
पूजाक्षणे भवेन्नित्यंयमी वाचंयमक्रियः ॥

अर्थात्— पूजन करने वाले को उत्तर मुख बैठ कर जिन भगवान् को पूर्वमुख विराजमान करना चाहिये। पूजन के समय पूजक पुरुष को सदैव मौन युक्त रहकर पूजन करनी चाहिये। कदाचित् कोई शंका करे कि पूजक पुरुष मौनी रहकर कैसे पूजन कर सकेगा क्योंकि पूजन विधान तो उसे बोलना ही पड़ैगा।

यह कहना ठीक है परन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसे मौन रह कर पूजन वगेरा भी नहीं बोलनी चाहिये। किन्तु उस श्लोक का असली अभिप्राय है कि पूजनसमय में अन्यलोगों से वार्तालाप का सम्वन्ध नहीं रखना चाहिये। इसी तरह अन्य धर्म ग्रन्थों की भी आज्ञा है।

सम्मुख पूजन करने से और तो जो कुछ हानि होती है वह तो ठीक ही है परन्तु सव से वड़ी भारी तो यह हानि होती है कि जिस समय पूजक पुरूप भगवान् के सम्मुख "शुष्को वृक्ष स्तिष्ठत्यग्रं" की कहावत को चरितार्थ करते हैं। उस वक्त विचारे दर्शन स्तवन और वन्दनादि करने वालों की कितनी वुरी हालत होती है यह उसे ही पूछिये जिसे यह प्रसंग आपड़ा है और कहीं कहीं तो यहां तक देखने में आया है कि जव पूजक दश पांच होते हैं तव तो विचारों को भगवान के श्री मुख के दर्शन तक दुष्वार हो जाते हैं। इतनी प्रत्यक्ष हानियों को देखते हुवे भी हमारे भाई उन पुरूपों को इतनी वुरी दृष्टि से देखते हैं जो जरा सा भी यह कहे की इस प्रकार पूजन करना पाप का अनुचित हैं लोगों को दर्शनों का अन्तराय होता हं और वह आपके लिये भी उसी का कारण हैं परन्तु इस उचित शिक्षा को मानें कौन उनके पीछे तो एक बड़ा भारी चार अक्षरों का ग्रह लगा हुआ है। अस्तु, इस पर हमारे पाठक महाशय ही विचार करें कि यह शास्त्राज्ञा कितने गौरव की है जो किसी प्रकार लोगों के परिणामों में विफलता

नहीं होने देती । ऐसी२ उत्तम बातें भी हमारे भाईयों की बुद्धि में न आवे तो इसे कलियुग के प्रभाव के विना और क्या कह सकते हैं ।

बैठी पूजन

हम अपने पाठकों को कितने विषयों के सम्बन्ध में परिचय करा आये हैं । इस समय विषय यह उपस्थित है कि जिन भगवान् की पूजन किस तरह करनी चाहिये । कितने लोगों का कहना है कि पूजन खड़े होकर करनी चाहिये । महात्मा लोगों की पूजन के समय खड़ा रहना अतिशय विनय गुण का सूचक है । और कितनों का कहना इसके विरुद्ध है । वे कहते हैं कि यह बात न कहीं देखी जाती है और न सुनने में आई कि बड़े पुरुषों की सेवा में खडे होकर ही करनी पड़ती है । किन्तु यह बात अवश्य देखी जाती है । कि जिस समय किसी महापुरुष का आगमन कहीं पर होता है उस समय उनके सत्कार के लिये खड़ा होना पड़ता है । और उनके बैठ जाने पर ही बैठ जाना पड़ता है । यही प्राचीन प्रणाली भी है । उसी अनुसार महर्षि वीरनन्दि प्रणीत चन्द्रप्रभु चरित्र में भी किसी स्थल पर यह वर्णन आया है कि "किसी समय महाराज धरणीध्वज सिंहासन पर विराजे हुवे थे उसी समय एक तपस्वी क्षुल्लक भी वहीं पर किसी कारण से आ निकले महाराज को उसी वक्त उनके सत्कार के लिये सिंहासन पर से उठना पड़ा था:—

3514

अथ स प्रियधर्मनामधेयं परमाणुव्रतपालनप्रसक्तम् ।
यतिचिह्नधरं सभान्तरस्थः सहसा क्षुल्लकमागतं ददर्श ।।
प्रतिपत्तिभिरर्थपूर्विकाभिः स्वयमुत्थाय तमग्रहीत्खगेन्द्रः ।
मतयो न खलूचितज्ञतायां मृगयन्ते महतां परोपदेशम् ।।

अर्थात्— किसी समय सभा में वैठे हुवे महाराज धरणी-ध्वज, अणुव्रत के पालन करने में दत्तचित्त और साधु लोगों के समान चिन्ह को धारण करने वाले प्रिय धर्म नामक क्षुल्लक वर्य्य को आये हुवे देखकर और साथ ही स्वयं उठकर उन्हें सत्कार पूर्वक लाते हुवे। ग्रन्थकार कहते हैं कि यह वात ठीक है कि बुद्धिमान् पुरूप योग्य कार्य के करने के समय किसी के कहने की अपेक्षा नहीं रखते हैं।" इसी तरह जिस समय पूजन में जिन भगवान् का आव्हानन् किया जाता है उस समय अवश्य उठना पड़ता है और पूजन तो वैठकर ही की जाती है।

पूजासार में भी इसी तरह लिखा मिलता है:—

धौतवस्त्रं पवित्रं ब्रह्मसूत्रं सभूषणैः ।
जिनपादार्चनं गन्धमाल्यं धृत्वाऽर्च्यते जिनः ।।
स्थित्वा पद्मासनेनादौ णमोक्कारं च मंगलम् ।
उत्तमं सरणोच्चारं कुर्वत्यर्हत्प्रपूजने ।।
स्वस्त्यनं ततः कृत्वा प्रतिज्ञां तु विधापयेत् ।
जिनयज्ञस्य च ध्यानं परमात्मानमव्ययम् ।।
जिनाह्वानं ततः कुर्यात्कायोत्सर्गेण पूजकः ।

स्थापनं सन्निधिं चैव समंत्रैर्जिनपूजने ॥
पुनः पद्मासनं धृत्वा नाममालां पठेद्बुधः ।
अष्टधा द्रव्यमाश्रित्य भावेन पूजयेज्जिनम् ॥
पठित्वा जिननामानि दद्यात्पुष्पाञ्जलिं खलु ।
जिनानां जयमालायं पूर्णार्घं तु प्रदापयेत् ॥
कायोत्सर्गेण भो धीमान् पठित्वा शान्तिकं ततः ।
क्षमतव्यो जिनान्सर्वान् क्रियते तु विसर्जनम् ॥

अर्थात्— धोया हुवा वस्त्र, पवित्र, ब्रह्मसूत्र, अलंकारादिकों के साथ जिनभगवान् के चरणार्चन के गन्धमाल्य को धारण करके पूजन करना चाहिये। पद्मासन से बैठकर पहले मंगल स्वरूप नमस्कार मंत्र को, और फिर सरण शब्द के उच्चारण पूर्वक अर्थात् "अर्हन्त सरणं पव्जामि" इत्यादि जिन भगवान् की पूजन में पढ़ना चाहिये। इसके बाद स्वस्तिक, जिन पूजन की प्रतिज्ञा, ध्यान, और परमात्मा का चिन्तवन करना चाहिये। फिर कायोत्सर्ग से खड़ा होकर पूजक पुरुष को जिन भगवान् की पूजन में मंत्रपूर्वक आव्हानन, स्थापन, और सन्निधापन करना चाहिये। अनन्तर पद्मासन से बैठकर जिन भगवान् की नाम माला को पढ़े और भक्ति पूर्वक आठ द्रव्यों से पूजन करे। जिन भगवान् की नामावली को पढ़कर पुष्पाजंली देनी चाहिये। इत्यादि क्रियाओं को यथा विधि करके कायोत्सर्ग पूर्वक शान्ति विधान पढ़कर और जिनभगवान् से क्षमा कराकर विसर्जन करना योग्य है।

इसलिये वैठकर पूजन करनी अनुचित नहीं जान पड़ती है। और वही तो वड़े पुरूषों के विनय का अभि सूचक है कि उनके आगमन काल में सत्कार के लिये खड़ा होना। इस वात को कौन वुद्धिमान स्वीकार करेगा कि आये हुये अतिथि के वैठने पर भी सूखे काष्ठ की तरह खड़ा ही रहना योग्य है ? इसे तो विनय नहीं किन्तु एक तरह उन लोगों का अविनय कहना चाहिये। इन वातों के देखने से कहना पड़ता है कि जितनी प्रवृतियें इस समय की जा रही हैं उनमें शास्त्रानुसार वहुत थोड़ी भी दिखाई नहीं देती। महर्षियों के विषय में लोगों की एकदम आस्था उठ गई। उनके वचनों की ओर हमारी आधुनिक प्रवृति नहीं लगती? यह विचार में नहीं आता कि इसका प्रधान कारण क्या है ? कितने लोग महर्षियों को आधुनिक कहने लगे, कितने उन्हें अप्रमाण कहने लगे, कितने यह सव कृति भट्टारकों की है ऐसी उदघोषणा करने लगे अर्थात् यों कहो कि इन [illegible] को अप्रमाण सिद्ध करने में किसी तरह कसर नहीं रक्खी परन्तु इसे महर्षियों के तपोवल का प्रभाव कहना चाहिये जो उनका [illegible] निष्कलंक माना जा रहा है उसका आजतक कोई वाधित नहीं ठहरा सका।

वैठ कर पूजन करने के सम्वन्ध में और भी [illegible] है। उमास्वामी महाराज श्रावकाचार में लिखते है कि:—

पद्मासनसमासीनो नासाग्रे न्यस्तलोचनः।
मौनी वस्त्रावृतास्योऽयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनः॥

अर्थात्— पद्मासन से बैठकर नासिका के अग्रभाग में नयनों को लगाकर और मौन सहित वस्त्र से मुख को ढककर जिन भगवान् की पूजन करे ।

श्री यशस्तिलक में भगवत्सोमदेव भी यों ही लिखते हैं कि:—

> उदङ्‌मुखं स्वयं तिष्टेत्प्राङ्.मुखं स्थापयेज्जिनम् ।
> पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमक्रियः ।।

अर्थात्— यदि जिन भगवान् की पूर्वमुख स्थापित किये हों तो, पूजक पुरुष को उत्तरदिशा की ओर मुख करके पूजन करनी चाहिये । पूजन के समय पूजक के समय मौनी रहने की आज्ञा है ।

श्री वामदेव महर्षि भावसंग्रह में भी इसी तरह लिखते हैं:-

> पुण्णस्स कारणं फुडु पढमं ता होय देवपूजाय ।
> कायव्वा भत्तिए सावयवग्गेण परमाय ।।
> पासुयजलेण ण्हाइय णिव्वसियवछायगंपितं ठाणे ।
> इरियावहं च सोहिय उववसिउ पडिमआसणं ।।

अर्थात्— श्रावकों के लिये सबसे पहला पुण्य का कारण जिन भगवान् की पूजन करना कहा है । इसलिये श्रावकों को भक्ति पूर्वक पूजन करनी चाहिये । वह पूजन के पहले ही पवित्र जल से स्नान करके और वस्त्र को पहन कर पद्मासन से करनी चाहिये ।

इसी तरह पंडित वखतावर मल जी का भी अनुवाद है:-

श्रावगवर्गहि जानि प्रथम सुकारण पुण्य को।
जिनपूजा सुखदानि भक्तियुक्त करियो कह्यौ॥
प्रासुक जल तें न्हाय वस्त्रवेढि मग निरखते।
प्रतिमासन करि जाय बैठि पूज जिन की करहु॥

इत्यादि शास्त्रों के अवलोकन से यह नहीं कहा जा सकता कि वैठकर पूजन करना ठीक नहीं है। और जो लोग वैठकर पूजन करने में अविनय वता कर उमका निषेध करते हैं मेरी समझ के अनुसार वे वैठी पूजन में अविनय वता कर स्वयं अविनय करते हैं ऐसा कहने में किसी तरह की हानि नहीं है। किसी विषय के निषेध अथवा विधान का भार महर्पियों के वचनो पर है कि आचार्यो ने कन्दमूल, मांस, मद्य और मदिरा आदि वस्तुओं का सेवन पाप जनक बतलाया है उसके विधान का आज कोई साहस नहीं कर सकता। फिर यही श्रद्धा अन्य विषय में क्यों नहीं की जाती? वह आचर्यो की आज्ञा नहीं है ऐसा कहने का कोई साहस करेगा क्या? नहिं नहिं। कहने का तात्पर्य यह है कि जव महर्पियों के वचनों में किसी तरह भी असत्कल्पनाओं की संभावना नहीं कही जा सकती तो फिर उन्ही के अनुसार हमें अपनी विगड़ी हुई प्रवृति को सुधारनी चाहिये। यही प्राचीन

मुनियों के उपकार के बदले कृतज्ञता प्रगट करना है। इस विषय की एक कितनी अच्छी श्रुति है उस पर ध्यान देना चाहियेः—

न जहाति पुमान्कृतज्ञतामसुभङ्गेऽपि निसर्गनिर्मलः।

अर्थात्— प्राणों के नाश होने पर भी स्वभाव से पवित्र पुरूष कृतज्ञता को नहीं छोड़ते हैं। इसी उत्तम नीति का प्रत्येक पुरूष को अनुकरण करते रहना चाहिये।

संशय तिमिर प्रदीप

(तेरापंथ मान्यता निराकरण)

ग्रंथ का गुजराती अनुवाद में अनुवादक की बात का हिन्दी अनुवाद

तलोद में संरक्षणी सभा की एक वैठक में १९६५ की साल में सभा ने कीस कीस ग्रन्थ का गुजराती में अनुवाद करने का है इस वावत प्रस्ताव हुआ था। यह ग्रंथ ब्र० कपिल भाई को उदयपुर से प्राप्त हुआ जिस में एक तेरापंथी भाई ने वीसपंथी आम्नायें सभी शास्त्रसंमत हैं। ऐसा सिद्ध करने का प्रयास किया इसलिये उसका अनुवाद सोनगढी प्रचार के सामने ढाल का काम करेगा। यह भाव से अनुवाद करने का था किन्तु कुछ हुआ नहीं।

परन्तु जव ईडर में पू० आचार्य सुमतिसागरजी का चातुर्मास हुआ और उन्होने तेरापंथ के नियमों का अतिआग्रह रखा तब गीगंला के श्री कालुराम ने इधर मुनिसंघों को इस विषय में पत्र लिखे और कई संधारेनो उत्तर भी प्राप्त हुवे तब मेरे मन में और मेरे साथीयों के मन में खलबली मची और क्या करना चाहिये इस वारे में दुविधा सताने लगी। उस समय श्री कपिल भाई ने मुझे "संशयतिमिर प्रदीप" का प्रकाशन करने की वात कही, मुझे भी ठीक लगी समय तो था नहीं, तो भी रात्री जागरण करके पुरा पुस्तक का अनुवाद मैंने कर दिया और आज वह छपकर आपके करकमलों में है।

सन् १९०९ याने वीर निर्वाण २४३५ में यह ग्रन्थ की दुसरी आवृत्ति छपी थी। उसमें से एक नकल श्री प्यारेलाल कोटडिया द्वारा प्राप्त हो गई थी। उसे हम आद्यंत पढ़ ली और ब्र० मूलशंकर देसाई को भी वाचनार्थ दी थी। उसमें विषय को सिद्ध करने में जो शास्त्रसंमत आधार तर्क अनुमान गाथायें दी है वह सब मनन करने योग्य है इसलिये पुरा पुस्तक का अक्षरशः अनुवाद सं २०३२ में छपवाकर जनता समक्ष प्रस्तुत किया था।

यह पुस्तक हिंदी में छपा था किन्तु अब वह मिलता नहीं इसलिये उसका गुजराती अनुवाद करके वितरीत किया है तेरा-पंथी जैन बीसपंथी आम्नाय किसे क्या कहता है और क्यों ऐसा कहता है वह यदि यह पुस्तक न प्रगट करते तो समाज को सत्य की जानकारी कैसे होती ?

अभी भारत देश में दिगम्बर संप्रदाय में बीसपंथ और तेरा-पंथ चलता है। कोई किसी को अडचन रूप नहीं है। तीर्थ क्षेत्रों में भी सभी अपनी अपनी मान्यतानुसार पूजा प्रक्षाल करते हैं फलतः सर्वत्र शांति है क्योंकि सभी जन जानते हैं कि अतिरेक के लिये कुछ लगाम जैसा जरूरी है। किन्तु जहां अतिरेक नहीं है और विवेक से कार्य चलता है वहां किसी प्रकार का आग्रह बीन जरूरी है किन्तु ईडर में आग्रह और अतिआग्रह होने लगा और प्राचीन आचार्यों के कथन पर झुठे प्रचार होने लगा तब उसका रक्षण करने हेतु यह जटमेन उठानो पडो है इसलिये किसी भाई के मन में बुरा नहीं मानना चाहिये। पू० आचार्य के प्रति हमारी पूर्ण

श्रद्धा और भक्ति है उस में कुछ फर्क पडने वाला नहीं है। वे हमारे लिये पूज्य है और रहेंगे। श्रावक लोग स्वपद के अनुरूप आर्स-मार्ग को विवेक पूर्वक चलाये इसमें इनकी शोभा है और उसमें कुछ विपरीतता आ जाय या अतिरेक के पगलां भरने से श्रावक धर्म में विचलिता आ जायगी ऐसी मेरी निजी मान्यता है।

पू० आचार्य सुमतिसागर महाराज ने सं० २०३१ के भाद्र-पद में खेरवाडा के मयूर प्रेस से 'आर्स मार्ग मार्तण्ड' नामक पुस्तक छपाकर प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर ईडर दि० जैन महिला मंडल का नाम प्रकाशक में छपा है किन्तु मंडल में इस विषय में कोई प्रस्ताव हुआ नहीं है क्योंकि इस महिला मंडल में ज्यादातर सभ्य वीसपंथी आम्नाय की श्रद्धा वाले हैं इसलिये एसा मंडल के नाम से तेरापंथ का प्रचार करना मेरे अभिप्राया-नुसार योग्य नहीं है। गुरू की आम्नायार्थ कर्त्तव्य जानकार सभी ने मौन सवेन किया है किन्तु जो, जिस रीत से हुआ है या किया है वह सुयोग्य नहीं है ऐसी मेरी मान्यता है। इस लेखन से कई भाईयों को और आचार्य श्री और संघ को बुरा लगेगा किन्तु सत्य हरदम अप्रसन्नज रहेगा। आर्समार्ग का और आरातिन प्राचीन आचार्यों के अभिप्राय (मन) का सही प्रचार करना रक्षा करना सभी धार्मिक श्रावकगण का नैतिक फर्ज है वह मैं निभाता हूं इसका मुझे हर्ष और समाधान है।

ईडर
माघ सु.५, २०३२

जिनवाणी सेवक
ब्र० रमणलाल मगनलाल लाकडिया

तेरापंथ के भीतर में

शुभ किस्मत से गुजरात में तेरापंथ का नाम निशान नहीं हैं और न था। सोनगढ द्वारा उसका प्रचार हुआ शुद्ध आम्नाय के नाम पर। सोनगढ ने तेरापंथी मान्यता वालों को स्वपक्ष में ले जाने के लिये यह आम्नाय का शरण स्वीकार कर लिया परिणाम स्वरूप इस फंदे में सौ प्रथम सर सेठ हुकमचंद जी साहब ही फंस गये और वे सोनगढ के मठाधिश पर ऐसे प्रसन्न हो गये कि उन्होने उनकी आरती भी की थी ऐसा सुना है। परिणाम स्वरूप आज सब देखते हैं कि सोनगढ कितना मदोन्नत हो के अपनी बांग पुकारता है। पुण्य की पालखी है इसलिये आज वह उड्डन-खटोला का कार्य कर रहा है किन्तु जब पुण्य खत्म होगा तब उस पक्ष का थका हुआ घोडा गाडी के घोडे जैसी दशा होगी ऐसी लोक वायका है देखें समय क्या कैसे करता है।

यह तेरापंथ सिवाय गुजरात सर्वत्र है किन्तु वह वत्ता ओछा प्रमाण है। इसके तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम ऐसे तीन प्रकार हैं। मैं भारत भर में सभी तीर्थक्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रों पर दर्शनार्थ जाता हूं और पूजा प्रक्षाल करता हूं इसलिये मुझे तेरापंथ आम्नायके रीत रसमों की नियमों की पूर्ण जानकारी और अनुभव है। इस तेरापंथ के कितनेक नियमन और आग्रह अच्छे भी हैं। और सभी के लिये आदरणीय और आचरणीय भी है किन्तु कई

नियमों में अतिरेक की पराकाष्ठा है और सभी को जन्मगत संस्कारवश अमल में लिये जाते है इसमें लकिर के फकीर जैसा लगता है। विवेक शून्यता महसुस होती है। दृष्टान्त के तौर पर थाली में पित्तल के एक या वधु विंव रखना, जो सज्जन आयेगा वह उन पर जल डालेगा और उस थाली में जो कपडा पड़ा है उससे विंव को लूछना। फिर वही गिला कपड़ा (अंग लूछना) दो तीन या ज्यादा घंटे के लिये वहां रखना और वाद में वही गंधोदक में ही पखार करके सूकाना, फिर दूसरे दिन भी यही रीत रश्म। इसमें कोई नया, साफ, गीला न हो एसा अंगलूछना का कोई वपराक्ष होता ही नहीं है। मूर्ति गीली और गीली ही रहती है। अलग, स्वच्छ, साफ, नया जल से कपड़े धोनेका नहीं? मूर्ति की चिवुक के पास या भगवान के दोनों हाथों के बीच में छोटा सा कपड़े का टुकड़ा को रखकर अभिषेक किया जाता है फलतः मूर्तियों के नीचे जल रहता है, सन्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति और नाश ही होता है और मूर्तियाँ कालो हो जाती है, तेज का नाम निशान नहीं, दर्शन से आनंन्द उल्लास उभरे ऐसी स्थिति प्राप्त होती ही नहीं है। अजमेर में सोनियाजी के नसियाँ में दुसरी या ज्यादा प्रतिमाधारी को ही अभिषेक करने की इजाजत है। यह नियम आज के भौतिक युग में कैसे चलेगा यह एक प्रश्न है ? रांची में कुए के जल से नान करने वाला भक्त ही श्री जी का अभिषेक कर सकता है ! गीला कपडे से ही प्रक्षाल का कपड़ा लेकर ही अभिषेक कर सकते हैं ऐसा भी कहां कहां रिवाज है। अच्छा नियम हैं क्योंकि इससे शुद्धि ज्यादा निभती है।

यह पंथ आचार्य कल्प श्री टोडरमल के समय में शुरु हुआ ऐसा कथन है। टोडरमल का लड़का श्री गुमानराये इस पथ निर्माण में खास रस लिया था इसलिये इसको गुमानपंथ भी कहा जाता है। आगरा आदि शहरों में बीसपंथी क्रियाओं का अतिरेक देखकर तेरा वालों का प्रचार करने वाला यह पंथ का उद्भव हुआ है तो भी उसे मूल पथ कहकर और वही ही सच्चा और बाकी के सब झूठे ऐसा दावा करना अत्यन्त असत्य है तो भी इस अतिरेक प्रधान कथन का आग्रह रखने के कारण कई मंदिरों में क्लेश मय टंटे हुए, पार्टिये बन पडी और न्यायालयों के द्वार खटखटाये गये। यदि सब कुछ विवेक युक्त किया जाय तो किसी में कुछ बुरा नहीं है। जहां विवेक को तिलांजली दी जाती है वहां अनिच्छता प्रवेशती है।

जयपुर के पं० हुकमचंद जी भारिल्ल ने श्री टोडरमलजी के बारे में एक शोध ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इसमें यह तेरापंथ की उत्पत्ति के बारे में अच्छा प्रकाश डाला है। उसमें तेरापंथ के कई आग्रह क्यों अच्छे है इसकी स्पष्टता भी की गई है चर्चा सागर और ऐसे कई ग्रन्थों मे इस पथ की उत्पति के विषय में कवित दोहे आदि मिलते हैं उस पर ने यह पंथ का उत्पति काल और उत्पन्न होने के कारण स्पष्ट प्रगट हुआ है कि बीसपंथी क्रियाओं में अतिरेक होने के कारण उसके सामने यह एक प्रतिकार रूप पथ खड़ा कर दिया गया है और वह आज भी कई जगह चल रहा है। अच्छी बात है कि आज भी सभी तेरापंथी

श्रावकगण अनेक विषयों में आर्ष मार्ग का अनुसरण करते हुए दिगंबरत्व को पूर्ण रक्षा करने की कोशिश करते हैं। यदि दोनों पक्ष वाले तनिक तनिक स्थिलता मन में और क्रियाओं में अपना ले तो आज भी पुनः बीस तेरा का एकत्व और संगठन शक्य है। यह कार्य से दिगंबर धर्म की महती प्रभावना हो सकती है। इस बारे में पक्षो के कर्णधार सक्रिय बने ऐसी अभिलाषा है।

हिमतनगर
२१-२-७६

ब्र० कपिल कोटडिया

———

गुजराती अनुवाद के जन्म की कथा

संवत २०२१ में इडर में पू० आचार्य सुमति सागर जी का चातुर्मास हुआ तब उन्होने तेरापंथी क्रियाओं का आग्रह प्रकट किया और प्रचार भी खूब किया तथा कई सज्जनों को व्यक्तिगत बुलवा कर फूल केशर मूर्ति पर न चढ़ाने की प्रतिज्ञाए दिलवाई तब जो क्षोभ उत्पन हुआ और इस प्रयास के कारण उसके दुरगामी परिणामों पर विचार करते करते गुजरात में चल रही बीसपंथी आम्नाय की प्रणालिका सही है, गलत नहीं

है और शास्त्रसंमत भी है। ऐसा करने का और ठसाने का प्रसंग उपस्थित हुआ। तब श्री रमणभाई लाकडिया की सहायता से "संशयतिमिर प्रदीप" नामक ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद करवाकर संरक्षणी सभा ने प्रकाशित किया।

ग्रन्थ का नाम है "संशयतिमिर प्रदीप" माने शका नामक अंधकार दूर करने के लिये दीपक दिया हस्त में होता हुआ कोई गड्ढ में पडेगा तो उसे जनता मूर्ख कहेगी। इसी तरह शास्त्रों के सैंकडे आधार प्रमाण होने छते स्वमतज सच्चा है ऐसा हठाग्रह सवेना रखना एक अनुचित कार्य है। सुज्ञ सज्जनों ने ऐसा कदाग्र्र को छोडना चाहिये। बीसपंथ और तेरापंथ एसे दो पंथ है दोनों के अनुयायी देश भर में हैं किन्तु दोनो पथों की पूर्ण श्रद्धा सच्चे देव, गुरू और शास्त्रों पर है वह एक आनंद की बात है। पूज-नादि विधि में जो मतभेद हैं वह भी साथ बंठ के कम करने की शक्यता भी है। किन्तु इसमें नम्रता कदाग्रह के छोडने की बात में कौन शुरूआत करे वह प्रश्न है।

तेरापंथ की उत्पति विशे एक कवित निम्न दिया है

प्रथम चल्यो मत आगरे श्रावक मिले कितेक।
सोलह सै तीयासिये गही कितुक मिलि टेक॥
काहू पण्डित पै सुनैं किते अध्यातम ग्रन्थ।
श्रावक किरिया छांड़ि कै चलन लगे मुनि पन्थ

फिर कामा में चलि परयौ ताही के अनुसारि।
रीति सनातन छांडिकै नई गही अघकारि।।
किते महाजन आगरे जात कारण व्योपार।
बनी आये अध्यातमो लखि नूतन आचार।।

इस कवित से साबित होता है कि तेरापंथ की शुरूआत आगरा में बनारसदास में हुई थी और बाद में सांगानेर जयपुर में गुमानी राम ने गुमान पंथ के नाम से उसका प्रचार किया था

तेरा प्रकार का चारित्रपालक तेरापथी और बीस प्रकार के नियमों का पालन करने वाला बीसपंथी ऐसी व्याख्यायें शब्द खेल है। शास्त्रों में ऐसे कोई शब्दों का उल्लेख नहीं है तो भी वास्तव में तेरा बीस ऐसे दो पंथ समग्र भारत में है और जग प्रसिद्ध है और दोनों में प्रक्षाल पूजा में भिन्न भिन्न विचार सरणी के कारण भेद हैं- भिन्नता है और मतभेद भी हैं। इसका अब विस्तार की वृद्धि होती नहीं है यह एक शुभमिलन है। विस्तार होने की शक्यता भी नहीं है क्योंकि बीसपथी सभी क्रियाओं का शास्त्रीय समर्थन बहुत मिल रहा है तब तेरापंथ के पास ऐसा कोई शास्त्राधार या आचार्य मत का सहारा नहीं है। एक मात्र "सूर्यप्रकाश" नामक शास्त्र है जिसके कर्ता जो मुनिराज वे भी अन्तिम क्षणों में स्वयं भ्रष्ट हो गये थे या श्रावकों ने भक्तिवश अज्ञानतावश भ्रष्ट कर दिया था। वह पुरा ग्रन्थ उन्होने स्वयं लिखा या कोई विद्वान ने कलम चलाकर मुनिराज का नाम का उपयोग किया वह भगवान के अलावा

कोई कह नहीं सकता ! इस शास्त्र के आधार पर और कई छोटे वडे पुस्तके प्रकाशित हुआ है किन्तु वे सभी एक प्रकार के के हैं कुछ नवीनता या शास्त्राधार उनमें नहीं है इसलिये वे सभी श्रद्धा के पात्र नहीं है। चर्चासागर में चर्चा न० १६८ में अनेक प्रशनोत्तर द्वारा इस बावत चर्चा की गई है जो जिज्ञासु जनों के लिये पठनीय है। विस्तारमयान वे सव यहां दिया नहीं हैं।

भावी तीर्थंकर और समर्थ आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी का "सावद्य लेशो बुहुपुण्यराशी" वाक्य अत्यन्त निंद्य पाप का दिशा सूचक है। पूजनादि में जो आरंभजनित पाप होता है वह समुद्र में पडी हुई विपकणिका समान है,और वह अनिवार्य भी है क्योंकि जैसे पुष्प गये विना फल मिलता नहीं ऐसे अल्प भी आरंभजन्य पाप क्रिया किये विना बहुत पुण्यराशी की प्राप्ति असंभव है इसलिये विना इच्छा ही वह कर्त्तव्य है। "संशय-तिमिरप्रदीप" ग्रन्थ में जिनचरण स्पर्शित पुष्पमाला कंठ में पहनने की बात और गन्ध का तिलक करने की बात और चरणादि का वहुत स्पष्ट कर दिया है और अनेक प्रमाणों से चरणों पर गंध लगाने का सिद्ध किया है। गंधविलेपन विना प्रतिमा भी दर्शनीय भी नहीं है ऐसा प्रमाण भी दिया है। सभी त्यागीगण भक्ति पाठ करते हैं उसमें चैत्यभक्ति में पुष्पपूजा की बात आती है। इस तरह अनेक प्रमाणों से बीसपंथी क्रियायें शास्त्रसंम्मत आर्ष मार्ग प्रणित है ऐसा निःशंक सिद्ध किया है। इसलिये सभी श्रावकगण पूज्य जिनवाणी पर श्रद्धा रखके आचरण करे करावे

ऐसी प्रार्थना है। स्वमति बुद्धि के बल पर स्वमतही सत्य है ऐसा कदाग्रहो पकड उपकारी नहीं है। जितने प्राचीन आचार्य हुए वे सभी महाव्रती, निग्रन्थ, निस्प्रही, ज्ञानी और सत्यव्रतधारी थे इसलिये इन सभी में पूर्ण विश्वास करना स्वहित की बात है अपेक्षा का आरोप भी लगाया जाता है किन्तु वह बुद्धिगम्य नहीं है। अनेक गाथायें कई जगह होगी इससे जितने भी अभिषेक विषयक शास्त्र हैं या अभिषेक विषयक गाथायें हैं वे सभी क्षेपक है या काष्टासंघी है ऐसा आरोप एक प्रकार का अतिरेक का बहुत बुरा दृष्टान्त होगा और अयोग्य भी है क्योंकि तेरापंथी पंडितों के कथनानुसार यह पंथ तीन सौ चार सौ वर्षों से शुरू हुआ है तो भी पुष्प, नैवेद्य, दीप, और सचित्त फलादि विना कोई पूजापाठ क्यों प्राप्त नहीं होता है? पर पुस्तकों में अनेक पूजापाठ की लंबी यादी छपी वह पुरी आप देख लिजिये जिस में कहीं भी गिरी आदि का उल्लेख नहीं है। कई पूजा रचयिता तो स्वयं तेरापंथी थे तो भी उन्होंने चमेली, केतकी, केला आम्र, फल आदि का उपयोग करने का क्यों कहा है यह विचारणी है "दिव्य" शब्द विशेषण है इसका अर्थ स्वर्ग पुष्प के कल्प वृक्ष के पुष्प एसा करने का नहीं है। पुष्प एकेन्द्रीय है और जल भी एकेन्द्रीय तो कोई जल का भी निषेध क्यों न करे ? आज ऐसे निषेध करने वाले छोटे ट्रेक्ट भी प्रगट हो गये हैं श्रावक ने संकल्पो हिंसा का त्याग किया है इधर तीन प्रकार की हिंसा का वह त्याग नहीं हो सकता। पूजनादि में आरंभी

हिंसा अल्प होती है इसको पुण्योत्पादक कहा है इसलिये साव-धानी पूर्वक की हुई सभी बीसपंथी क्रियायें पापजनित नहीं है ऐसा मानना चाहिये यही शास्त्रों का फरमान है। भट्टारकों की उत्पत्ति के पहले भी कई ग्रन्थों में पञ्चामृताभिषेक का समर्थन प्राप्त होते है। इसलिये यह सब भट्टारकों ने या काष्टासंघी यति समुदाय ने प्रचलित किया ऐसा कहना यथार्थ नहीं है। काष्टका अर्थ दिशा भी होता है। लकड़ी की प्रतिमाओं के साथ उस संघ का संबंध बताना यह भी बुद्धिगम्य नहीं है क्योंकि समग्र विश्व के कोई भी संग्रहालय में कोई भी जगह कोई काष्ट की साबत या खंडित प्रतिमा नहीं मिलती नहीं है या देखने में नहीं आई इसलिये यह एक कपोल कल्पित बात खडी करदी गई है ऐसा स्पष्ट होता है। केशरादि प्रतिमा के अंगुष्ठ पर लगाये जाते हैं इससे वीतरागता जो भीतरी गुण है और वह अस्थिर या चंचल भी नहीं है और रहता है मुखादि में तो वह कैसे नष्ट हो जायगा? इसलिये केशरयुक्त प्रतिमा के दर्शन में बाधा मानने का प्रश्न निरर्थक ही उत्पन्न किया दिखता है क्योंकि प्रतिमा तो हर रोज और हरदम वीतरागी, दर्शनीय वंदनीय पूज्य होती ही है।

मुनि श्री के सिर पर पगडी रखना पाप है और गृहस्थ बिना पगडी का अशोभनीय है। पगडी या कोई वस्त्र न होना वह आदर्श है किन्तु वह सभी जगह लागु नहीं होता। श्रावक को अपने पद के अनुकुल वेशभुषा रखनी ही पड़ेगी। इसलिये

श्रावक सावद्य के भयवशात् पूजन के कार्यों में सामग्री में कटोति करेगा तो फिर वहां मात्र भावपूजा ही रह जायगी तो फिर लोभकपाय काटने का कार्य और भक्ति का अच्छा अवलंबन रूप साधन कैसे टिकेगा ? अतः गृहस्थ स्वपद के अनुकुल क्रियायें विवेक पूर्वक करेगा तो उसमें न दोप है न पाप है किन्तु पुण्य प्राप्ति अवश्य होगी ही ऐसा मानके वीसपंथ आम्नाय में कथित सभी क्रियायें आचरणीय हैं करनीय है और सभी श्रावकगण अवश्य करें। उसमें इनका हित और लाभ है ऐसा कहना न्याय-संगत है ।

वयोवृद्ध पं० मखनलाल शास्त्री रचित "आगम मार्ग प्रकाशक" नामक ग्रन्थ में पृष्ठ १५६ से १६७ इस विपय में प्रमाणभूत प्रकाश डाला गया है अतः पठनीय है और श्रद्धा योग्य है "विद्वत्जन बोधक" नामक तेरापंथ का एक ग्रन्थ है इसमें वह पंथ की क्रियायें को सही ठहराने का भरसक प्रयत्न बहुत अधिक किया है और उसमें कई शब्दों का और अर्थो का सामान्यतः जो विपरीत अर्थघटन किया है वह स्पष्ट प्रतीत होता है इसलिये उसे सावधानी से मनन करना अहित मिथ्या एकांत का ग्रहण हो जायगा। आचार्य श्री महावीर कीर्ति और आचार्य श्री विमलसागरजी जन्मतः तेरापंथी होते हुए शास्त्रों के आधार से वीसपंथी आम्नाय के श्रद्धालु हो गये हैं ऐसे सभी पूजकों ने भी आगम को शिरोधार्य मान कर के अपना कर्त्तव्य करना चाहिये ।

इसमें जितना लिखना हो इतना लिखने की क्षमता और सामग्री है किन्तु विस्तार को भी मर्यादा देनी आवश्यक है इस न्यायानुसार यहां अब कुछ अधिक लिखना नहीं है। मात्र एक प्रार्थना है कि पुराने महाव्रती आचार्य के कथन पर विश्वास रखकर अपना मार्ग प्रशस्त करने में स्वहित है और उसमें ही कर्त्तव्य की समाप्ति समझना हितकारी है।

———————
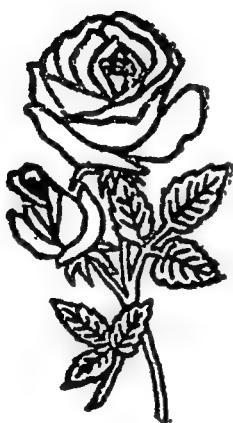
क्या पंचामृताभिषेक आर्षोक्त मार्ग नहीं है?

(लेखक श्री पंडित वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री न्यायतीर्थ)

[ध्यान से पढने योग्य]

जैनकुल में उत्पन्न गृहस्थ के लिये संपूर्ण आवश्यक क्रिया-ओं में देवपूजा करना आद्यकर्त्तव्य है। उसके विना शेष संपूर्ण क्रियायें व्यर्थ है यह कहा जाय तो अनुचित न होगा, या यों कहिये कि गृहस्थ को परम्परा से मोक्षप्राप्ति के लिये यह अर्हत्पूजा साधनभूत हैं।

संसारपरिभ्रमण करने वाले प्राणियों को दैवदुर्विपाक से उत्तम कार्यों को करने की योग्यता बहुत कठिनता से प्राप्त होती है। वैसे तो मनुष्य जन्म पाना ही दुर्लभ है येन केन प्रकारेण वह प्राप्त भी हुआ तो उसमें उत्तम शरीर, आयु, आरोग्य, चिंताराहित्य आदि मिलना तो और भी कठिन है। उन सबसे अधिक कठिन उत्तम कुल में जन्म लेने में है जिसे सज्जातित्व कहते हैं। यहीं पर आकर संपूर्ण शुभ क्रियायों को करने की पात्रता (योग्यता) प्राप्त हो जाती हैं। बाह्य साधन के ठीक होने पर अंतरंग शुद्धि के लिये अवसर मिल जाता है। जिनको यह सज्जातित्व प्राप्त हुआ उनको अपने को जन्मतः धन्य समझना चाहिये। यदि उस प्राप्त रत्न की सदुपयोगिता की गई तो उसके लिये मोक्षलक्ष्मी सन्निकट है; इसमें कोई संदेह नहीं है।

इसलिये ऐसे कुलीन श्रावकों को कल्याण मार्ग के उपदेश देते हुए सबसे प्रथम देव पूजा को स्थान दिया है। देव पूजा की विधि देव पूजा का फल व उससे उत्पन्न होने वाले लौकिक वा पार लौकिक विशुद्धि आदि के विषय में एवं उसकी प्राचीन पद्धति व आधुनिक पद्धति पर तुलनात्मक विचार हम किसी अन्य स्वतन्त्र लेख में करेंगे। क्योंकि हमारे इस लेख का लक्ष्य वह नहीं है। यहां पर केवल अर्हत्पूजा के मुख्य अंग अभिषेक विषय पर विचार किया जावेगा।

अभिषेक एक पूजा का मुख्य अंग है इस विषय पर किसी को विवाद नहीं हो सकता। पूजन हो चाहे अभिषेक, यह सर्व भाव शुद्धि की वाछां से किये जाते हैं। जिन कार्यों को करने से सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो हमारी भक्ति व श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़े वह कार्य गृहस्थ को करना चाहिये। यही उद्देश अभिषेक में भी है। सामान्य पूजन की अपेक्षा अभिषेक पूजन में भक्ति व भावशुद्धि की प्रकर्षता पाई जाती है इसलिये महर्षियों ने इस अभिषेक पूजन को विशेष महत्व देकर गृहस्थ को इसके द्वारा कर्त्तव्य पालने की आज्ञा दी है। अभिषेक के महत्व व उसकी उपयोगिता स्पष्ट है उस विषय पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर श्री पूज्य सोमदेव सूरि के अभिप्राय मनन करने योग्य है।

श्रीकेतनं वाग्वनितानिवासं
पुण्यार्जन क्षेत्रमुपासकानाम्

स्वर्गापवर्ग गमनैकहेतुम्
जिनाभिषेकं श्रयमाश्रयामि ॥

इसलिये जब कि हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषि महर्षि भी अभिषेक विधान के महत्व को मुक्तकंठ से अंगीकार करते हैं फिर इस विषय को कौन अभागा स्वीकार नहीं कर सकता है। वस्तुतः इसमें किसी को विवाद नहीं हो सकता है। अभिषेक पाठों में अभिषेक विधानों में आचार्यों ने पंचामृताभिषेक को अधिक महत्व दिया है। हमारी दि० जैन समाज में बहु भाग श्रावक इस पंचामृताभिषेक को करके अपने को धन्य मानते हैं। विशिष्ट क्रिया के द्वारा विशिष्ट भक्ति की उत्पत्ति एवं तज्जनित तुष्टि होना स्वभाविक है। परन्तु कुछ विभाग दि० जैन सम्प्रदाय का इस क्रिया को पाप के कारण ऐसा समझकर इससे घोर घृणा प्रकट करता है। जो विधि शास्त्र की आज्ञा से युक्त है, आचार्य परम्परा जिस बात को स्वीकार करती है वह एक जिनागम श्रद्धानी के लिये आपत्तिजनक नहीं हो सकती है। क्योंकि हम आज्ञा —प्रमाणवादी हैं। बहुत से लोग इस क्रिया से अधिक आरम्भ होता है ऐसा कहकर इसको निषेध करते हैं। कोई तो इसे आम्नाय विरुद्ध बनाकर इससे बच जाते हैं। कोई कुछ कोई कुछ कहकर अपना बचाव करते हैं। परन्तु विवेकी पुरुषों का यह कर्त्तव्य नहीं है। उन्हें चाहिये कि प्रत्येक विषय को गंभीर दृष्टि से विचार करना चाहिये। जिन बातों पर विचार करने पर युक्त्यागमाविरुद्धता पाई जाती है उस पर आनाकानी करना

हठग्राहिता के विना और कुछ नहीं हो सकता। साथ में आचार्य वचनों की अवहेलना करने के कारण घोर मिथ्यात्व के कारण है। बहुत से लोग उस विषय पर अनभिज्ञ होने के कारण कुछ लोगों के कहे अनुसार उनके पीछे २ चलते हैं। ऐसे लोग दया के पात्र है। और कोई २ पंडित अपने स्वार्थ साधन के निमित्त विषय से परिचित होते हुए भी किसी श्रीमान् को खुश करने के निमित्त अन्यथा ही प्रतिपादन करते हैं ऐसे लोग घोर पापी हैं। इसलिये उन सब महाशयों से मेरा सादर निवेदन है कि शास्त्र की आज्ञा जो है उस विषय को आप मनन कर शिरोधार्य करें। यदि आप शांति से विचार करेंगे, तो अवश्य आपको इसकी उपादेयता समझ में आवेगी। यदि आप इससे सहमत न भी हों तो कृपया मुझ पर क्रुद्ध न हो और न उन पूज्य ऋषि महर्षियों को अप्रमाण कोटि में सिद्ध करने की कुचेष्टा करें। क्योंकि जिनाज्ञा को पालन न करने की क्रिया के साथ यह भी पाप का कारण होगा।

इस समय प्रत्येक संप्रदाय सत्य की खोज में लगा हुआ है। ऐसी अवस्था में जैन समाज के भी विवेकी पाठकों से हम यह आशा किए विना नहीं रह सकते कि वे अपनी हठग्राहिता को छोड़कर सत्य सिद्धान्त को मानने के लिऐ तैयार हों। प्रत्येक मानव का यह ध्येय होना चाहिये कि "जो सत्य है वह हमारा आदर्श है" इसलिये निस्पक्ष हृदय वालों को सत्य सिद्धान्त को स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिये। जो भाई आरम्भ

होता है इस कारण इस पंचामृताभिषेक का निषेध करते हैं उनसे हमारा निवेदन है कि क्या श्रावक के अन्य क्रियाओं में आरम्भ नहीं होता है ? तो फिर उनको आप निषेध क्यों नहीं करते हैं। पूजा करने से भी तो आरम्भ होता है फिर अच्छा है, केवल दर्शन करके ही संतुष्ट हो जाय फिर हम पूछते है कि दर्शन करने में भी आरम्भ होता है इसलिए यह बहतर है कि घर में ही बैठकर जाप दे देवें। इस प्रकार विचार करने से क्या फल निकलता हैं, आप स्वयं विचार करें। इस प्रकार आरम्भ के भय से जो शास्त्रविहित क्रियाओं को छोडने का आग्रह करते हैं उन विकृतमस्तिकवालों को जान बूझकर मौका देते हैं जो सबको आर्य-समाजी बनाना चाहते हैं। फिर ये मन्दिर मूर्ति वगैरह किसी को आवश्यकता नहीं होगी। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि आरम्भ के भय बताकर जो जिनाज्ञा के उल्लंघन करने के आदेश को करते हैं वे जिनाज्ञालोपी होने के अलावा घोर पाप बंध करते है, इस विषय में श्री योगींद्रदेव के निम्न लिखित शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

आरंभे जिण एहा वियए सावज्जं भणंति दंसणं तेण।
जिमईमलियो इच्छुण कांइओ भंति।

इसलिये आरंभ होने के भय को बताकर जिनाभिषेकादि का निषेध करना जिनमार्ग को निषेधना है। और इसके अलावा गृहस्थ ऐसे आरंभ के त्यागी भी नहीं हुआ करते हैं। और दूसरी बात गृहस्थ को जिन कार्यों के करने में पाप तो कम लगता

हो और पुण्यबंध अधिक होता हो ऐसी क्रियाओं को करना चाहिये। दृष्टांत के लिये मन्दिर बनवाने में अनेक प्रकार का आरम्भ होता है। तथा अनेक प्राणियों की हिंसा होती है क्या इसका तात्पर्य है कि मंदिर बनवाना नहीं चाहिये। कदापि नहीं! कारण कि जिस मन्दिर को बनवाने में उतना आरम्भ होता है उसी से असंख्य प्राणियों का कल्याण होता है। इसलिये सावद्य-लेश होने से पुण्यराशि अधिक होने से दोष के लिये नहीं है। इस विषय में भगवान् समन्तभद्र के निम्न लिखित श्लोक बडा ही महत्व का है।

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवांबुराशौ॥

हे भगवन्— आपकी पूजा करने में जो आरंभ होता है वह बहुत ही अल्प है। अर्थात् उससे पापास्रव अति मंदरूप से होत कारण कि आपकी चरणभक्ति से उत्पन्न जो पुण्यराशि रूप जल है वह अगाध है जिस प्रकार शीतल जल से भरा समुद्र को विष की कणिका दूषित नहीं कर सकती है इसी प्रकार पूजनादि कार्यों में उत्पन्न भक्ति से जो सातिशय पुण्योपार्जन होता है उससे तज्जनित आरम्भपाप जरा भी दूषित नहीं कर सकता है इसलिये इस विषय में आरम्भविषयक भय बतलाना विवेकशून्यता को स्पष्ट करता है।

बहुत से लोग अपनी हठग्राहिता से इस पंचामृताभिषेक विधान को काष्ठा संघ के आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित कह कर निषेध करते हैं। उनमें से बहुत कम अर्थात् इने गिने व्यक्ति ऐसे होंगे जो इस काष्टासंघ और मूलसंघ के उत्पत्ति भेद इत्यादि को जानते हैं। बहुत से महाशय ऐसे पंचामृत सरीखे विषय जो उन की बुद्धि में समझ में नहीं आता हो, जिस शास्त्र में वर्णित हो झट कह देते हैं कि यह काष्टासंघ का है, भट्टारक प्रणीत है। उनकी अकल कम हो तो दूसरा इलाज ही नहीं है। हम यहां पर यह परीक्षा करने के लिये नहीं बैठे हैं कि कौन सा संघ प्रमाण है, कौन सा अप्रमाण है क्योंकि अभी अवसर नहीं है। परन्तु ऐसे अविवेकियों की बात पर कुछ धर्मात्मा भाई भी अविचारपूर्ण प्रवृति करते हैं जहां मूल संघ के भी उसे अन्यथा रूप बताकर प्रवृति करना यह श्रुतका अवर्णवाद है। ऐसे लोगों के लिये दर्शनमोहनीय कावध होता है। जो लोग ऋषिप्रणीत मार्ग को कतई उठा देने की धुन में हैं उन कूडापंथियों के लिये यह हमारा प्रयास नहीं है क्योंकि वे न तो काष्टासंघ को प्रमाण मानते हैं और न मूल सघ को। उनकी दृष्टि में यह सब शास्त्र ग्रन्थ स्कूली किताबें हैं। वे चाहते हैं कि यदि क्रम से इन आगमों को हम अप्रमाण ठहरा दें तो फिर हमारी मतलब की बात रह जायगी। ऐसे लोगों के लिये दूर तो नमस्कार है। परन्तु जो अपनी ऋषि परम्परा के आम्नाय को प्रमाण स्वीकार करते हैं, अपितु ऐसे कुछ विषयों को व्यवहार नीति को देखकर अपनी अजानकारी

से अन्यथा समझ बैठे हैं उनको इस विषय पर निस्पक्ष विचार करना चाहिये। आम्नाय के दुरभिमान को एक तरफ रखकर निस्पक्ष बुद्धि से आगम की आज्ञा पर विचार करना चाहिये। हम प्रकृत विषय पर मूलसंघाम्नायी ग्रन्थों से ही विचार करना चाहिये। फिर भी यदि वही टांय टांय रही तो उसका इलाज नहीं है।

सोमदेव सूरि विरचित यशस्तिलक चंपू

सोमदेवाचार्य मूलसंघ के प्रसिद्ध हैं इसमें कोई विवाद ही नहीं मूलसंघ जो संघ भेद हुए थे वह चार संघ प्रमाण कोटि में ग्रहण करने योग्य हैं। उन में से एक देव संघ भी है। इन्द्रनन्दि कृत नीतिसार में इन चार संघों का उल्लेख किया है एवं यह भी बताया है इन संघों के आचार विचार व सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है। इसलिये यह मूलसंघ के ही भेद हैं।

देखो:—

तदैव यतिराजोऽपि सर्वनैमित्तिकाग्रणीः।
अर्हद्‌वलिगुरुश्चक्रे संघसंघट्टन परम ॥ ६ ॥
सिंहसंघो नन्दिसंघः सेनसंघो महाप्रभः।
देवसंघ इति स्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥ ७ ॥
गणगच्छादयस्तेभ्यो जाताः स्वपरसौख्यदाः।
न तत्र भेदः कोप्यस्ति प्रव्रज्यदिषु कर्मसु ॥ ८ ॥

इसलिये यह बात स्पष्ट होती है कि देवसंघ मूलसंघ का ही एक भेद है। जिस प्रकार हमें मूलसंघ हमें आदरणीय है उसी प्रकार देवसंघ भी आदरणीय है। इसलिये सोमदेव देवसंघ के आचार्य थे। यह मालूम होता है। साथ में इन्द्रनन्दीकृत श्रुतावतार के आधार से उन संघो के ऋषियों की परम्परा व चिन्ह हमें मालुम होते हैं। उससे यह जान सकते हैं कि देवसंघ के आचार्यों के अन्त में देवपद रहता है। यह ऋषि परम्परा की पद्धति है। देखो—

प्रथितादशोकवाटात्समागता ये यतीश्वरास्तेषु ।
कांश्चिदपराजिताख्यान्कांश्चिद्देवाह्यानकरोत् ॥

इससे यह जानने में विलम्ब नहीं होगा कि सोमदेव देवसंघ एक उद्भट आचाय थे। सोमदेव के दादा गुरु थे। और गुरु नेमिदेव थे। और उनका स्वयं क नाम सोमदेव था। और स्वयं सोमदेव ने यशोदेव को देवसंघ के तिलक ऐसा स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे भी मालुम होता है कि परम्परागत देवपद के चिन्ह होने से ये अवश्य देवसंघ के आचार्य थे। इसलिये मूलसंघ के आचार्यों के समान ही आदरणीय है। इसके अलावा इन्द्रनन्दि कृत नीतिसार में जिन जिन आचार्यो के द्वारा प्रणीत शास्त्रों को प्रमाण कोटि में लेना हो उन आचार्यो का नामोल्लेख किया

१— हम सोमदेव के विषय में अपने स्वतन्त्र लेख में लिख चुके है जो जैन बोधक अंक १७ में और जैनगजट अंक ३६ में प्रकट हो चुका है।

है। उसमें "सोमदेवो विदांवरः" ऐसा शब्द पडा है। इसलिये सोमदेव मूलसंघ के आचार्य हुए हैं इसमें तिलमात्र भी संदेह नहीं है। सोमदेव के द्वारा प्रणीत कई ग्रन्थ है। यशस्तिलक-चंपू, नीतिवाक्यामृत, अध्यात्मतरंगिणी, षण्णवतिप्रकरण महेंद्र-मातलिसजल्प आदि ग्रन्थ उनकी विद्वत्ता के लिये साक्षि हैं। वे किसी एक विषय के विद्वान् नहीं थे अपितु प्रत्येक विषय में अर्थात् न्याय साहित्य सिद्धांत ज्योतिष व्याकरण विषय के अद्वितीय विद्वान थे। ऐसी अवस्था में हमारा लिखने का प्रयोजन तो इतना ही है कि सोमदेव की प्रमाणिकता उनकी विद्वत्ता की दृष्टि से ही उनके मूलसंघ के आचार्य होने के कारण भी निर्बाध है।

ऐसे श्री सोमदेव सूरि यशस्तिलक चंपू में लिखते हैं कि:—

द्राक्षाखर्जूरचोचेक्षुप्राचीनामलकोद्भवैः।
राजादनाम्र पूगोत्थैः स्नापयामि जिनं रसैः॥

द्राक्षा, खर्जूर, इक्षु, आम्र आदि रसों के द्वारा श्री जिनेन्द्र का अभिषेक करता हूं। ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। श्री सोमदेवसूरि मूलसंघ के आचार्य है इस विषयदर मैंने यहाँ व अन्यत्र (स्वतंत्र लेख में) काफी प्रकाश डाल दिया है। षट्प्राभृत की श्रुतसागर सूरिकृत वृत्ति है। उसमें उन्होंने मूलसंघ का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "श्री मूलसंघो मोक्षमार्गस्य मूलं कथितं नतु जैना-भासादिकं" आगे चलकर एक स्थान पर प्रतिमा कौन सी वंद-नीया है उसका उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि "यातु जैनभास

रहितैः साक्षादार्हत संघैः— प्रतिष्ठिता चक्षुस्तनादिषु विकार रहिता नंदिसघ, सेनसंघ, देवसंघ, सिंहसंघ, सभुपन्यस्ता सा वन्दनीया" इस दृष्टि से यह निश्चित है कि देवसंघ मूलसंघ का ही एक भेद है। इसलिये सोमदेवसूरि देवसंघ के आचार्य थे। इस विषय पर आवश्यकता हुई तो हम और भी अधिक स्पष्ट करने को तैयार है।

षट् प्राभृतवृत्ति (श्रुतसागर सूरि)

श्री प्रातः स्मरणीय भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य कृत षट्-प्राभृत ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ की वृति श्री श्रुतसागर सूरिकृत है। श्री श्रुतसागर सूरिकी विद्वता कितने उच्चदर्जे की थी यह बताने की आवश्यकता नहीं है। उनके बनाये हुए बहुत से ग्रन्थों की वृत्ति उपलब्ध होती है। यशस्तिलकचंपू की वृत्ति भी उन्हीं की है। षट्प्राभृत के ऊपर भी उक्त सूरिकी वृति है। षट्प्राभृत की वृति एवं यशस्तिलकचंपू की टीका से ज्ञान होता है कि वे कलिकाल सर्वज्ञ कलिकाल गौतमगणधर, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि अनेक पदवियों से अंलकृत थे। उन्होने ९९ महाविदियों को वाद में परास्त किया था। यशस्तिलकचंपू की वृति में तीसरे आश्वास के अन्त में उन्होंने लिखा है कि:—

इति श्री पद्मनन्दि देवेन्द्रकीर्ति विद्यानन्दि मल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारक श्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्ट गुरुभ्राता गुर्जर देशसिंहासन भट्टारक श्री लक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन, मालवदेश

भट्टारक श्री सिंहनन्दिप्रार्थनाया यति श्री सिद्धांतसागर व्याख्या-कृतिनिमित्त नवनवति महामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलंकारसिद्धांतसाहित्यादि शास्त्र निपुणमतिना प्राकृत-व्याकरणाद्यनेकशास्त्रचंचुना सूरिश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराज चरितचम्पुमहाकाव्य-टीकायां यशोधर महाराज राजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्त ।

इनके बनाये हुए भी अनेक ग्रन्थ व टीका उपलब्ध होते हैं उनकी प्रशस्ति से भी मालुम होता है कि ये श्रुतसागर सूरि मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ बलात्कार गण के आचार्य विद्यानन्दि के शिष्य थे। उनकी गुरु परम्परा इस प्रकार थी। पद्मनन्दि देवेन्द्रकीर्ति विद्यानन्दि। इसलिये अब इस बात पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं रही कि श्रुतसागर सूरि मूलसंघ के मुनि थे। यह बात उपर्युक्त कथन से स्पष्ट सिद्ध है। षट्प्राभृत ग्रन्थ की वृति भी इन्ही श्रुतसागर सूरि की है। बोधप्राभृताधिकार में वैय्यावृत्य के प्रकरण में लिखते हैं कि "तथा चकारात्पाषाणादिघटितस्य जिनबिंबस्य पंचामृतैः स्नपनं अष्टविधैः पूजाद्रव्यैश्च पूजनं कुरुत यदि तथाभूतं जिनबिंबं न मानिष्यथ गृहस्था अपि संतस्तदा कुंभी पाकादि नरकादौ पतिष्यथ यूयं"

यहां वैयाव्रत्य का प्रकरण है। इसमें चकार जो पड़ा है उसमें पाषाण की जिन प्रतिमा का पंचामृत द्रव्यों से अभिषेक और अष्ट प्रकार पूजन द्रव्यों से पूजन करो यदि इस प्रकार

की जिनप्रतिमाओं को नहीं मानेंगे तो गृहस्थ होते हुए भी कुंभीपाकादि नरकों में पडेंगे। इस प्रकार सूरि लिखते हैं।

पूज्यपाद आचार्य विरचित महाभिषेक पाठ

महर्षि पूज्यपाद को कौन नहीं जानता है। जैन धर्म में जन्म लेने वाला बच्चा २ पूज्यपाद के नाम से अपरिचित नहीं रह सकता है। स्वामी पूज्यपाद की विद्वता के विषय में विशेष कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के दर्शन से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। तत्वार्थ सूत्र के ऊपर जो सर्वार्थसिद्धी वृति है वह श्री पूज्यपादाचार्य रचित है। पूज्य पाद आचार्य हर एक विषय में निष्णात विद्वान थे। न्याय व्याकरण ज्योतिष वैद्यक सिद्धांत आदि सर्व विषयों में प्रवीण थे इस बात के लिये उनके ग्रन्थ निदर्शन हैं। जैनेद्रव्याकरण जसे व्याकरण के निर्माता परमपूज्य पूज्यपाद ही हुए हैं। उनके द्वारा निर्मित ज्योतिष ग्रन्थ भी मैसुर प्रान्त में किसी पंडित के पास है यह मालुम हुआ है। पूज्यपाद के वैद्यक ग्रन्थ द्राविड देश में किसी एक श्रेष्ठी के पास मौजूद हैं यह बात भी हमें विश्वस्त सूत्र से मालुम हुआ है। इसके अलावा स.लिग्राम नामक गाम में भी इसकी एक प्रति है। कहने का प्रयोजन इतना ही है कि पूज्यपाद ऋषि कथन के अन्दर प्रसिद्धि को प्राप्त होने के अलावा वे प्रत्येक विषय में उद्भट विद्वान थे। उनके बनाये हुए बहुत से

१— ये भट्टारक नहीं हुए थे।

ग्रन्थ पाये जाते हैं। उन ग्रन्थों में एक पूज्यपाद कृत अभिषेक पाठ है। इसकी प्रति हमें बम्बई सरस्वती भवन से मिली है। यह अभिषेक पाठ संक्षिप्त होते हुए बहुत भी महत्व का है। इसकी रचना शैली वर्णनक्रम बहुत अच्छे मालुम होते हैं। साथ में यह बात ध्यान में रखने की है कि पूज्यपाद आचार्य का दूसरा नाम देवनंदी था। इस अभिषेक पाठ का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है।

एवं पंचोपचारैरिह जिनयजनं पूर्ववन्मूलमंत्रे-
णोत्पाद्यानेकपुष्पैरमलमणिगणैरंगुलीभिः समंत्रैः।
आराध्यार्हंतमष्टोत्तरशतमलं चैत्यभक्त्यादिभिश्च।
स्तुत्वा श्रीशांतिमन्त्रं गणधरवलयं पंचकृत्वः पठित्वा
पुण्याहं घोषयित्वा तदनुजिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री
शेषांसूधार्य मूर्ध्ना जिनपति निलयन्त्रिः परीत्य त्रिशुध्या
आनम्येवां विसृज्यामरगणमपिय: पूज्यते पूज्यपादः
प्रामोत्येवाशुसौख्यं भुविदिविविबुधा देवनन्दीडित श्रीः

उपर्युक्त श्लोकों से यह बात मालुम होती है। कि यह अभिषेक पाठ महर्षि देवनन्द्यपरनाम पूज्यपाद कृत है। इस ग्रन्थ में उक्त महर्षि ने पंचामृताभिषेक की स्पष्ट आज्ञा दी है। आगम प्रमाण को मानने वाले सज्जनों के लिये इसे अवश्य देखना चाहिये। भूमिशोधन पीठार्चन आदि के अनंतर सबसे प्रथम जलाभिषेक का वर्णन है तदनंतर नारिकेल रसाभिषेक का वर्णन इस प्रकार है।

अच्छं चन्द्रमणिद्रवादपि हिमं चन्द्रांशुजालादपि
स्वादामोदि सुधारसादपि जगत्कांतंच काव्यादपि
एतत्कोमल नारिकेलसलिलं जैनाभिषेकात्पुनः
पूतं क्षीरधिवारिणोऽपिकुरुतादात्मोपमो मद्वचः

(नारिकेल अभिषेक)

इसके अनन्तर

एतौरिक्षु रसैश्च दुग्धसलिलैरक्षीरसिंधून्दवै
रेभिश्चूतरसैश्च नूनममृतैः संक्रांत नामांतरैः
प्राज्य श्री जिनराजमज्जनविधि प्राप्तोपयोगार्चित
स्तोत्रैः श्रोतरसायनं त्रिजगतां सपन्द्यतां मद्वचः

(इक्षुरस) (आम्ररसाभिषेक)

(कोई एक तरु रस होना चाहिये)

यत्प्राज्यं वालसूर्यत्विषयदविरलं कुंकुमांभश्चटायां
यत्पूर्णं कर्णिकाजस्रदुपयदचितं रोचनांभोजदाम्नि
तल्लावण्यंलवोस्यारूचयति विनुतच्छायमोदपीनं
धारा हैयंगवीनं जितस्नवनविधावस्तुदीर्घायुषेच ।

घृताभिषेक

भक्तेरस्याभिषेक्तः सपदिपरिणतैर्नूनमिष्टैरदृष्टैः
सिद्धायाः कामधेनोः प्रथमतरमयं प्रस्नवौघप्रवृत्तः
इत्यालोक्यत्रिलोकी परम परिवृढैः स्नानदुग्धः प्लवोयं
पुण्याद्वः पुण्यलक्ष्मीदयति जनमनोवर्तिनोकीर्तिहंसीम् ।

क्षीराभिषेक

स्त्यानं वीतगभस्तिमालिविमल ज्योत्स्नांवुजायेतचेत्
प्रालेयद्युति नूत्नरत्नसलिलं सोनं [?] भवेद्यदि
तत्याल्लब्ध समोपमानमिदमित्यावर्णनीयं जिन—
स्नानीयं दधिसर्वमंगलमिदं सर्वैजनैर्वंद्यताम् ।

दधिअभिषेक

इस प्रकार पंचामृताभिषेक का वर्णन कर आगे चूर्णोद्वर्तन कषायोदक अभिषेक के अनन्तर चतुष्कोण कुंभों के जलाभिषक का उल्लेख किया है । तदनंतर गंधोदकाभिषेक का वर्णन है । इसके अनंतर अष्टविधार्चन करने की विधि है । वस्तुतः देखा जाय तो यही जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने की प्राचीन विधि है । पूज्यपाद [देवनंदि] मूलसंघ के चार भेदों में नंदि संघ के थे यह बात निश्चित है ।

जिनसेन स्वामिकृत हरिवंश पुराण

दिगंबर जैनागम में स्वीकृत प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में श्री जिन सेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण भी एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ है । उपलब्ध प्रथमोनुयोग के ग्रन्थों में रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण और वरांगचरित इससे भी प्राचीन है । पद्मपुराण के करीब १०६ वर्ष बाद इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है । यही कारण है कि जिनसेन स्वामी ने अपने ग्रन्थ में रविषेण कृत

१– इसी प्रकार गुणभद्रकृत अभिषेक पाठ में भी विस्तृत प्रकरण आया है जिसका उल्लेख हमने आगे किया है ।

पद्मचरिका उल्लेख किया है। महापुराण रचियता भगवज्जिन-सेनाचार्य भी हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनस्वामी के समकालीन थे। महापुराण के कर्त्ता जिनसेन स्वामी संघ भेद में वर्णित सेन संघ के थे। और वे अपने को पंचस्तूपान्वय के वतलाते हैं। दोनों वातों का एक ही अर्थ है। उनकी गुरु परम्परा भी सेन शब्द से अंकित हो कर आ रही है। इसलिये वे सेनसंघ के थे। हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेन पुन्नाट संघ के हुए हैं यह ग्रन्थ प्रशस्ति से मालुम होता है। वस्तुतः यह संघ का मूल भेद नहीं है। चार संघों में पुन्नाट संघ का कोई उल्लेख नहीं है। ऐसी अवस्था में ये जिनसेन या तो सेन संघ के होने चाहिये अथवा नंदिसंघ के। परन्तु यह पुन्नाट संघ का जो उल्लेख आया है यह उनके रहने के देशविशेष के कारण हो सकता है। पुन्नाट देश में रहने के कारण पुन्नाट संघ के कहलाये हों। प्राचीन इतिहासों से कर्नाटक में पुन्नाट का अस्तिव था यह कल्पना की जा सकती है। श्रुतावतार में भिन्न २ स्थान व वृक्षमूल से आये हुए मुनियों को भिन्न २ संज्ञा दी गई ऐसा उल्लेख है। उसमें यह हो सकता है कि पुन्नाग वृक्ष जिसका नामांतर नागकेसर भी हो सकता है और श्रुतावतार से खंडकेसर नाम से उल्लेख किया है उस पुन्नागवृक्ष के मूल से आने वालों को उस नाम से व्यवहृत किया होगा। जो हो। हमें इस विषय पर विशेष लिखना नहीं है। यह वात निर्विवाद सिद्ध है हरिवंशपुराण के कर्त्ता जिनसेन स्वामीमूलसंघ में थे। उन्होंने अपने ग्रंथ में भगवज्जिनसेनाचार्य

और उनके गुरु वीरसेन स्वामी को भी स्मरण किया है जैसा कि निम्न श्लोक से मालूम होगा,

जितात्मा परलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः
वीरसेनगुरो कीर्तिरकलंकावभासते
याभितास्युदये पार्श्वे जिनेंद्रगुणसंस्तुतिः
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिः संकीर्तयत्यसौ

इसमे भी मालूम पडता है कि वे मूलसंघ के ही थे। इसके अलावा हरिवंशपुराण में उन्होंने वज्रनंदि जो नंदिसंघ के आचार्य थे और पूज्यपाद [देवनंदि] के शिष्य थे उनका स्मरण किया है उनकी गुरुपरम्परा से भी स्पष्ट सिद्ध है कि वे मूलसंघ के थे। माणिकचन्द ग्रन्थमाला से प्रकाशित मूलग्रंथ की प्रस्तावना में एक दान पात्र व अन्य प्रमाणों के उल्लेख करते हुए पंडित नाथूराम प्रेमी ने यह सिद्ध किया है कि पुन्नाट संघ नंदिसंघ का ही एक भेद हैं। नंदि संघ मूलसंघ के चार प्रसिद्ध भेदों में से एक है।

उक्त मूलसंघ सम्मत हरिवंशपुराण में इस प्रकृत पञ्चामृताभिषेक के लिये निम्न प्रमाण मिलता है।

२२ वें सर्ग के प्रथम में वसुदेव के सपत्नीक जिनपूजा के निमित्त जाने का वर्णन है। वहाँ पर—

क्षीरेक्षुरसधारौघैः घृतदध्युदकादिभिः
अभिषिच्यजिनेंद्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः।

ह. पु. सर्ग २२ श्लो. २१

अर्थात् पंचामृतों के द्वारा पूर्ण कलशों से जिनभगवान् का अभिषेक किया।

इसके अलावा एक दो जगह और भी इसी ग्रन्थ में पंञ्चामृताभिषेक उल्लेख आया है।

पञ्चामृतैर्भृ तैः कुम्भैर्गंधोदकवरैः शुभैः
संस्नाप्य जिनसन्मूर्ति विधिनाऽऽनर्चु रुत्तमाः

हरिवंश पु०

वर्धमान कविकृत वरांग चरित।

ऊपर उल्लिखित हरिवंश पुराण के कर्त्ता जिनसेन स्वामी ने अपने हरिवंश पुराण में वरांगचरित को मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

वरांगनेवसर्वांगै र्वरांगचरितार्थभाक्
कस्य नोत्पादयेद्गाढ— मनुरागं स्वगोचरम्।

इससे मालूम होता है कि वरांगचरित हरिवंश पुराण से भी प्राचीन है वहुत से लोगों की यह कल्पना है कि वरांगचरित के कर्त्ता रविषेणाचार्य थे। इसके लिये कोई प्रवल प्रमाण नहीं मिलता है कोई न अभी रविषणाचार्यप्रणीत कोई वरांगचरित उपलब्ध ही है। ऐसी अवस्था में जव तक वह ग्रन्थ उपलब्ध न हो या कम से कम उसका रविषेणकर्तृत्व निश्चित न हो तव तक इस समय उपलब्ध वर्द्धमान भट्टारक कृत वरांग चरित ही हरिवंश पुराण में उल्लिखित है यह कहना अनुचित न होगा।

वर्द्धमान भट्टारक मूलसंघ में हुए हैं यह बात ग्रन्थ प्रशस्त से मालुम होती है।

> स्वस्ति श्री मूलसंघे भुविविदितगणे श्री बलात्कारसंज्ञे
> श्री भारत्याख्यगच्छे सकलगुणनिधिर्वर्द्धमानाभिदानः
> आसीद्भट्टारकोऽसौ सुचरितमकरोच्छ्रीवरांगस्य राज्ञो
> भव्य श्रेयांसि तन्वद्भुवि चरितमिदवर्ततामार्कतारम्

अर्थात्— पृथ्वी में प्रसिद्ध मूलसंघ बलात्कार गण में भारती गच्छ में संपूर्ण गुणों के निधि श्री वर्धमान भट्टारक हुए। उन्होंने वरगांचरित की रचना की। जो कि भव्यों का कल्याण करनेवाला है। इस पृथ्वी पर जब तक सूर्य व तारे रहे तब तक यह चरित्र भी स्थिर रहे। इसकी रचना शैली, भाषा की सुन्दरता, अर्थसौष्टव एवं गांभीर्य इत्यादि बातों को देखते हुए कवि के प्रति पूर्ण आदर भाव उत्पन्न होता है। वे अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे इसमें कोई सन्देह नहीं। उनको "परवादिदन्तिपंचानन" यह उपाधि थी। उन्होंने अनेक वादियों को अपनी अलौकिक विद्वता के द्वारा परास्त कर जैन धर्म की अतीव प्रभावना की है। इस ग्रन्थ की रचना का मुख्य लक्ष्य सम्यग्दर्शन का महत्व ही बताने का है। यह ग्रन्थ सुश्राव्य ही नहीं सरस भी है।

वरांग राजा दिग्विजय करके जब आता है उसके अनन्तर जिनालय निर्माण कराता है। उसकी प्रतिष्ठाविधि आदि कराता

१— भट्टारक शब्द का प्रयोग मुनियों के साथ में भी हो सकता है।

। इसी बीच के अवसर में राणी की प्रार्थना करने पर वरांग
जा अनेक प्रकार से गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है।

य: संस्नाप्य जिनेशं विधिवत्पंचामृतैर्जिनं यजते।
जलगन्धाक्षतपुष्पै- र्नैवेद्यैर्दीपधूपफलनिवहै: ॥
यो नित्यं जिनमर्चति स एव धन्यो निजेन हस्तेन।
ध्यायति मनसा शुचिना स्तौति च जिह्वागतैस्तौत्रैः ॥
वरांगचरित सर्ग १२ श्लो. १६।१७

अर्थात् पञ्चामृत अभिषेक करके भगवदर्हत्परमेश्वर की पूजा जलन्धाक्षतपुष्पचरूपीपधूपफल इनसे जो नित्य करता है वही धन्य है। वस्तुतः पूजा अभिषेक पूर्वक ही होनी चाहिये।

महर्षि रविषेणकृत पद्मचरित

प्रथमानुयोग के उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ यही है। इस ग्रन्थ की रचना महावीर निर्वाण होने के १२०३ वर्षों के बाद हुई है। भगवज्जिसेनाचार्य (महापुराण के कर्त्ता) जिनसेन स्वामी (हरिवंश पुराण के कर्त्ता) भी इसके करीबन १०० वर्ष के बाद ही हुए थे। रविसेणाचार्य ने अपनी गुरुपरम्परा में इन्द्र गुरु दिवाकर यति- अर्हन्तमुनि लक्ष्मणसेन- रविषेण इस प्रकार उल्लेख किया है। पद्मचरित का विषयवर्णन अत्यन्त रोचक ही नहीं अपितु अत्यंत महत्व का भी है। उनकी अगाध विद्वता और गंभीरता की अन्य सम्प्रदाय के ग्रन्थकर्त्ता भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। श्वेताम्बर संप्रदाय के आचार्यउद्योतन

सूरि ने अपने "कुवलयमाला" नामक प्राकृत ग्रन्थ में रविषेणाचार्य व उनकी कृति का उल्लेख किया है।

> जोंहि कए रमणिज्जे वरङ्ग- पउमाणचरित वित्थारे
> कहवण सलाहणिज्जे ते कइणो जइय रविषेणो ॥

अर्थात् जिसने रमणीय वेरांग चरित्र व पद्मचरित का विस्तार किया ऐसे कवि रविषेण की सराहना कौन नहीं करेगा।

एक जटाचार्यकृत वरांग चरित भी उपलब्ध है। संभवतः उसी वरांग चरित का उल्लेख हो। ऐसी अवस्था में उपर्युक्त गाथा में जइय पद के स्थान में जडिल पद होना चाहिये ऐसा श्री प्रो. ए. एन. उपाध्याय का मत है। वहुत कुछ यह ठीक भी हो सकता है। जटाचार्य का प्रसंशा महापुराण के कर्ता जिनसेनाचार्य ने भी की है। जो हो। निसंदेह कहा जा सकता है कि आचार्य रविषेण मूलसंघ थे। कारण उनके समय तक कोई अन्य संघ भेद नहीं हुआ था। नन्दि, सेन, सिंह, देव, इस प्रकार संघ भेद अकलंक देव के स्वर्गवास के वाद हुए हैं ऐसा उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। वहुत से विद्वानों का मत है कि रविषेणाचार्य काष्टासंघ के थे। इसलिये उनके ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं है। परंतु वे भले आदमी इस विषय पर कोई प्रवल प्रमाण नहीं देते है रविषेण के समय में तो मूलसंघ के चार भेद भी स्पष्ट नहीं हुए थे परन्तु ये काष्टसंघादिकी उत्पत्ति कितने ही समय के वाद की है। जैसा कि नीतिसार में इन्द्रनन्दि उन चार मूलसंघ के भेदों

का वर्णन करने के वाद कहते हैं कि—

कियत्यपि ततोऽतीते काले श्वेतांवरोऽभवत्
द्राविडो यापनीयश्च काष्ठासंघश्च मानतः

नीतिसार श्लो. ६

रविषेणाचार्य जब पद्मपुराण की रचना को पूर्ण कर चुके थे उसके कई वर्षो वाद काष्टासंघ की उत्पत्ति हुई है। ऐसी अवस्था में उनको काष्टासघी वताना नितांत भ्रम है।

इस विषय पर अनेक ग्रन्थों के संपादक एवं संशोधक अनुभवी मान्यवर पं. पन्नालालजी सोनी अपने ता. १-६-३२ के पत्र में लिखते हैं कि "मेरी समझ से तो आगम प्रमाण मानने वालों को यह पुष्ट प्रमाण होगा कि काष्ठासंघ की उत्पत्ति का समय दर्शनसार के अमनुार ७५३ विक्रम संवत् है। रविषेणाचार्य ने पद्मपुराण की रचना वि. सं. ७३३ में पूर्ण की है। पद्मपुराण वी. नि. १२०३ में पूर्ण किया है। वीरनिर्वाण मे ४७० वर्ष वाद विक्रम संवत् का प्रारम्भ है। अतः १२०३ से ४७० कम करने से ७३३ पद्मपुराण के पूर्ण होने का वि. संवत् बैठता है। काष्ठासंघ की उत्पत्ति पद्मपुराण के वन जाने के बाद २० वर्ष पीछे हुई है। ऐसी हालत में रविषेणाचार्य को काष्ठासंघ के है ऐसा किस आधार से माना जाता है यह मैं नहीं कह सकता"

---

१. यह ग्रंथ अभी उपलब्ध नहीं है। जटाचार्यकृत और वर्द्धमान म. कृत उपलब्ध है।

अर्थात् वे काष्ठासंघ के नहीं हो सकते हैं। पं. नाथूराम प्रेमी पद्मचरित की संक्षिप्त प्रस्तावना में लिखते हैं कि 'इन्होंने किसी संघ या गण का उल्लेख नहीं किया है। जिससे मालुम होता है कि उस समय तक दिगम्बर सम्प्रदाय में देव, नंदि, सेन सिंह संघों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। कम से कम ये भेद बहुत स्पष्ट नहीं हुए थे। शक संवत १३५५ के लिखे मगराज कवि के शिलालेख में इस बात का उल्लेख किया गया है कि भट्टारकलंक देव के स्वर्गवास के बाद यह संघ भेद हुआ।

तास्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षो
दिव:पतिं नर्तु मिव प्रकृष्टां
तदन्वयो मूत मुनीश्वराणां
बभूवुरित्थं भुविसंघ भेदा: ।।

इससे भी मालुम होता है कि वे काष्ठासंघ के नहीं थे। यद्यपि इस विषय पर इतिहासवेत्ताओं के लिये मतभेद रहेगा। फिर भी यह बात हर तरह से हर एक को स्वीकार होगी कि रविषेणाचार्य काष्टासंघ के नहीं थे। परन्तु जो हठ से इसी बात को पुष्ट करने के लिये कहेंगे तो यह समझना चाहिये कि वे सह्यविंध्य का सम्बन्ध करना चाहते हैं अस्तु।

उक्त मूलसंघ के शिरोमणि रविषेणाचार्य के द्वारा रचित पद्मपुराण में पञ्चामृताभिषेक का विधान निम्न लिखित प्रकार मिलता है।

---

१ यह ग्रंथ बम्बई में ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से छपा है।

अब कोई महाशय ये काष्टसंघ के हैं ऐसा कहकर न उडावें परन्तु अपने पक्ष के समर्थन में कोई प्रबल प्रमाण उपस्थित करें अन्यथा उनके इस प्रलाप की उपेक्षा ही की जावेगी ।

रामचन्द्र के लक्ष्मण सीता सहित वनवास को जाने के अनंतर भरत को राज्याभिषेक हुआ तो भी अपने भ्राता के वियोग से उनका चित स्थिर नहीं था ऐसा कथन है। इस प्रकरण में ही द्यु ति नामक आचार्य उन्हें गृहस्थ धर्म का विस्तृत उपदेश दिया है उसी में प्रकृत विषय पर ऐसा लिखा है ।

अभिषेकं जिनेंद्राणा कृत्वासुरभिवारिणा ।
अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥
अभिषेकं जिनेंद्राणां विधाय क्षीरधारया ।
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः ॥
दधिकुम्भैर्जिनेद्राणां यः करोत्यभिषेचनं ।
दध्याम्भकुट्टमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥
सर्पिषा जिननाथानाम् कुरुते योऽभिषेचनम् ।
कांतिद्युतिप्रभावढयो विमानेशः सजायते ॥
अभिषेकंप्रभावेण श्रूयते वहवो वुधाः ।
पुराणेऽनंतवीर्याद्या द्युभूलब्धाभिषेचनाः ॥

प. पु. स. ३२ श्लो. १६५, ६६, ६७, ६८, ६९,

अर्थात् जो जलाभिषेक के द्वारा भगवान् का अभिषेक करते हैं वे भी स्वयं जहां २ उत्पन्न होते हैं। अभिषेक को प्राप्त होते हैं। जो क्षीर से जिनेद्र का अभिषेक करता है। वह क्षीर के

समान शुभ्र विमान में प्रभासहित देव होकर उत्पन्न होता है ज दधिका अभिषेक करता हैं वहभी उत्कृष्ट स्वर्ग में जन्म प्राप्त करता है। जो घृताभिषेक करता है कांतितेज प्रभाव से युक्त होकर उत्तम विमान का अधिपति होता हैं। इस प्रकार पंचामृतो से अभिषेक करने से इह पर मे सौख्य उत्पन्न करने वाली संपति ही नही परम्परा सेमुक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

आचार्य मल्लिषेण कृत नागकुमार चरित

पूर्वाचार्यों में नामांकित मल्लिषेण स्वामी भी एक उद्भट विद्वान् आचार्य हुए हैं। आप प्रत्येक विषय के निष्णात विद्वान् आचार्य थे। आपके द्वारा रचित दो तीन कल्प ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। पद्मावतीकल्प, ज्वालामालिनीकल्प सरस्वतीकल्प आदि मंत्र शास्त्र में पूर्णरूप से अधिकार रखते थे। आपके द्वारा रचित एक त्रिषष्टि लक्षण महापुराण भी उपलब्ध है। और एक नाग-कुमार चरित्र नाम की कथा ग्रंथ भी उपलब्ध है। दोनों ही आपकी ही कृति हैं यह दोनों ग्रन्थों को देखने से मालुम हो जाता है। अनेक श्लोकों की समानता, रचना शैली की श्रेणी, भाव सदृश्य आदि बातों पर अनुमान करने से ही मालुम हो जाता है कि यह दोनों आपकी कृति है। इसके अलावा दोनों ग्रन्थों में जब परिच्छेद को अंत किया है, वहां पर जो वाक्य लिखे हुए हैं दोनों एक दूसरे से मिलते है। इससे भी मालुम होता है कि दोनों के कर्त्ता एक ही मल्लिषेण है।

"इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति श्री मल्लिषेण सूरिविरचित-त्रिषष्टिलक्षण महापुराण संग्रहे श्री वर्द्धमान तीर्थंकर पुराणं समाप्तम्" महापुराण (मल्लिषेण)

"इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति श्री मल्लिषेण सूरि विरचितायां नागकुमार पंचमीकथायां निर्वाण गमनीनाम पंचमः सर्गः"
नागकुमार चरित

इसके अलावा दोनों ग्रन्थों की प्रशस्ति से कविचक्रवर्ति की गुरू परम्परा जानने से और भी स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ग्रन्थों के कर्त्ता एक ही मल्लिषेण हैं। नागकुमार चरित में जिन सेन, कनकसेन, जिनसेन उनके भाई नरेन्द्रसेन तदनन्तर मल्लि-षेण इसी प्रकार परम्परा दी हैं।

इसी प्रकार की परम्परा महापुराण में भी दी है। अब पाठकों के अवलोकनार्थ दोनों ग्रन्थों की प्रशस्ति हम यहां देते है।

जितकषायरिपुर्गुणवारिधि-र्नियतचारुचरित्र तपोनिधि ॥
जयतु भूपकिरीट विघट्टित क्रमयुगो जिनसेन मुनीश्वरः ।१।
अजनि तस्य मुनेर्वर दीक्षितो विगतमानमदो दुरितांतकः
कनकसेन मुनिर्मुनिपुङ्गवो वरचरित्र महाव्रत पालकः ।२।
जित मदोऽजनि तस्य महामुनेः प्रथितवज्जिनसेन मुनीश्वरः
सकल शिष्यवरो हत मन्मथो भव महोदधि तारतरण्डकः ।

तस्यानुजश्चारु चरित्रवृत्तिः प्रख्यात कीर्तिर्भुवि पुण्यमुर्तिः
नरेन्द्रसेनो जितवादिसेनो विज्ञाततत्वो जितकाम सूत्रः ।४।

तच्छिष्यो विबुधाग्रणी गुणनिधि श्रीमल्लिषेणाह्वयः
संजातः सकलागमेषु निपुणो वाग्देवतालंकृतः
तेनैषा कविचक्रिणा विरचिता श्री पंचमी सत्कथा
भव्यानां दुरितौघ नाशन करी संसार विच्छेदनी ।५।
स्पष्टम् श्री कविचक्रवर्तिगणिना भव्याब्जधर्मांशुना ।
ग्रन्थो पंचशती मया विरचिता विद्वज्जनानां प्रिया
तां भक्त्या विलिखन्ति चारुवचनैर्वाविर्णयंत्यादरात्
ये श्रृण्वंति मुदा सदा सहृदयास्ते यांति मुक्तिश्रियम् ।६।

नागकुमार चरित्र

श्रीमूलसंघे जिनसेन सूरी जिनेन्द्र धर्माम्बरचारुचन्द्र : ।
राजेन्द्र मौलि प्रविचन्द्रचुम्बितांघ्रिर्जीयादशेषागम
पारदृश्वा ।१४८।

शिष्येऽग्रजः कनकसेनमुनिस्तदीयश्चारित्र
संयमतपोमयदीपमूर्तिः ।
दूरीकृतस्मरशराहतिमोहपाशो जातः
कषायतिमिरद्युमाणमुनीन्द्रः

शिष्यस्तदीयोजिनसेनसूरिर्बभूव भव्याम्बुजचण्डरोचिः ।
कृतांगजोपास्तसमस्तसंगो जिनोक्तमार्गाचरणैकनिष्ठः।१५०

तस्यानुजः सकलशास्त्रपुराणवेदीनिः
शेषकर्मनिचयेन्धन-दाहदक्षः ।
आसीत्समस्तविबुधाग्रगणी नृलोके
विख्यातवानिह मुनींद्रनरेंद्रसेन

श्रीजिनसेनसूरि तनुजेन कुदृष्टिमतप्रभेदिना ।
गारूडमन्त्रवादसकलागमलक्षणतर्कवेदिना ॥
तेनमहापुराणमुदितशम्भुभुवनत्रयवर्तिकीना ।
प्राकृतसंस्कृतोऽभयकवित्वधृताकविचक्रवर्तिना ।१५२।

तीर्थं श्रीमुलगुन्दनामनगरे श्रीजैनधर्मालये ।
स्थित्वा श्रीकविचाक्रवर्तियतिपः श्रीमल्लिषेणाह्वयः ।
संक्षिप्ता(प्तं)प्रथमानुयोगकथनम् व्याख्यानितंश्रृण्वतां ।
भव्यानां दुरितापहं रचितवान्निः शेषविद्याम्बुधिः ॥

वर्षैकस्त्रिशताहिने सहस्त्रे शकभूभुजः ।
सर्वजिद्वत्सरे जेष्ठे शुल्के पंचमी दिने ॥१५४॥
आज्ञादेतत्समाप्तंतु पुराणं दुरितापहम् ।
जीयादाचन्द्रतारकं विदग्धजनचेतसि ॥ १५५ ॥
मयात्रबालभावेन लक्षणस्यागमस्यवा ।

यदुद्धृतं विरुद्धंच धीमन्तः शोधयन्तुतत् ॥१५६॥
द्विहस्त्रं भवेद्ग्रंथं प्रमाणं परिसंख्यया ।
महापुराण शास्त्रस्य कृतस्य कविचक्रिणा ॥१५७॥

महापुराण

उपर्युक्त दोनों प्रशस्तियों से दोनों ग्रन्थों के कर्ता एक मल्लिषेण हैं ऐसा सिद्ध करने पर हमारा प्रकृत प्रयोजन यह है कि महापुराण में जो "श्री मूलसंघे जिनसेन सूरि" इत्यादि पद्य आये हैं उससे यह भी सिद्ध होता है कि ये मल्लिषेण मूल संघ के आचार्य थे और किसी संघ के नहीं थे। उन्ही के द्वारा रचित नागकुमार चरित में प्रकृत विषय का उल्लेख मिलता है।

प्रथम प्रकरण में जब राजा सपरिवार वन क्रीड़ा को जाता है तब उसकी प्रिय रानी पृथ्वी देवी कोई कारण पाकर अर्धमार्ग से दुःखित होकर वापिस आती है। जिन मंदिर में आकर पिहितास्रव नामक मुनिनाथ से गृहस्थ एवं यति धर्म का उपदेश करने की प्रार्थना करती है तब वे मुनीश्वर उपदेश देते हुए कहते है कि:—

कारयित्वाजिनेंद्राणां सद्बिंबं स्नापयन्ति ये
चोचेक्ष्वाम्ररसैर्नित्यं आज्यदुग्धादिभिस्तथा
पूजंयति च ये देवं नित्यमष्टविधार्चनैः
पूजां देवनिकास्य लभंते तेऽन्यजन्मनि ॥

नाग कु. श्लो. ११२, १३,

जिनेंद्र की सुन्दर प्रतिमा कराकर जो भव्य आम्ररस, इक्षुरस नारियल का रस दूध घी आदि द्रव्यों से अभिषेक करते हैं एवं नित्य अष्ट विधार्चना से जो पूजन करते हैं वे दूसरे जन्म में देव समूहों के द्वारा पूज्य होते हैं। इसलिये इस पञ्चामृताभिषेक का अचित्य माहात्म्य है। आचार्य मल्लिषेण और भी अनेक विषयों पर प्रवीण थे। मन्त्र शास्त्र के गूढरहस्य के जानकार होने से उनका अधिकार क्रियाकांड विषय पर होना स्वाभाविक बात हैं वे मूलसंघ में प्राकृत व संस्कृत के उद्भट विद्वान् आचार्य थे।

आचार्य सकलकीर्ति विरचित श्रीपालचरित्र

यतिवर सकलकीर्ति मूलसंघ के प्रसिद्ध हैं उनके द्वारा रचित श्रीपाल चरित्र में लिखा है कि—

कृत्वापञ्चामृतैर्नित्यमभिषेकं जिनेशिनां
ये भव्याः पूजयंत्युच्चैः ते पूज्यंते सुरादिभिः ॥

अर्थात् जो भव्य नित्य ही पञ्चामृताभिषेक कर जिनेंद्र भगवान की पूजा करते हैं वे भी देवों के द्वारा पूज्य होते हैं। इसी ग्रन्थ में श्रीपाल जब द्वीपांतर में गया वहां पर सहस्रकूट चैत्यालय को देखकर वहां पर पूजा करने को गया। इसी प्रकरण में:—

मूर्ध्ना गत्वानु संस्नाप्यामृतैः पञ्चविधैर्वरैः
जिनेंद्रप्रतिमां भक्तया पूजयत्सशुभाप्तये

श्रीपाल च० श्लोक 63

अर्थात् वह श्रीपाल जिनेंद्र भगवान को बारम्बार नमस्कार कर तदनन्तर पञ्चामृताभिषेक करके भक्ति से पूजन किया।

इसके अलावा और भी प्रथमानुयोग ग्रन्थों में इस विषय का उल्लेख मिलता है। भगवज्जिनसेनाचार्य कृत महापुराण में जगह पर महाभिषेक करना चाहिये ऐसा उल्लेख है। पाठक अब विचार कर सकते हैं कि वह महाभिषेक क्या है? और उसकी सामग्री कौन सी है। पञ्चामृताभिषेक ही वह हो सकता है। इसके अलावा और कोई भी ग्रन्थ जिनमें इस विषय का उल्लेख है चाहे वह गृहस्थ कृत हो चाहे काष्ठासंघ या भट्टारक कृत क्यों न हो परन्तु उन ग्रन्थों को इस विषय के प्रतिपादक होने के कारण अप्रमाणिक नहीं कहा जा सकेगा यह बात ध्यान में रहना चाहिये। क्योंकि पूर्वाचार्यों के अविरोध कथन प्रमाण कोटि में ग्राह्य हैं। अब हम कुछ श्रावकाचार जो इस विषय की आज्ञा देते हैं उनका उल्लेख करते हैं।

वसुनन्दि श्रावकाचार.

महर्षि वसुनन्दिसिद्धांतदेव मूलसंघके थे यह बात उक्त ग्रन्थ-के अन्तिम भागमें दी हुई गुरु परम्परासे ज्ञात होता है।

आसी ससमयसम-यविद् सिरिकुन्दकुन्दसंताणे।
भव्वयणकुमुयवणसिसि रयरो सिरिणंदिनामेण॥

अर्थात् कुन्दकुन्दस्वामीके आम्नायमें स्वपरमतको जानने-

वाले भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीनंदी नामके यति प्रसिद्ध थे।

सिस्सो तस्य जिणिंदसासणरउ सिद्धांतपारंगउ।
खन्तीमद्दवलाहवाइदसहा धम्माम्मिणिच्चोज्जउ॥
पुण्णेंदुज्जल कित्तिपूरिय जउ चारित्तलच्छीहरो।
संजाऊ णयणंदिणाम मुणिणो भव्वा सयाणंदऊ॥

उसी श्रीनंदि मुनिका शिष्य जिनशासनमें रत, सिद्धातमें पारंगत, उत्तम क्षमादि दश धर्मोंको पालनेमें तत्पर, पूर्णचन्द्रके समान निर्मलकीर्ति से विस्तृत जगत, चारित्ररूपी लक्ष्मीसे युक्त, भव्योंके चित्तमें आनन्द उत्पन्न करनेवाले नयनन्दि नामके मुनि थे।

सिस्सो तस्स जिणागमजलणिहिवेलातरंगधुयमाणो।
संजाऊ सयलजए विख्खाऊ णेमिचंदुत्ति।
तस्स पसाएण मए आयरियपरंपरागयं एयं।
वच्छल्लायररइयं भवियाण मुवासयज्झयण॥

उन नयनन्दि देवके शिष्य सर्व लोकमें प्रसिद्ध जिनागमके पूर्ण रहस्यको जाननेवाले नेमिचंद्र नामके थे। उनके प्रमादसे आचार्य परंपरासे आगत इस उपासकाध्ययन शास्त्रको भव्योंके प्रति आदरके साथ मैंने बनाया ऐसा श्रीवसुनन्दि सिद्धांत चक्रवर्ति कहते हैं।

इस गुरुपरम्परासे ज्ञात होता है कि श्री सैद्धांतिक चक्रवर्ति वसुनंदि देव मूलसंघके उसमें भी नन्दिसंघके एक उत्कृष्ट आचार्य थे। उन्होंने स्वकृत श्रावकाचारमें इस प्रकृत विषयका विधान किया है। वह इस प्रकार है।

गब्भावयारजम्मा हिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं।
जम्मिदिणे संजादं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं।
णिसिजागरं च संगी पणाडयाईहिकायव्वं॥

तीर्थंकरों के गर्भावतरण, जन्माभिषेक, दीक्षा केवलज्ञान व मोक्ष कल्याण के दिनोंमें इक्षुरस, घी, दही, क्षीर जल गन्धादिकसे अभिषेक करना चाहिये इत्यादि इसी अर्थको पण्डित प्रवर मेधावीने अपने धर्म संग्रह श्रावकाचारमें समर्थन किया है।

पण्डित मेधावीने अपनी गुरु परंपरा इस प्रकार प्रकट किया है। नंदिसंघके मुकुटरूप कुंदकुंद स्वामी के आम्नायमें पद्मनंदि-शुभ-चन्द्र-श्रुतमुनि-हुए। इन्ही श्रुतमुनिसे मैंने अष्टसहस्री आदि ग्रन्थोंका अध्ययन किया। तदन्तर रत्नकीर्ति विमलकीर्ति जिन-चन्द्र का स्मरण किया है। इससे ज्ञात होता है। वे मूलसं-घाम्नायी थे। उन्होंने उपर्युक्त अर्थके समर्थ में लिखा है।

गर्भादिपञ्चकल्याणमर्हतां यद्दिनेऽभवत्।

तथा नन्दीश्वरे रत्नत्रयर्पर्वणि चार्चनम् ॥
स्नपनं क्रियते नानारसैरिक्षुघृता दभि ।
तत्र गीतादिमांगल्यं, कालपूजा भवेदियम् ॥

गर्भावतरणादि पंचकल्याण जिस दिन हुआ हो नन्दीश्वर रत्नत्रय पर्व दिनोंमें जिनेंद्र भगवान् की पूजा और इक्षुरस घृत आदि पंचामृतोंसे अभिषेक करना इसे कालपूजा कहते हैं।
इसी प्रकार—

शुद्धतोयेक्षुसर्पिर्भिर्दुग्धदध्याम्रजैरसैः ।
सर्वौषधिभिरुच्चूर्णैर्भावात्संस्नापये जिनान् ॥
उमास्वामिश्रावकाचार

अर्थात् मैं शुद्धजल इक्षुरस घी दूध दहि आम्ररस इत्यादियोंके द्वारा भगवान्का अभिषेक करता हूं। इसी प्रकार—

जो जिणुएहावइघपयपर्यहि ण्हाविज्जइसोइ ।
सो पावइ जों जं करइ पहुंपसिद्धऊ लोए ॥
श्रीयोगींद्रदे श्रावकाचार

अर्थात जो जिनेंद्र भगवान् घी रस दुग्ध इत्यादिसे अभिषेक करते हैं वे देवताओंके द्वारा स्नान कराये जाते हैं। कारण ऐसा नियम है जो जैसा कर्म करते हैं उसका वैसाही फल भोगते हैं। इसलिए पंचामृताभिषेक करनेवालोंको भी तदनुसार फल मिलना चाहिये।

इंद्रनंदीकृत पूजासार है उसमें कलश स्थापन करनेके प्रकरणमें लिखा है कि:—

नालिकेरफलानिस्फस्तदनंतरमशंके ।
आम्रादीनां रसैः पूर्णं फलानामिक्षुसद्रसः ॥
शितैः पूर्णं घटं पाद्यमाचाम्याघौंघटौ ततः ।
घृतदुग्धैर्भृतं कुम्भं दधिभिर्लाजकैरपि ॥

जलकलशोंके स्थापनविधि वतानेके अनंतर अभिषेकके लिये नालिकेररस, आम्ररस, इक्षुरस, घृत दुग्ध, दहि आदि पंचामृतद्रव्योंके कलश स्थापन विधिका वर्णन करते हैं। इसी ग्रन्थमें अन्यत्र भी इस विषयका उल्लेख है। यदि श्रुतावतारके कर्ता ये इंद्रनंदि आचार्य हों तो यह कहा जा सकता है कि ये वे ही हो सकते हैं जिनका उल्लेख आचार्यप्रवर नेमिचंद्रने गोमट्टसारकी ३९६ वीं गाथामें अपने गुरुरूपमें उल्लेख किया है।

प्रतिष्ठासारोद्धार.

ऋषिकल्प पण्डित प्रवर आशाधरने आज हम लोगोंके प्रति क्या उपकार किये हैं इस वातको वतानेके लिए न यहां समय है और न प्रकृतमें आवश्यकता ही है। जैन वाङ्‌मयकी सेवाके लिए उन्होंने सर्वस्व अर्पण किया था। उनके द्वारा वनाये हुए अनेक

ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। वे प्रत्येक विषयके अद्वितीय विद्वान् थे। न्याय व्याकरण साहित्य, वैद्यक ज्योतिष, क्रियाकाण्ड आदि विषयोंपर उनका पूर्ण अधिकार था। उनको सरस्वतीपुत्र और कलिकालिदासकी उपाधि थी। उन्होंने वहुतसे ग्रन्थोंका निर्माण किया है। प्रमेय रत्नाकर, भरतेश्वराभ्युदय, सिध्यंक, धर्मामृत, आदि ग्रंथोंके रचियता, प्रसिद्ध वैद्यक शास्त्रके ऊपर अष्टांग हृदय नामकी टीका, भगवती आराधनाके ऊपर मूलाराधना दर्पणटीका, इष्टोपदेशकी टीका, अमरकोषपर क्रियाकलाप नामकी टीका आदि ग्रन्थोंके अधिकृत निर्माता, आशाधर सचमुचमें आचार्यकल्प हैं। उपर्युक्त प्रतिष्ठासारोद्धारनाम जिनयज्ञकल्प ग्रन्थ भी आशाधरकी हो रचना है उसमें अभिषेक प्रकरणके आदिमें कहते हैं कि:—

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां लब्धां चतुःकुम्भयुक-
कोणायां सकुशश्रियां जिनपतिं न्यस्तांतमाप्येष्टदिक्।
नीराज्यांबुरसाज्यदुग्धदद्भिः सिक्ता कृतोद्वर्तनं
सिक्तं कुम्भजलैश्च गन्धसलिलैः सम्पूज्य नुत्वा स्मरेत्॥

प्रतिष्ठासारोद्धार अ. ५ श्लो. १

अर्थात् वेदीके चारों कोनोंमें जल कलश स्थापनकर भूमिशुद्धि करनेके अनन्तर बोचमें सिंहासनपर श्री जिनप्रतिमाको स्थापनकर पंचामृतोंसे अभिषेक करे। तदनन्तर जलाभिषेककर पूजा करे। इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है। इसी प्रकार नेमिचन्द्र

प्रतिष्ठापाठमें भी भिन्न-भिन्न पंचामृतोंके लिए भिन्न-भिन्न मन्त्र प्रयोगकर विस्तृतविवेचन किया है।

देखो नेमिचन्द्र प्रतिष्ठातिलक छपा हुआ पृष्ठ संख्या ६६४

इसी प्रकार वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ, नरेंद्रसेन, एकसन्धि, ब्रह्मसूरि, अकलंकदेव आदि विरचित प्रतिष्ठापाठोंमें भी इस विषयका उल्लेख मिलता है। प्रकृत लेख बढ़नेके भयसे उन ग्रंथोंसे देखनेकी प्रार्थना है।

ऊपर प्रमाण रूपसे उल्लिखित पूजासारके अंतमें एक श्लोक यह आया है कि—

वीरसेनजिनसेनसूरिणा। पूज्यपादगुणभद्रसूरिणा॥
इन्द्रनन्दिगुरुणैकसंधिना। जैनपूजनविधिः प्रभाषितः॥

इन छह आचार्योंकी कृति पूजन प्रतिष्ठाविधि होनी चाहिये. इनमेंसे कुछ उपलब्ध हैं कुछ नहीं। पूज्यपादके द्वारा रचित अभिषेक पाठका प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं. वीरसेन, जिनसेन इनका अभिषेक पूजन विधि हमें जहांतक मालुम है अभीतक उपलब्ध नहीं है। हमने सुना है कि जिनसेन प्रतिष्ठापाठ द्राविड देशमें जिनकांची मठ के भण्डारमें ताडपत्रपर द्राविड लिपिमें मौजूद है। इस विषयपर हम निश्चिय कुछ नहीं लिख सकते, हां! खोज करनेपर मिल मकेगा। इंद्रनंदि और एकसंधिकी कृति उपलब्ध हैं। गुणभद्ररचित पूजनविधी भी उपलब्ध है। इसकी एक प्रति

हमें प्राप्त हैं अत्यन्त जीर्ण अवस्थामें है। हाथमें लेकर वांचना भी कठिन होगया है। यह ताडपत्रपर कनडी लिपिमें लिखा हुआ है। यह गुणभद्रके द्वारा रचित है इसके लिये यह प्रमाण होसकता हैं कि इसमें जो पाठ उन्होंने स्वतन्त्रतासे दी है वे कोई २ अन्य पूजा संग्रहमें मिलते हैं। एव आशाधर पाठमें भी कुछ पाठ इससे मिलते हैं। इसलिये यह कृति उन सबसे प्राचीन होना चाहिये।

ग्रंथकर्ताने ग्रन्थके अन्तिम भागमें अपनी प्रशस्ति वगैरह कुछ नहीं दी हैं। परन्तु प्रारंभमें ही एक श्लोकमें वे अपना नामोल्लेख करते हैं।

श्रीजिनेंद्रार्चनार्हत्पदसरसिजयो नित्यसिद्धांघ्रियुग्मो।
आचार्योपाध्यायधूंश्चरणनलिनयो र्वन्द्ययुग्मांतरेषु॥
वन्द्यन्ते नित्यरूपैः सकलभुवनयो मंत्रतंत्रोक्तसारैः।
अर्हज्जन्माभिषेकोत्सवमिद 'गुणभद्रोचितं' सर्वशांत्यै॥

आगे श्री महर्षि गुणभद्रने पूजनविधिको बनाते हुए इस पंचामृताभिषेक का भी भिन्न-भिन्न रूपसे उल्लेख किया है।

---

१ गुणभद्र पाठ व पूज्यपाद पाठ हमें बंबई सरस्वती भवनसे प्राप्त हुए हैं। इसलिये भवनके संचालक व श्री पं० रामप्रसादजी शास्त्रीके हम अत्यन्त आभारी हैं।

यहां पंचामृताभिषेकोंकी विस्तृतरूपसे वर्णन विधि प्रतिपादित है लेख बढ़जानेके भयसे यहां उनको उद्धृत नहीं करते हैं।

देखो ताडपत्र ग्रन्थ नं० ४०१ (मुंबई स० भवनसे प्राप्य) प० नं० ४१ से ५० तक।

षट्कर्मोपदेशरत्नमाला.

यतिवर शुभचन्द्र देवके शिष्य आचार्य सकल भूषण हुए हैं। उन्होंने षट्कर्मोपदेश रत्नमाला नामक ग्रन्थकी रचना की है। इनकी रचना अन्य भी उपलब्ध हैं। उन्होंने उक्त ग्रन्थके अन्तिम भागमें अपनी गुरु परम्परा दी है। श्रीमूल संघ (नंदि संघ) सरस्वती गच्छमें श्री कुंदकुंद स्वामी उसी परम्परामें पद्मनंदि सकलकीर्ति, ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति, शुभचंद्रसूरि, सकल भूषण इस प्रकार परंपरा है। नींचे जाकर लिखते हैं कि श्री नेमिचंद्राचार्य आदि यतियोंके आग्रहसे वर्द्धमान आदिकी प्रार्थनासे मैंने इस ग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थकी रचना वि० सं० सोलहवीं शताब्दिमें हुई है उल्लिखित ग्रन्थमें लिखा है कि:—

पंचामृतैः सुमंत्रेणमंत्रितैर्भक्तिनिर्भरः।
अभिषिच्य जिनेंद्राणां प्रतिबिंबानि पुण्यवान ॥

पवित्रमंत्रपूर्वक पंचामृतोंके द्वारा जिनेन्द्र भगवान्‌का अभिषेक करता है वह महान् भाग्यशाली है।

महर्षि देवसेनाचार्यकृत उक्त ग्रन्थ बहुत महत्वका एवं प्रसिद्ध है। ये मूलसंघके थे यह बात निर्विवाद सिद्ध है। इनके द्वारा रचित नयचक्र, आलाप पद्धति, तत्वसार, आराधनासार, दर्शनसार व प्राकृत भावसंग्रह आदि उपलब्ध होते हैं। उन्होंने अपने गुरु के स्थानमें श्रीविमलसेन गणीका नाम लिया है। दर्शनसारके अवलोकनसे यह बात मालुम होती है कि वे मूलसंघके आचार्य थे। दर्शनसारमें उन्होंने काष्ठासंघ द्राविड संघ माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि संघोंकी उत्पत्ति बतलाई है। और उनको मिथ्यात्वी कहा है। इससे मालुम होता है कि वे मूलसंघनिष्ठ थे। दर्शनसारकी गाथा नं० ४३ में उन्होंने आचार्य कुन्दकुन्दका स्मरण इसप्रकार किया है।

जइपउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समण कहं सुमग्गं पयाणंति ॥

अर्थात् यदि आचार्य पद्मनंदी [कुंदकुंद] सीमन्धर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते। इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि ये मूलसंघमें कुन्दकुन्दाचार्यके अम्नायमें थे। ऐसे महर्षिदेवसेन द्वारा रचित भावसंग्रहमें देश विरत गुणस्थानके प्रकरणमें पूजा विधि बताई है। वहांपर—

कलसचउ कंठाविय चउसुवि कोणेसु णीरपरिपुण्णं
घयदुद्धदहियभरियं णवसयद लच्छणमुहकमलं

भावसंग्रह गा. ४३८

अर्थात् पीठके चारों कोनोंमें चार कलशोंको स्थापनकर उनमें क्रमसे पानी, घी, दूध, दहि ये पदार्थ भरें और कलशोंके मुख नवीन कमलोंसे शोभित करें। आगेः—

उच्चारिऊण मन्ते अहिसेसं कुणउ देवदेवस्स
णीरघयखीरदहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे

भावसंग्रह गा० ४४१

अर्थात् अभिषेकमन्त्रोच्चरणकर श्रीजिनप्रतिमाके मस्तकपर क्रमसे जल, घृत दुग्ध दहीका अभिषेक करना चाहिये। इसके अलावा एक वामदेव कृत संस्कृत भावसंग्रह भी उपलब्ध है। ये वामदेव भी मूलसंघके थे और मूलसंघाम्नाई आचार्य लक्ष्मी-चन्द्रके शिष्य थे यह बात ग्रन्थप्रशस्तिसे ज्ञात होती है। उक्त ग्रन्थमें भी लिखा हैं किः—

ततः कुंभं समुद्धार्य तोयचोचेक्षुसद्रसैः
सद्घृतैश्च ततो दुग्धैर्दधिभिः स्नापयेज्जिनम्।

(वामदेव) भावसंग्रह श्लो. ४८३

तदनन्तर कलशोद्धरण कर इक्षुरस, आम्ररस, घृत, दुग्ध, जल आदिसे जिनेंद्रका अभिषेक करना चाहिये ।

इस प्रकार इस विषयके समर्थन व विधिकेलिये अनेक ग्रन्थ मूल संघम्नाई ही मौजूद हैं। ऐसी अवस्थामें इस विषयपर निस्पक्ष विचारक अपनी हठग्राहिताको छोड देना चाहिये । इसके अलावा और भी ग्रन्थोंका प्रमाण इस विषयपर बहुत हैं परन्तु लेख बढजानेके भयसे यहां हम नहीं देते हैं आवश्यकता पडने पर हम फिर इस विषयपर लिखनेको तैय्यार हैं। परन्तु सभ्य पाठकोंसे निवेदन है कि इसे निस्पक्ष दृष्टिसे अवलोकन करें। यदि कुछ वक्तव्य हो उन महर्षियोंके प्रति किसी भी प्रकारसे अविनयादि न हो इस प्रकार लिखें। यथासाध्य सन्तुष्ट किया जायेगा। इतना ध्यान रहे कि आगमकी आज्ञाकी अवहेलना करना मिथ्यात्वका कारण है । इति ।

इस लेखको लिखते समय ग्रन्थ संग्रहादिमें सहायता देनेवाले मेरे माननीय मित्र पं. जिनदासजी न्यायतीर्थ एवं सबसे अधिक मूल—प्रेरक; एवं सर्व प्रकारसे सहायत देनेवाले श्रीमान् धर्मवीर सेठ रावजी सखारामजी दोशी विशेष श्रेयके अधिकारी हैं ।

परिशिष्ट

हमने अनेक आर्ष प्रमाणोंसे पंचामृताभिषेक को पुष्ट किया कुछ श्रीमान् धीमान् हमसे बिगडे ! हमने उनसे सादर प्रार्थनाकी

कि आप मेरा खण्डन न कर मेरे लेखके युक्तिवाद व प्रमाणोंका खण्डन करें। क्यों कि हमें तत्व निर्णयकी दृष्टिसे वस्तु विचार करना चाहिये। केवल धांधलबाजी व पक्षपातसे हम जैनाचार्यों की कृतियोंको अप्रमाण कहकर टालजाय तो आचार्योंकी कृति तो मलिन नहीं होती अपितु हमारी बुद्धिका विकार अवश्य साबित हो जाता है। जिन दो तीन व्यक्तियोंने मेरे लेखका खण्डन करने के लिये प्रयत्न किया उन लोगोंने केवल पक्षपातवश इसी नीतिसे काम लिया कि ये आचार्य काष्ठासंघी हैं, सोमदेव आचार्य अप्रमाण कोटिमें गिनने योग्य है। पूज्यपादके द्वारा रचित जैनेंद्र-व्याकरणमें इसका विधान नहीं है। वट्टकेर विरचित मूलाचारमें इसके लिए अज्ञा नहीं है। अमुक वैद्यक ज्योतिष ग्रन्थ में यह आखरको पंडितजी दक्षिणी हैं। ये सब हमारे विरोधी मित्रोंकी प्रवलसे प्रवल युक्तियां है। इन युक्तियोंमें कितना महत्व है यह हमारे पाठक अच्छी तरह समझ सकते हैं दो एक दफे इस विषय पर हम या अन्य विद्वान् लिख भी चुके हैं। इसलिए वार २ वही पोच युक्तियोंके सामने आनेपर उनसे उपेक्षा करना ही विवेकियोंका कर्तव्य है। यद्यपि २-१ हर व्यक्तियोंको भलेही वाहरसे हमारा सप्रमाण लिखनेका विषय पसंद न आया हो तथापि अधिकांश विवेकी विद्वान् व श्रीमानोंने उसका आदर ही किया है। यही कारण है कि एक वर्षमें ही जैन वोधकमें आद्यंत निकलकर अलग ट्रेक्ट हजारोंकी संख्यामें निकालनेपर भी वाहरसे इतनी मांग आने लगी कि हमें उसकी दूसरी आवृत्ति निकालनी पड़ी। अस्तु।

हमने जिन २ आर्ष ग्रन्थोंका प्रमाण उद्धरण दिया है उनके अलावा और भी वहुतसे ग्रन्थों में इस विषयका विधान मिलते हैं विद्यानुवाद मंत्रशास्त्र, प्रीतिकर चरित्र, श्रीइंद्रनदियोगींद्रकृत प्राय-श्चित ग्रंथ आदि वहुतसे ग्रंथोंमें इसका विधान मिल सकता है।

अभी हाल में कारंजा जैन सीरिज से महर्षि देवसेनाचार्यका सावयधम्म दोहा नामक एक अपभ्रंश भाषाका ग्रंथ प्रकट हुआ है। जिसके हिन्दी अनुवाद और विस्तृत प्रस्तावना प्रोफेसर हीरा-लालजीने लिखी है। कृपया उसके पृष्ट नं. ५४ जरा उठाकर देखिये।

जो जिणु ण्हावइ घयपयहिं सुरहिं ण्हविज्जइ सोइ
सो पावइ जो जं करइ एहु पसिद्धउ लोइ ॥१९१॥[1]

इस गाथा का अर्थ प्रोफेसर साहव लिखते हैं कि जो जिन भगवान् को घृत और पयसे स्नान कराता है उसे सुर नहलाते हैं। जो जैसा करता है तैसा पाता है यह लोकमें प्रसिद्ध ही है।

इसके वाद गंधोदकाभिषेक आदिका विधान है। आगेचल-कर आचार्य आज्ञा देते हैं कि

सारंभइं ण्हवणाइयहं जे सावज्ज भणंति
दंसणु तेहि विणासियउ इत्थुण कायउ भंति ॥२०४॥

जो अभिषेकादि समारंभोंको सावद्य (दोषपूर्ण) कहते हैं

उन्होंने दर्शनका नाश कर दिया, इसमें कोई भ्रांति नहीं और भी कहते हैं। ॥२०४॥

पुण्णरासिण्हवणइयइं पाउलहु वि किउ तेण
विस कणयिइं बहुउवहि जलुणउ दूसिज्जई ॥जेण २०७॥

अभिषेकादि पुण्य राशिमें यदि किसीने लघुपाप भी कर लिया तो विषके एक कणसे समुद्र भरका जल दूषित नहीं हो सकता। ॥२०७॥

इसके बाद इसी ग्रंथके परिशिष्टमें प्रोफेसर साहबने कुछ दोहा क० प्रतिके दिये हैं जो इस विषयकेलिए बहुत महत्वके हैं।

जिणु ण्हावइ उत्तमरसहि सक्कर अम्मभवेहि।
सो नरु जम्मोवहि तरहि इत्थुमभंति करेहि॥

जो जिन भगवान्को शक्कर और आम्रके उत्तम रसोंसे नहलाता है वह नर जन्मोदधिको तारता है इसमें भ्रांति मतकरो।

जो घिय कंचन वण्णडइ जिणु ण्हावइ धरि भाउ॥
सो दुग्गइ गइ अवहरइ जम्मिमण हुक्कइ पाउ॥

जो कंचनवर्ण घृतसे जिन भगवान् को भाव धारणकर नहलाता है वह दुर्गति गतिको दूर करता है और जन्मभर उसे पाप नहीं लगता।

दुद्धें जिणवरु जो ण्हवइ मुत्ताहल धवलेण
सो संसारिण संभवइ मुच्चइ पावमलेण ।

जो मुक्ताफलके समान धवल दूधसे जिनवरको स्नान कराता है वह संसारमें उत्पन्न नहीं होता और पापमलसे मुक्त हो जाता है।

दुद्ध जडाडढि उत्तरइ दडवउ दहिउ पडंति
भवियहं मुच्चइ कलिमलहं जिणदिट्ठउ विहसंतु

दूधकी धारके पश्चात् शीघ्र दधि पडता हुआ तथा जिन भगवान्को देखकर प्रसन्न होता हुआ भव्योंको कलिमलसे मुक्त करदेता है।

सव्वोसहि जिण ण्हाहियइ कलिमल रोय गलंति
मणवंछिय सय संभवहि मुणिगण एम भणंति

सर्वोषधिसे जिन भगवान्को नहलानेसे कलिमलके रोग दूर हो जाते हैं और सैंकडों मनोवांछित सिद्ध होते हैं ऐसा मुनिगण कहते हैं।

इसके अलावा देखो–

चंद्रप्रभचरित्र [तेरहपंथी मंदिर वा बाबा दुलीचंदजीका भंडार] जयपुर

अभिषेकं जिनेशानामिक्षुसलिलधारया ।
यः करोति सुरैस्तेन लभ्यते स सुरालये ॥१०५॥

जिनाभिषेचनं कृत्वा भक्तया घृत घटैर्नरः।

प्रभायुक्त विमानस्य नायको जायते सुर ॥१०७॥

संस्नापये जिनान् यस्तु सुदुग्धकलशैस्त्रिधा।

क्षीर शुभ्रविमाने स प्रामोतिभोगसंपदं ॥१०८॥

येनार्हन्तोभिषिच्यन्ते पीनैर्दधिघटैश्शुभैः ॥

दधितुल्यविमाने स क्रीडयति निरंतरं ॥

सर्वौषध्या जिनेंद्राणां विलेपयति यो नरः।

सर्वरोगविनिर्मुक्त प्रामोत्यंगं भवे भवे ॥

स्नापयति जिनान् भक्तया चंद्रकरोज्वलैर्जलैः।

स नरो लभते रूपं पुंगवैरभिषेचनं ॥

ऋषि दामोदर प्रणीत चंद्रप्रभ

बृहन् नेमिचंद्रकृत श्रीपालचरित्र

झाग (जयपुर) जैनमन्दिर पत्र नं० ६

अथैकदा सुतासाच सुधी मदनसुंदरी।

कृत्वा पंचामृतैःस्नानं जिनानां सुखकोटिदं ॥८॥

+ + + +

कृत्वा पंचामृतैर्नित्यमभिषेकं जिनेशिनां।

ये भव्याः पूजयन्त्युचैस्ते पूज्यंते सुरादिभिः ॥

सिद्धचक्रं महायंत्रं समुद्धृत्य विचक्षणैः ।
पूर्वाचार्योपदेशेन हकराद्यैर्महाक्षरैः ॥
सौवर्णं रजतं ताम्रं यंत्रं वा क्रियते शुभं ।
जिनेंद्रप्रतिमाग्रे च पीठं संस्थाप्य निश्चले ॥
तद्द्वयं पंचपीयूषैः सतोयेक्षु घृतादिभिः ।
दुग्धैर्दधिप्रवाहैश्च स्नपयित्वा महोत्सवैः ॥
कर्पूरागुरु काश्मीर चंदनैलादि वस्तुभिः ।
सर्वौषध्या जलेनोच्चैः विलेप्य परमादरात् ॥
पुष्पवृष्टिं च कृत्वाग्रे जिनानां मूर्ध्नि भावतः ।
पूर्णैर्घटैरभिषिच्य नीरांजनविधिं तथा ।
कृत्वा भक्त्या सुभावेन महोत्सवमकारयत् ॥

आदिपुराणमें पञ्चामृताभिषेक ।

बहुतसे सज्जनोंका कहना है कि आदिपुराणके कर्ता भगवज्जिनसेनाचार्यने अपने ग्रंथमें पंचामृताभिषेकका उल्लेख नहीं किया है । यद्यपि 'महाभिषेक' 'जिनाभिषेक' ऐसा पद तो देखनेमें आते हैं इसी पर से हमने अपने लेखमें लिखा था कि जबकि अन्य आचार्योंकी इस विषय पर स्पष्ट आज्ञा हैं फिर जिनसेनाचार्यके इन शब्दोंका क्या अर्थ होना चाहिए सो विद्वान् विचार करें ।

परन्तु जिससमय भरत चक्रवर्ती समवशरण जाकर वहांपर अपने स्वप्नोंके फलको भगवान्से पूछकर अपने नगरको वापिस लौटे उस समय वहांपर जो क्रिया करने लगे उसका वर्णन है वहांपर एक श्लोक आया है कि—

गोदोहैः प्लाविताधात्री पूजिताश्च महर्षयः ।
महादानानि दत्तानि प्रीणितः प्रणयीजनः ॥८६॥
पर्व ४१ वां

उपर्युक्त श्लोकमें जो 'गोदोहैः प्लाविता धात्री' इन शब्दोंके मेरे ख्यालसे यही अर्थ होना चाहिये कि गायके दूधोंसे जहां भूमि गीली की गई'। यहां प्रकरण अशुभ स्वप्नोंके अनिष्ट फलकी निवृत्तिकेलिये उन्होंने अनेक धार्मिक शांतिक्रियाओंको की। उन धार्मिक क्रियावोंमें यह गायके दूधसे जमीन गीला करना लिखा है। वैष्णवोंके यहां चाहे ऐसी क्रियावोंका कुछ भी उल्लेख हो परंतु जैन ग्रंथोंमें धार्मिक क्रियावोंमें ऐसी क्रियावोंका उल्लेख नहीं है। और न जैनसिद्धांतानुसार इस क्रियाका कुछ प्रयोजन ही मालुम होता है। कृपया पंचामृताभिषेकके विरोधी विद्वान् इस क्रियाका प्रयोजन क्या वताते हैं और उसका अर्थ क्या करते हैं लिखें और साथ में यह वात भी ध्यानमें रखें कि इसके ऊपर का श्लोक क्या है ? देखिये।

शांतिक्रियामतश्चक्रे दुस्वप्नानिष्टशांतये ॥
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः ॥८५॥

ऊपरके श्लोकमें ही शांति क्रियाके प्रकरणमें और अभिषेक सत्पात्रदानादिके प्रकरणमें ही इसको रखा है एवं इस क्रियासे पुण्य प्राप्त होना बतलाया है सो इस गायके दूधसे जमोन गोले करनेकी क्रियाका खुलासा अवश्य होना चाहिए। यहां जैन धर्ममें दो ही वात हो सकती है कि एक सम्यक्त्वपूर्वक एक मिथ्यात्व-पूर्वक। यदि सम्यक्क्रिया है तो वह किस विधिमें शामिल होना चाहिए लिखें। यदि मिथ्यात्व है तो उसके लिए जैन धर्ममें स्थान क्यों? भरतचक्रवर्ति सदृश महापुरूप स्वप्नके अनिष्ट शांतिके लिए पुण्य प्राप्ति के लिये एवं धार्मिक क्रियाके रूपमें जो क्रिया करें वह मिथ्यात्व हो सकता है? यदि काई शुद्धाम्नाई पण्डित कृपया 'गोदोहै प्लाविता धात्री' इस वाक्यका सिद्धांतसमन्वित कोई अन्य अर्थ कर दिखायेंगे तो बडी कृपा होगी।

इतने स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए इस विषयपर और समर्थन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्या हमारे विरोधी मित्र निषेधमें एक भी ग्रन्थ का एक श्लोक भी दिखला सकते हैं?।

हम इस विषयपर विशेष कुछ न लिखकर हमारे प्रेमी पाठ-कोंसे इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि मनुष्यको सदाकाल पूज्य ऋषिमहर्षियों की अप्रतिभ बुद्धिके सामने अपने हठवाद को पुष्टि करने को धृष्टता नहीं करनी चाहिये। पूर्वाचार्योंकी आज्ञा पालन करते हुए देवपूजादि सत्कार्योंमें अपना जीवन व्यतीत कर-नेसे उसका जीवन आदर्श बनता है इतना ही नहीं वह परंपरासे अभ्युदय निश्रेयसको भी प्राप्त करता है। इति

सोलापुर
१५-२-१९३४) वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

—o—

पंचामृताभिषेक

ले० भंवरलाल चित्तौड़ा

पंचामृताभिषेक शास्त्रों के आधार पर होता है बहुत से मत कहते हैं कि जलाभिषेक की जगह पंचामृताभिषेक करने से कोई लाभ नहीं उलटा नुकसान होता है तो पंचामृत अभिषेक योग्य किस तरह से माने। पंचामृत में इक्षुरस होने से वो मीठा होता है इसका अभिषेक करने बाद जीवों की उत्पत्ति होने की सभावना है इसलिए पंचामृत का अभिषेक करना योग्य नहीं।

इस सम्बन्ध में इन्द्रनन्दि पूजनसार में लिखा है कि पंचामृताभिषेक प्रतिमाओं पर करने में कोई दोष नहीं। इसी तरह पंचामृताभिषेक के सम्बन्ध में आचार्यों व ग्रन्थों के नाम :

शास्त्रों के नाम—	आचार्यों के नाम—
उमास्वामी श्रावकाचार्य	उमा स्वामी
सागर धर्मामृत	पं० आशाधरजी
भाव संग्रह	देवसेन
भाव संग्रह	वामदेव
पद्म पुराण	रविसेण
आदि पुराण	जिनसेन
श्रावकाचार्य	वसुनन्दि

हरिवंशपुराण	जिनसेन
चन्द्रप्रभ चरित्र	पं० दामोदर
धर्म संग्रह श्रावकाचार्य	पं० मेधावी
षट्कर्मोपदेश माला	शिवकोटि
अकलंक प्रतिष्ठा तिलक	अकलंक
कुन्दकुन्द श्रावकाचार्य	कुन्द कुन्द
अभयनन्दि अभिषेक पाठ	अभयनन्दि
पद्मनन्दि पंचविंशतिका	पद्मनन्दि
नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा तिलक	नेमिचन्द्र
दान शासन	सोमसेन
नीति सार	इन्द्रनन्दि सि० च०
तत्वार्थ सूत्र टीका	श्री श्रुतसागर
श्रावकाचार्य	योगीन्द्र देव
यशस्तिलक	सोमदेव सूरि
षट्पहुंड श्रुतसागरी	कुन्द कुन्द स्वामी
श्रीपाल चरित्र	
षट् कर्मोपदेश	

इसके अतिरिक्त और भी कई प्रमाण हैं परन्तु जलाभिषेक का किसी भी आचार्य ने प्रमाण नहीं दिया।

आजकल आचार्यों ने नये-नये ग्रन्थ बनाकर पंचामृताभिषेक करने का निषेध किया है।

हाल ही में 'आर्षमार्ग' ग्रन्थ प्रकाशन हुआ उसमें पंचामृता-भिषेक करने का निषेध (खंडन) किया है पृ० ६४,६५,६६ तथा २३ में आचार्य श्री सुमति सागरजी ने लिखा है कि—

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्ध चक्रस्य पूजनम् ।
चक्रेशा विधिना दिव्यों जलैकपूँर चन्दनै ॥

—श्रीपाल पुराण

अर्थ—मैंनासुन्दरी ने अष्टान्हिका में भगवान का अभिषेक लल, कपूर, चन्दन के द्वारा किया और सातसौं योद्धा और श्रीपाल महाराज के ऊपर छिड़का जिसके प्रभाव से ७०० वीर और श्रीपाल का कुष्टरोग दूर हुआ । यह मनोवती खण्ड नामक ग्रन्थ में २४ पेज पर लिखा है । नं० २२ श्रीपाल चरित्र ग्रन्थ —

जिनेन्द्र दिव्य विम्वाना गीत नृत्य स्तवैः सह ।
नित्यं कुर्वते देवानां क्षीरो दाम्भोभिषेचनैः ॥

भगवान के दिव्य विम्ब का दूध, जल, गंध से अभिषेक नित्य देवों के द्वारा किया जाता था और नित्य गीत, नृत्य, स्तवन् के साथ भगवान का अभिषेक करते हैं ।

—आर्षमार्ग ग्रंथ पृ० ३४

हरिन्य मयी जिनेन्द्रार्चा तेषां बुघ्न प्रतिष्ठिताः ।

देवेन्द्राः पूज्यन्तिस्म क्षीरोदाम्भोभिषेचनैः ॥६८॥

—आदि पुराण २२

जिनका हरिरणं गर्भ है ऐसे जिनेन्द्र विम्व का जो बुद्धिमानों द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है। जिनकी पूजा इन्द्रादिदेव करते हैं। उन भगवान का दूध, दही, गंध, जलादिक से अभिषेक देव करते है—

पश्येन्नो जिन बिम्वस्य चर्चितं कुम कुमादिभिः।
पाद पाद्म दृयं भव्येः तव्द्दंद्य नैव धार्मिकैः॥

—सिद्धान्तसार प्रदीपिका अ० ५

जिस विम्व के चरण कमलों में गंध नहीं लगाया गया है उस विम्व की वन्दना भव्य धर्मात्माओं द्वारा नहीं करनी चाहिए अजितसेन कृत भूपाल स्त्रोत में लिखा है—

काश्मोर पंक हरिचन्दन सार सान्द्र।
निष्पन्दनादिर चितेन विक्षेपरणेन॥
अव्याज सौर मत नु सुमुख प्रतिमाः।
सं चर्चयामि भव दुःख विनाश नाय॥

ऊपर जो शास्त्रों का प्रमाण दिया गया है उसका उलटा अर्थ वताकर श्रावकों को भ्रम में डाल दिया है।

काश्मीर चन्दन, कपूर आदि मिलाकर किए गए एकत्र

द्रव्य को जो अचल प्रतिमा है उनके चरण कमलों पर लगाने से दुःखों का नाश होता है। इसीलिए मैं भी संसार के दुःखों को निवारण करने के लिए गंध लेपन करता हूं। आर्यमार्ग पृ० ५० में भी लिखा है—

महापुराण में निम्न गाथा है उसको देखकर आगम प्रमाण से श्रावकों को प्रवृति करनी चाहिये।

वर्णोत्तमत्वं यद्यस्य न स्यान्न स्यात्प्रकृष्टता।
अप्रकृष्टश्य नात्मानं शोधयन्ते परान्नपि॥

(आर्यमार्ग ग्रन्थ में पृष्ठ ६६ में पंक्ति २२ से पंचामृताभिषेक की पुष्टि की है कि यह प्रथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने चालू की थी।) तो आगम में पंचामृताभिषेक होना लिखा गया था, उसी अनुसार श्वेताम्बरों ने भी चालू किया।

प्रश्न—शास्त्रों में पंचामृताभिषेक करना लिखा है जो बुद्धिगम्य है वो विचार करें कोई कोई कहते है कि जैन धर्म वितरागता का पोषक है इसलिए जिन प्रतिमाओं ऊपर इक्षुरसादि चढ़ाने में वितरागता खन्डित होती है।

उत्तर—जैन धर्म वीतरागता की अभिवृद्धि करना धर्म है इसलिए पंचामृताभिषेक का निषेध करना कोई कारण नहीं है इसी रीति से अभिषेक करने से जैन धर्म का क्या उद्देश्य नष्ट होते हैं? अगर पंचामृताभिषेक से वीतरा-

गता नष्ट हो जावे तो जलाभिषेक-करने से वीतरागता नष्ट नहीं होती है। इसीलिए पंचामृताभिषेक करने से सरागता का कारण बनता है कारण कि जिन मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालना, प्रतिष्ठा कराना, वगैरह से सरागता का कारण कहते हैं या नहीं ? तो मात्र पंचामृताभिषेक को क्यों कहा ? मन्दिर निर्माणादि कार्यों में प्रभावना जरूरी है तो पंचामृताभिषेक भी प्रभावना अंग है। श्री सोमदेव सूरि ने कहा कि:—

श्री केतनवाग्वनिता निवासं
पुन्यार्जन क्षेत्र भूपास का नाम
स्वर्गापिर्गे गमने कहेतुं
निमाभिषेकं श्रयमाप्रयामि

इसी रीति समवशरण में तीर्थंकरों का अभिषेक होता है इसी तरह पंचामृताभिषेक निषेध करने का कारण नहीं है समवशरण में जल का अभिषेक तो होता ही है अगर निषेध स्वीकार होवे सभी प्रकार का अभिषेक का प्रतिबन्ध स्वीकार करना पड़ता है।

कषाय पाहुड़ (जयधवल) पृ० १०० से वीरसेन स्वामी ने पंचामृताभिषेक करना, अवलेप करना, संमाजन करना, चंदन लगाना, फूल चढ़ाना, धूप जलाना, चन्दन और पुष्प भगवान

के चरणों में चढ़ाना चाहिये। इसी तरह पूज्य देवसैन रचित भाव संग्रह में गाथा है कि:—चन्दन पुष्प की पूजा भगवान के चरणों में चढ़ाना चाहिये।

ब्रह्मचारी पं० सूरजमल जी ने 'स्त्री द्वारा जिनाभिषेकादि पर समाधान' नाम की पुस्तक लिखी वो जयपुर से प्रकाशित हुई है उसमें पंचामृताभिषेक की पुष्टि पृ० ९३ में की है और उल्लेख है कि आदि पुराण श्लोक ८५.८६ में दूध, दही, प्रक्षाल स्पष्ट लिखा है।

स्व० पं० बुद्धचन्दजी, भदाचन्दजी, ने कहा कि जयपुर में दो शुद्धाम्नाय का मन्दिर वनाये उसमें "तत्वार्थ वोध" नामक हिन्दो ग्रन्थ लिखा है तो लश्कर वाला सेठ कन्हैयालालजी गंगवाल तेरह पंथी हैं इन्होंने "यथार्थबोध" १९५१ में छपवाया उसका पृ० ९६-९७ पर गाथा ६० से ६५ पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात है कि पंचामृताभिषेक, लीलेफल, फूल नेवैद्य चढ़ाने का भी उल्लेख किया गया है।

योगीन्द्रदेव कृत श्रावकाचार्य की गाथा १८१:८४, दूध, दही से अभिषेक करने की पुष्टि की गई हैं। नेमिद श्रावकाचार में यही भावना श्लोक है। श्री जटानन्दि कृत वरांग चरित्र में सर्ग २३, २५, २६ गाथाओं में इसी तरह मल्लिसेन सूरी कृत नागकुमार चरित्र की ११२, ११३ गाथाओं में। सकलकीर्ति कृत श्रीपाल चरित्र में, वर्धमान कृत वरांग चरित्र में, १२, १६,

अभिषेक नहीं किया जाता किन्तु जिनमूर्ति का अभिषेक भी किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि साक्षात् अरहत और उनकी मूर्ति में अन्तर भी है। गुरु पूजा में आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी आते हैं। इन तीनों परमेष्ठियों की मूर्ति का स्पर्श हम स्नान से शुद्धि कर और शुद्ध वस्त्र पहनकर ही कर सकते हैं किन्तु साक्षात् आचार्य, उपाध्याय और साधु को हम बिना स्नान किये भी छू सकते हैं। अतः साक्षात् भगावन और उनकी मूर्ति में अन्तर तो मानना ही होगा।

यह कहना कि स्नान आदि तो राग परिणति है वीतरागी मूर्ति का अभिषेक करना उस मूर्ति को सरागी बनाना है यह भी गलत है। यदि इसको हम सरागता कहेंगे देव लोग अरहत भगवान का जो समव शरण बनाते हैं वह समव शरण भी सराग परिणति है। क्योंकि भगवान को जब वैराग्य हुआ तब उन्होंने अपने बड़े महलों का परित्याग कर दिया था। अपने राजशाही ठाठ जिसमें राजछत्र, चमर, स्वर्ण सिंहासन, बाग-बगीचे, सरोवर आदि सब कुछ आते हैं छोड़ दिये थे किन्तु इन्द्र ने पुनः उस वीरागता अवस्था में भी समव शरण जैसी महान विभूति के अन्दर उन्हें बैठा दिया। क्या इससे यह समझा जाय कि इन्द्र ने यह गलत काम किया अथवा इस समव शरण आदि की रचना के कथन को भट्टारकों की या पण्डितों की रचना कहा जाय?

वस्तुतः समव शरण आदि की रचना सौधर्मेन्द्र की भक्ति

प्रतीक है अरहंत भगवान का उससे कोई सरोकार नहीं। इसी तरह मूर्ति का अभिषक भी पूजक की भक्ति का प्रतीक ही समझना चाहिए। जिस तरह हम भगवान की मूर्ति को विराजमान करने के लिये भक्ति प्रेरित होकर बड़े ऊँचे सुन्दर और आलीशान मन्दिर वीतरागी मूर्ति को विराजमान करने के लिए बनवाते हैं। यहां यह शका की जा सकती है कि भक्ति से प्रेरित होकर फिर तो वस्त्रआदिक भी पहरा देना चाहिये। लेकिन नहीं भक्ति वहीं तक सीमित है जहां तक भगवान का मूल स्वरूप (वीतरागी नग्नता) सुरक्षित है। इसलिए वस्त्र पहनने आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

कुछ लोगों का कहना है कि मूर्तियों पर रजकण लग जाते हैं अतः मूर्ति को स्वच्छ रखने के लिये पूजन स्तवन से पहले प्रक्षाल की प्रक्रिया का विधान किया गया है क्योंकि प्रक्षाल का अर्थ है धोना साफ करना है। यह प्रक्षाल ही धीरे २ अभिषेक में बदल गया है। अतः अभिषेक शास्त्र सम्मत नहीं है। यह खोज भी हमारे सुधारक भाइयों की उसी तरह है जिस प्रकार डार्विन ने खोज की है कि मनुष्य पहले बन्दर था धीरे २ वह बन्दर अब मनुष्य की शकल में बदल गया है अतः देखा जाय तो मनुष्य पशु की औलाद है।

वास्तव में अभिषेक का अर्थ है मस्तक के ऊपर से जो जलधारा दी जाती है वह अभिषेक है, तथा मात्र चरणों पर जो

जलधारा डाली जाती है वह प्रक्षाल है। अभिषेक का विधि विधान लम्बा होता है अतः अभिषेक करने में काफी अधिक समय लगता है। श्रावक को जब कभी इसमें अधिक समय की गुंजायश नहीं होती तो वह मात्र भगवान के चरणों पर जलधारा डालकर अभिषेक की विधि को पूरा करता है अर्थात् अभिषेक की जगह प्रक्षाल करता है। लोक में भी चरण प्रक्षालन शब्द का प्रयोग होता है चरण अभिषेक शब्द का प्रयोग नहीं होता। यदि सिर्फ मूर्ति की सफाई के लिये ही प्रक्षाल का विधान है तो वहां भी खड़ा होगा भगवान अरहत के शरीर का या पैर का प्रक्षालन नहीं होता तो मूर्ति का प्रक्षाल क्यों होता है? इसलिए स्पष्ट है कि साक्षात् अरहंत और अर्हंत की मूर्ति की पूजा उपासना में अन्तर है। मूर्ति की पूजा बिना अभिषेक के नहीं होती। अभिषेक और प्रक्षाल शब्द का पूर्ण शब्दों में होना चाहिए अर्थात् "मस्तकाभिषेक" "पाद प्रक्षालन" इन शब्दों से सहज ही अन्तर समझ में आ जाता है। अतः प्रतिमाभिषेक जैन श्रावकों का सनातन सिद्धान्त है उसके बिना पूजा अधूरी है।

-: प्रश्नोतर :-

प्रश्नः-१ अभिषेक और प्रक्षाल में क्या अन्तर है ।

कोई अभिषेक और प्रक्षाल को एक ही बात समझते हैं कोई कहता है अभिषेक का अर्थ स्नान है और प्रक्षाल का अर्थ धोकर मूर्ति की सफाई करना है । जबकि यो दोनों ही बातें गलत है । वास्तव में अभिपक का अर्थ है मस्तक पर से जलधारा डालना और प्रक्षाल का अर्थ चरणों पर जलधारा डालना । अतः इन दोनों शब्दों का निर्माण इस प्रकार बनता है । पहला मस्ताभिषेक, दूसरा पाद प्रक्षालन । पूजा में समय और स्थिति के अनुसार ये दोनों ही प्रयोग होते हैं । पूजा करने के लिए समय की सुविधा और भक्ति का उल्लास है तो हमें विधि विधानानुसार जिन विम्ब के मस्तक पर जलधारा डालना चाहिये और यदि समय की कमी है किन्तु अभिषेक की प्रक्रिया का निर्वाह करना है तो भगवान के विम्व के चरणों पर जलधारा डालना चाहिये अतः साधारणरूप इससे पाद प्रक्षालन का भी अभिषेक कह दिया जाता है क्योंकि इस क्रिया से हमने अभिषेक की पूर्ति की है । लेकिन मूर्ति के साफ स्वच्छ करने की कोई भावना नहीं है न कहीं शास्त्रों ने ही लिखा है कि मूर्ति को स्वच्छ रखने के लिए अभिषेक क्रिया या प्रक्षाल क्रिया करना चाहिये ।

१७ श्लोकों में आराधना कथाकोष तीसरा भाग में पृ० ४२१ में। ३८,३९ श्लोक में इसका स्पष्ट विधान है। पं० भूदरदास जी कृत चर्चा समाधान में इसी विषय में विविध प्रश्नों के सप्रमाण सतर्क वाला उतर आया है। 'चर्चासागर' नामक ग्रन्थ में पृ० २१३ से शुरू होकर चर्चा १६८ पृ० २५२ सुधी वांचने से अनेक प्रमाण है। बीस पंथी आमनाय की तमाम क्रियाओं से शास्त्रोंक्त साबित किया है तथा इसी शास्त्र का पृ० ४५७ से ४६८ तक तेरह पंथ की उत्पति तथा विकास की गाथा है।

रांची के पं० मनोहरलाल शाह एक पंचामृताभिषेक पाठ इन्दौर से प्रकाशित कराया उसमें इस बावत और दूसरे अनेक प्रमाण लिखे हैं। इसको पढ़कर सच्ची श्रद्धा करने का अनुरोध है गृहस्थों को उपरोक्त क्रिया माफिक सावधानी पूर्ण समझ और तमाम विवेक पूर्वक करने से पून्य लाभ होता है, नहीं तो पुन्य के बदले पाप का बंध होता है।

चंदन तथा पुष्पों से पूजा किस प्रकार की जाय

चंदन से पूजन श्री जिनेन्द्र के चरणों को चर्च ने से होती है न कि सम्मुख चढ़ाने से पुष्प भी श्री जिनेन्द्र के चरणों पर ही चढ़ाना चाहिये। आचार्यों का यही मत है।

श्री वीरसेन स्वामी कषाय पाहुड़ जय घवल पत्र १०० राहवणों वलेण समज्जण, छुट्टावण, फुल्लारोहण धूवद्दहणादि

वावरेहि जीववाद्विविणा भावीहिविणा करगाणुव वती दोच।
इसके 'फुल्लारोहण' शब्द से पुष्प चढ़ाने का संकेत मिला है। अत: पंचामृत अभिषेक और पुष्प आदि चढ़ाना यह सव वैध है और शास्त्रानुसार है।

प्रतिमाभिषेक

जैन समाज में सुधारवाद के नाम पर जिस प्रकार मनमानी की जा रही है उसे देखकर अत्यन्त दुःख होता है। हर व्यक्ति यशोलिप्सा में पड़कर कुछ न कुछ नई बातें निकालता है और वे सब बातें लौकिक प्रसंगों को लेकर नहीं किन्तु धार्मिक क्रियाकाण्ड को लेकर ही निकालता है। जैन समाज में पूजा पाठ का क्रम आज से नहीं बल्कि संकड़ों वर्षो से प्रचलित है। उसी पूजा पाठ में अभिषेक भी सम्मिलित है। विना अभिषेक के पूजा नहीं होती। अतः पूजक को यह आवश्यक है कि वह पहले अभिषेक या प्रक्षाल अवश्य करे। इस सम्वन्ध में आचार्य सोमदेव ने लिखा है।

स्नवनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतस्तवः
षोढ़ा क्रियोदिता सन्दिः देवसेवा सुगेरिनांम्

अर्थात्-अभिषेक पुनः पूजन, पुनः भगवान की स्तुति, पुनः नमस्कार मन्त्र का जपन, फिर ध्यान, अन्त में जिनवाणी की आराधना या स्वाध्याय यह छह क्रियाएं देव पूजा के समय की जानी चाहिए।

दूसरी देव पूजा के समय सर्व प्रथम अभिषेक करने का स्पष्ट उल्लेख है। इन सुधारवादियों की एक सबसे बड़ी दलील यह होती है कि जिस ग्रन्थ में इनके अभिप्राय के विरुद्ध लिखा रहता है उस ग्रन्थ को ये भट्टारक या पण्डितों का रचित बताकर उसे अप्रभावित घोषित करते हैं। भले ही वे स्वयं शास्त्रीय ज्ञान को लेकर सर्वथा शून्य हों। ग्रन्थ तो अप्रमाणित तब कहा जा सकता है जबकि अन्य आगम ग्रन्थों से उसमें विरोध आता हो। लेकिन आज तक किसी सुधारवादी ने ऐसा कोई आगम प्रमाण नहीं दिया जिसमें प्रतिमा के अभिषेक का निषेध किया गया हो।

जहां तक युक्ति या तर्क की बात है उसमें भी हमारे ये सुधारवादी बन्धु बहुत पीछे हैं। नब मालूम नहीं किस आधार पर प्रतिमाभिषेक का निषेध करते हैं।

एक तर्क जो आम तौर पर दिया जाता है वह यह है कि भगवान वीतरागी है, साक्षात् अरहंत कभी अभिषेक नहीं करते कराते हैं। यहां तक कि आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी भी

स्नान नहीं करे तब उनकी प्रतिमा का अभिषेक क्यों किया जाता है ?

इस सम्बन्ध में हमारा उत्तर यह है कि साक्षात् अरहंत और उनकी मूर्ति इन दोनों में अन्तर है। यदि हम साक्षात् अरहंत से सभी बातों में मूर्ति की समता मानेंगे तो हम कभी मूर्ति की रथयात्रा नहीं निकाल सकते क्योंकि साक्षात् अरहंत कभी रथ में नहीं बैठते। अरहंत तो क्या आचार्य, उपाध्याय, और साधु भी रथ में नहीं बैठते तब भगवान की मूर्ति को रथ में क्यों बिठाया जाता है ? फिर तो भगवान की मूर्ति का विमान भी नहीं निकाला जाना चाहिए क्योंकि साक्षात् अरहंत कभी विमान में नही बैठते। मूर्ति को सिर पर रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जो रक्खा जाता है वह भी नहीं रक्खा जाना चाहिए क्योंकि साक्षात् अरहंत को कभी सिर पर या गोदी पर नहीं बिठाया जाता। अतः स्पष्ट है कि साक्षात् अरहंत और अरहंत की मूर्ति ये दोनों सर्वथा एक नहीं है। आगम में नव देवताओं का विधान है और हम उन्हीं नव देवताओं की प्रतिदिन पूजा करते हैं। वे नव देवता इस प्रकार हैं:—१. अरहंत, २. सिद्ध, ३. आचार्य, ४. उपाध्याय, ५. साधु, ६. प्रतिमा, ७. मन्दिर, ८. शास्त्र, ९. धर्म। इनकी पृथक-पृथक पूजा की जाय तो उन सबमें थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य होता है। उदाहरण के लिए जिन पूजा में वस्त्र नहीं चढ़ाया जाता किन्तु जिनवाणी (शास्त्र) की पूजा में वस्त्र या वेष्टन भी चढ़ाया जाता है। जिनेन्द्र का

प्रश्न—यहां पूछा जा सकता है कि केवल ज्ञान हो जाने के बाद अरहंत भगवान का कभी कोई अभिषेक नहीं होता न इन्द्र ही कोई अभिषेक करता है फिर यह अभिषेक व क्यों किया जाता है।

समाधान—यह साक्षात् अरहंत केवली का अभिषेक नहीं है किन्तु अरहंत केवली की मूर्ति का अभिषेक है। साक्षात् अरहंत केवली और उनकी मूर्ति में अन्तर है। यदि ऐसा नहीं है तो हम देव शास्त्र गुरु की पूजा करके चैत्य चैत्यालयों की पूजा क्यों करते हैं। चैत्य का अर्थ है प्रतिमा और चैत्यालय का अर्थ है मन्दिर। देव की और गुरु की पूजा करने में जब पञ्चपरमेष्ठी की पूजा गर्भित हो जाती है तब फिर देवमूर्ति की पूजा निरर्थक हो जाती है। लेकिन यह बात नहीं जैन शास्त्रों में देवताओं की पूजा का विधान है। उन नव देवताओं में-अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म जिन शास्त्र, जिन प्रतिष्ठा जिन मन्दिर ये सब आते हैं। इन नव देवताओं में अरहंत और जिन प्रतिमा इन दोनों को इसीलिए अलग-२ बताया है दोनों की पूजा विधि अलग-अलग है। अरहंत की पूजा अभिषेक पूर्वक नहीं होती है। और पंच परमेष्ठी में साधु परमेष्ठी में साधु परमेष्ठी आते हैं। इनमें जो साक्षात् साधु हैं उनके चरणों का स्पर्श हम स्नान न करके भी कर सकते हैं लेकिन साधु की प्रतिमा हो तो उसका स्पर्श हम बिना स्नान के नहीं कर सकते। अतः यह तर्क कार्यकारी नहीं है कि जब केवल ज्ञानी अरहंत

स्नान नहीं करते तो हम अरहंत प्रतिमा का अभिषेक कैसे कर सकते हैं। यदि साक्षात् अरहंत की तरह हम उनकी प्रतिमा को भी मानेंगे तो हमें भगवान की रथ यात्रा निकालने का विरोध करना पड़ेगा क्या साक्षात् भगवान कभी रथ में बैठते थे ? हम भगवान की मूर्ति को सिर पर रखकर एक वेदी से दूसरी वेदी तक नहीं ले जा सकते क्योंकि भगवान किसी के सिर पर नहीं बैठते थे। इसलिए साक्षात जिनेन्द्र की पूजा और जिनेन्द्र की मूर्ति की पूजा इन दोनों में कथंचित् अन्तर है।

प्रश्न—साक्षात् भगवान पूर्ण वीतरागी हैं, क्षीण मोही होने से उनमें राग द्वेष का कण मात्र भी नहीं है किन्तु अभिषेक करने से उनकी वीतरागता नष्ट होती है। अतः मूर्ति का अभिषेक उचित नहीं है।

समाधान—यदि अभिषेक में वीतरागता नष्ट होती है तो प्रक्षाल करने में भी वीतरागता नष्ट होती है क्योंकि मूर्ति को स्वच्छ रखने के लिए मूर्ति पर पानी भी डालना होगा और कपड़े से उनके शरीर को पोछना भी पडेगा। क्या साक्षात् अरहंत शरीर को पोछा जाना था। यदि नहीं तो प्रक्षाल भी क्यों करना चाहिये। हजारों वर्ष की प्राचीन प्रतिमायें जमीन के अन्दर पड़ी रही है उनका रूप वहां वही है। आचार्य अकलक के प्रतिमा पर एक धागा डालकर उसे रागी मानकर उसे लांघ गये थे।

प्रतिमा की समागता और वीतरागता कैसे रहती है यह बात तो प्राचीन आचार्य भी जानते थे फिर उन्होने अभिषेक का

विधान क्यों किया। हमें यह सब भी सोचना चाहिये। अभिषेक और प्रक्षाल दोनों की विधि में अन्तर है। मस्तकाभिषेक को मस्तक प्रक्षालन नहीं कह सकते किन्तु मस्तकाभिषेक और पाद प्रक्षालन कहने से ही दोनों शब्दों की यथार्थता मालूम होती है।

आगम विरुद्ध चर्चा-समाधान क्यों ?

(लेखक:-वि० व्याख्या० समाज रत्न श्री पं० छोटेलाल बरैया धर्मालंकार साहित्य भवन नयापुरा उज्जैन)

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली एक मासिक पत्रिका में "चर्चा समाधान" के प्रसंग में श्री कैलाशचन्द्रजी जैन फागी जयपुर ने परम पूज्य १०५ विदुषी रत्न श्री विशुद्ध मती माता जी (वर्तमान में उदयपुर) द्वारा दीपावली पूजन में पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके जिनेन्द्र भगवान का पूजन करने का लिखा है अन्य दिशाओं में पूजक को पूजन करने के विषय में शास्त्र की आज्ञा नहीं है और विदिशाओं की ओर मुख करके पूजन करने का निषेध किया है।

इस चर्चा के समाधान कर्त्ता ने लिखा है कि—"आचार्य प्रणीत किसी भी श्रावकाचार में जिनमें पूजन का वर्णन है ऐसा उल्लेख नहीं पाया जाता है" इत्यादि।

इस चर्चा के समाधान कर्त्ता का नाम नहीं दिया गया है इसलिये इसके समाधान कर्त्ता माननीय सम्पादक महोदय ही प्रतीत होते हैं अतः उनका यह लिखना आगम के अनुकूल नहीं है कि किसी भी आचार्य प्रणीत श्रावकाचार में जिनमें पूजन का वर्णन है ऐसा उल्लेख नहीं पाया जाता है। यह कितनी असत्य बात लिखी गई है। शास्त्रकारों ने पूजक के लिये दो दिशाओं की ओर मुख करने का ही विधान किया है।

देखिये—

पूर्वाशाभिमुखो विद्वानुत्तराभि मुखो ऽथवा।
पूजां श्रेयोऽथवा जाप्यंसुधीः कूर्यादहर्निशम्॥

(विद्यानुवाद लिखित पत्र ८३)

भावार्थ—पूर्व दिशा की ओर मुख करके अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके विद्वान पुरुष पूजा अथवा जप को सदैव करें यही श्रेयस्कर है।

विद्यानुवाद ग्रन्थ के अनुसार स्पष्ट है कि पूजक को पूजन के समय पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके पूजन करना चाहिये।

इतना ही नहीं मूल संघ के प्रमाणीक आचार्य श्री सोमदेव सूरि ने अपने यशस्तिलक चम्पू में पूजा के प्रकरण में स्पष्ट लिखा है कि—

उदङ् मुखं स्वयं तिष्टेतप्राङ् मुखं स्थापयेज्जिनम्
पूजाक्षणे भवेन्मित्यंयमी वाचंमक्रियः।

प्रस्तावना पुरा कर्मस्थापना सन्निधायनम्

पूजा पूजा फलं चेतिपद्विधं देवसेवनम्

(यशस्तिलक चम्पू पृष्ठ ३८२)

भावार्थ—पूजा करने वाला व्रती पुरुष उत्तर मुख होकर स्वयं खड़ा होवै और पूर्व मुख जिनेन्द्र भगवान को स्थापन करै, वचन को संयमित (मौन) रखकर सदैव इसी पद्धति से पूजन करै। प्रस्तावना–पुराकर्म, (जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक) स्थापना, सन्निधिकरण पूजा-पूजा का फल ये छह भेद देव पूजा के हैं। प्रति दिन इन्हीं छह भेदों से किया हुआ पूजन पूर्ण पूजन कहलाता है।

जो लोग पूजन के साथ अभिषेक क्रिया को आवश्यक नहीं समझते हैं उन्हें भी आचार्य सोमदेव के वचनों पर ध्यान देकर प्रति दिन अभिषेक पूर्वक पूजन करनी चाहिये।

यहाँ पर नित्य पूजा के प्रकरण में पूजा करने वाला उत्तर तरफ मुंह करके खड़ा हो इसका विधान किया गया है। यह प्रतिमा का मुख उत्तर हो तो पूजा करने वाला पूर्व मुख करके खड़ा हो यह अर्थ भी उपलक्षण से निकलता है। जैसा कि अन्य ग्रन्थों से स्पष्ट है।

इसके सिवाय और भी प्रमाण देखिये—

तिठ्ठेहि सयं पुज्जासमयेउदीचमुहो जिणंवुपुव्वमुहं

संठाप्प हवइ मोणेणिच्चं तस्साच्छिद्दाणेण

(इंद्रनंदि संहिता पत्र ३ पृष्ठ १)

भावार्थ—पूजा के समय में भगवान को पूर्व मुख स्थापन करें और स्वयं उत्तर मुख खड़ा हो तो तथा मौन धारण कर और वस्त्र से मुख को ढककर पूजा करें।

इसी तरह ध्यान करने के विषय में आचार्य श्री शुभचन्द्र लिखते हैं कि—

पूर्वाशरभिमुखः साक्षादुत्तराभिमुखो पिवा
प्रसन्न वदनो ध्याताध्यान ककाले प्रशस्यते

(ज्ञानार्णव पृष्ठ २८१)

भावार्थ—ध्यान करने वाला प्रसन्न चित्त होकर या तो पूर्व दिशा की ओर मुख करे अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करे। इस रीति से जो ध्यान किया जाता है वह प्रशंसनीय ध्यान कहा जाता है।

अब क्रिया कोष में पं० किशन सिंहजी की पंक्तियां भी पढ़िये—

पूरव दिश मुख करि बुधवान।
जाप करै मन वच–तन जानि।।
जो पूरव कदाचि टर जाय।
उत्तर सम्मुख कर चितलाय।।
दक्षिण दिशि पश्चिम दुहें यथा।
जाप करन वरणी सर्वथा।।

(मुद्रित पृष्ठ ६८)

भावार्थ—बुद्धवान पुरुष पूर्व दिशा की ओर मुख कर मन-वचन कार्य से जाप करे, यदि पूर्व दिशा की ओर मुख न कर सके तो उत्तर दिशा की ओर अवश्य करे।

पूर्व ओर उत्तर इन दो दिशाओं को छोड़कर दक्षिण दिशा ओर पश्चिम दिशा की ओर मुख करना जप के लिये सर्वथा वर्जित है। जैसे जप के प्रकरण में जप के लिये दक्षिण पश्चिम दिशा निषिद्ध है उसी प्रकरण में पूजा के लिये भी दक्षिण पश्चिम मुख करना वर्जित है।
देखिये—

पूरब उत्तर दिश सुखकार।
पूजक पूर्व करै मुख सार
जिन प्रतिमा पूरब जो होय।
पूजक उत्तर दिश को जोय ॥९५॥
जो उत्तर प्रतिमा मुख ठानि।
तो पूरब मुख सेवक जान
श्रीजिन चैत्य गेह में एम।
करै भविक पूजा धर प्रेम" ॥९८॥

(क्रियाकोष छपाहुआ किशनसिंह कृत पद्य ९८)

भावार्थ—पूजा करने वाले को पूरब ओर उत्तर मुखकर के पूजा करनी चाहिये। यदि प्रतिमा का मुख पूरब की ओर हो तो

पूजा करने वाला उत्तर मुख करके पूजा करैं। यदि प्रतिमा का मुख उत्तर की ओर हो तो पूजा करने वाला पूर्व करके पूजा करैं।

प्रतिमा का मुख पूर्व और उत्तर दो ही तरफ़ रहता है ऐसा विधान है।

प्रतिमा मुख पूरव दिश करैं।
अथवा उत्तर दिशि मुखधरैं।

(क्रिया कोप पत्र ६६)

स्पष्ट है कि जब प्रतिमा का मुख पूरब अथवा उत्तर की ओर होता है तो पूजा करने वालों के लिये भी उसी प्रकार विधान है देखो तेरह द्वीप पूजन विधान—

वेदी दक्षिण ओर उत्तर मुख जानिये
अथवा पूरव ओर सुसन्मुख भानिये
मौन गहे मुख ढांक प्रफुल्लित गात है
पूजत श्री जिन देव सुमन हरषात है

पृष्ठ ७

भावार्थ—वेदी दक्षिण ओर (यदि वेदी पूर्व मुख हो तो) उत्तर की तरफ मुख करके पूजा करनी चाहिये अथवा भगवान के सामने पूर्व की ओर मुख करके (वेदी यदि उत्तर मुख हो तो) पूजा करनी चाहिये।

श्री किशनसिंहजी कृत क्रिया कोष में तो पूजा के लिये ही क्यों, पूजा के निमित्त स्नान के लिये भी और वस्त्र पहनने के लिये भी पूर्व और उत्तर मुख करने का विधान हैं।

इसी सम्बन्ध में और भी धर्म संग्रह श्रावकाचार आदि ग्रन्थों के प्रमाण दिये जा सकते हैं। परन्तु अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त प्रमाण से भली भांति सिद्ध हो चुका है कि पूजा पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके ही करनी चाहिये।

पत्रिका के सम्पादक महोदयजी ने पूज्य श्री माताजी के द्वारा लिखे विधान को भट्टारकीय संज्ञा देकर उसे अप्रमाण ठहराने का प्रयास किया है परन्तु इन उपर्युक्त प्रमाण के विरुद्ध कथन आगम से बतावें तब तो सम्पादक महोदय का समाधान ठीक है नहीं तो उनका कथन अग्राह्य ही ठहरता है।

जब शास्त्रकारों ने पूजा और जाप्यादि कार्यों में पूर्व और उत्तर दिशा के अलावा अन्य दिशाओं की ओर मुख करना निषिद्ध बतलाया है तब इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उधर मुख करना हानि कारक है अन्यथा दो दिशाओं का ही विधान क्यों ?

परम पूज्य १०५ विदुषी रत्न श्री विशुद्ध मती माताजी ने जो दीपावली पूजन विधान सम्बन्धी दिशाओं का जो विवरण दिया है वह आगमानुकूल ही है उसमें विदिशाओं की ओर मुख-

कर के पुजा करने से जो दोप उत्पन्न होना उन्होंने जो लिखा है वही आगम में वतलाया है।

यथा—

तथार्च चंकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुख
दक्षिणस्यां दिशायां विदिशायां च वर्जयेत
पश्चिमाभिमुखीभूय पूजां कूर्याज्जिनेशिनाम्
यदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंततिः
अग्नेयां चेत्कृत पूजाधनहानिर्दिने दिने
वायव्यां संतति नैंविर्नैऋत्यां तु कुलक्षयं
ईशान्यां नैंव कर्तव्यांपूजा सौभाग्य हारिणी(इत्यादि)

(उमांस्वामी विरचित श्रावकाचार)

इस प्रकार जिनागम में जिन पुजन का विधान है अतः शुभ कार्यों के लिये दो ही दिशाएँ उत्तम मानी गई है। क्योंकि तीर्थंकर आदि भी इन दो ही दिशाओं की ओर मुख करके विराजमान होते हैं, इन दो दिशाओं को छोड़कर वाकी दिशाओं की ओर मुख करके भगवान के विराजमान होने अथवा शुभ कामों के करने का शास्त्रों में कही विधान नहीं आया है।

———

स्त्री प्रक्षाल शास्त्र सम्मत है

श्रावके षट कर्मों में देव पूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम तथा दान इन छः कर्मों का उल्लेख है। गृहस्थ स्त्री हो या पुरुष सभी के लिए इनका पालन आवश्यक है गृहस्थ को श्रावक भी कहा जाता है। श्रावक के ग्यारह प्रतिमाएं होती हैं जिनका पालन वह यथाशक्ति करता है। यथाशक्ति का अभिप्राय है कि पहली प्रतिमा से ग्याहरवीं तक किसी प्रतिमा के वृत वह ग्रहण कर सकता है। उसमें किसी प्रकार का कोई भेद भाव नहीं है। इन प्रतिमाओं में पहली से सात प्रतिमाएं जघन्य श्रावक की है। आठवीं नोवीं, दशमी प्रतिमाएं मध्यम श्रावक के लिए हैं तथा ११ वीं प्रतिमा उत्कृष्ट श्रावक की है इन तीनों श्रेणियों के श्रावक धर्म की स्त्री पुरुष दोनों ही श्रावक पालन कर सकते हैं इनमें कोई मतभेद नहीं है। जहां तक प्रारम्भिक कर्म देव पूजा का प्रश्न है यह देव पूजा स्त्री पुरुष दोनों के लिए समान रूप से ही करने का विधान है। यह देव पूजा ६ विधियों में सम्पन्न होती है, इसके लिए आचार्य सोमदेव ने उपास का चार में लिखा है—

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना संनिधापनम्
पूजा पूजाफलंचेति षड् विधं देव सेवनम्

अर्थः— १. प्रस्तावना, २. पुराकर्म, ३. स्थापना, ४. सन्नि धापन,
५. पूजा, ६. पूजा का फल,

१–प्रस्तावना का अर्थ है—भगवान के अभिषेक के पहले अभिषेक के प्रयोजन को बतलाना अर्थात् भगवान। आप शारीरिक लोप एवं मल आदि से रहित है, आपके चरण त्रैलोक्य पूज्य पहले से ही है अतः उनसे अधिक अन्य (जल आदि) कोई श्रेष्ठ नहीं है मोक्ष रूपी अमृत सुख का आप पहले ही पान कर चुके हैं अतः इस स्नान से आपको कोई लाभ नहीं है तब भी अपनोपुण्य प्राप्ति के लिए मैं यह आपका अभिषेक प्रारम्भ कर रहा हूं भला वृक्षों से फल की वाञ्छा करने वाला कौन पुरुष ऐसा है जो अपनी भलाई के लिए वृक्ष के प्रति प्रयत्न शील नहीं रहता है। यह प्रस्तावना है।

२–पुराकर्म—इससे अभिषेक की तैयारी की जाती है। अर्थात् रत्नादि सहित जल, कुश, अग्नि से भूमि को शुद्ध किया जाता है नागेन्द्र आदि देवों की दुग्ध आदि से संतृप्ति की जाती है, सभी दिशाओं में अक्षत पुष्प आदि का क्षेपण किया जाता है, तथा चतुष्कोण वेदी में ४ मंगलकलशों की स्थापना की जाती है।

३–स्थापना—इस प्रक्रिया में भगवान् जिनेन्द्र को अच्छे, ऊँचे, पवित्र सिंहासन पर स्थापित अर्थात् विराजमान किया जाता है।

४–सन्निधापन—इस प्रक्रिया में भगवान की मूर्ति को भावों से आत्मसात् किया जाता है अर्थात् यह जिन प्रतिमा साक्षात् अरहंत है, यह सिंहासन सुमेरु पर्वत है, यह स्वर्ण कलशों में भरा

हुआ जल वही क्षीर समुद्र का जल है, मैं अभिषेक करने वाला इन्द्र हूं। इस तरह कहकर भगवान का अभिषेक करे।

५-पूजा—अभिषेक से निवृत होकर भक्तिपूर्वक आठ द्रव्यों से भगवान की पूजा करना यह पूजा प्रक्रिया है।

६-पूजाफल—पूजा करने के बाद पूजा के फल (भोगाकांक्षा से रहित) की अभिलाषा करना जैसा कि हम लोग शांति पाठ में बोला करते हैं यह पूजा फल है।

देव सेवा के उक्त छः विधियों में अमुक विधि स्त्री न करे ऐसा कहीं उल्लेख नहीं है और न आचार्य सोमदेव ने ही उल्लेख किया है। गृहस्थ के षटकर्म स्त्री पुरुष दोनों के लिए समान हे। कहा जाता है कि स्त्रियों का शरीर अशुचि से युक्त रहता है वह मासिक धर्म से भी होती है इसलिए उसे अभिषेक नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा है तो फिर स्त्रियों को आहार दान भी नहीं देना चाहिये। पूजा करने में मासिक धर्म और आहारदान दें तो मासिक धर्म न होतो यह कैसे सम्भव है ? जिनेन्द्र भगवान की तरह साधु भी पञ्च परमेष्ठी में गर्भित होते हैं यदि अशुचिता रहती है तो दोनों विधियों (अभिषेक और आहार दान) में रहना चाहिये अन्यथा कहीं भी नहीं रहना चाहिये।

शङ्का : आहारदान में मुनि का स्पर्श नहीं होता किन्तु अभिषेक में तो भगवान का स्पर्श होता है अतः स्पर्श नहीं करना चाहिये।

समाधान : तब इसका यह अर्थ यह हुआ कि स्त्री भगवान का स्पर्श न करे किन्तु भगवान के मस्तक पर जल धारा दे सकती है जैसे मुनि का स्पर्श किये बिना स्त्री मुनि हाथ में खाद्य पदार्थ दे सकती है। क्या इसको हमारे सुधारक बन्धु स्वीकार करेंगे। हमारे सुधारवादी बन्धु एक यह भी तर्क देते हैं कि भगवान के जन्म समय इन्द्र ही अभिषेक करता है इन्द्राणी नहीं करती अतः सभी भगवान का स्पर्श नहीं कर सकती है। वहां इन्द्र के अभिषेक करने का अभिप्राय यही है कि उस अभिषेक में सौधर्म इन्द्र का ही नियोग होता है। वहां यदि कोई दूसरा इन्द्र भले ही वह किसी ऊपर के स्वर्ग का इन्द्र हो अभिषेक नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह भगवान के शरीर को छू नहीं सकता। जहां तक शरीर छूने का प्रश्न है सौधर्म स्वर्ग की इन्द्राणी अभिषेक के बाद स्वयं ही भगवान का शृङ्गार करती है गर्भगृह से इन्द्राणी ही भगवान को बाहर लाती है जिसका जो नियोग है वह प्रकृति प्रदत्त है अतः वह वही करता है। ऐसा नियोग यहां मध्यलोक में स्त्री पुरुष का नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि स्वर्ग में एक इन्द्र की मृत्यु के बाद उस स्थान पर दूसरा जन्म लेने वाला इन्द्र आता है तो पहले इन्द्र की सभी इन्द्राणियां उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है तब यदि एक मनुष्य के मर जाने के बाद उसकी पत्नियां यदि दूसरे पति को स्वीकार कर लेती हैं तो इसमें क्या बुराइयां है। तब जैनाचार्यों को विधवा विवाह को भी उचित कहना चाहिये था। यह कोई

तर्क नहीं है कि यदि भगवान के अभिषेक का यदि इन्द्राणी का वियोग नहीं है तो यहां भी स्त्री को अभिषेक नहीं करना चाहिये।

आश्चर्य तो यह है कि आज का सुधारक एक भी ऐसा शास्त्रीय उदाहरण उपस्थित नहीं कर सका है जिसमें स्त्री प्रक्षाल को निषिद्ध बताया है। न कोई ऐसी शास्त्रीय घटना को उद्धृत कर सका है कि अमुक स्त्री ने अनुचित जानकर भगवान का प्रक्षाल नहीं किया।

यह कहना कि जैन धर्म में जो पूजा का महत्व है वह अभिषेक का नहीं नितान्त अनुचित एवं गलत है। वस्तुतः देव पूजा विना अभिषेक के नहीं होती, ऊपर हम लिख चुके हैं कि देव पूजा के लिए प्रस्तावना आदिक छः विधियां आवश्यक है और जो देव पूजा इस तरह नहीं करता है उसके लिए लिखा हैं—

"देव पूजामनिर्माय मुनीननुप चर्यंच
यो भुञ्जीत गृहस्थ सन् समुञ्जीत परं तमः"

जो देव पूजा (विधिपूर्वक) न करके एवं साधुओं की उपचर्या न करके भोजन करता है वह पाप का ही भक्षण करता है।

इससे सिद्ध होता है कि देव पूजा का महत्व तभी है जब वह भगवान के अभिपेक पूर्वक की जाती है। अन्यथा देव पूजा का निर्वाह करना मात्र हैं वास्तविक पूजा नहीं है। अभिपेक के सम्बन्ध में कुछ लोगों का यह भी कहना है कि हम तो प्रक्षाल

का नाम ही सुनते आये हैं। चूंकि भगवान की प्रक्षाल से ही सफाई हो जाती है। लेकिन जो प्रक्षाल से मात्र भगवान की सफाई हो समझते हैं उन्होंने वस्तुतः भगवान को ही नहीं समझा। आ० सोमदेव उपास कार चार के अनुसार हम ऊपर लिख आये हैं कि प्रस्तावना कर्म में अभिषेक का प्रयोजन आदि बताया जाता है वहां भगवान के ऊपर मैल है उसकी सफाई करने आया हूं यह बात नहीं है, भगवान तो सब तरह मैल रहित हैं, मैं तो अपनी पुण्य की वृद्धि के लिए यह अभिषेक या प्रक्षाल करता हूं अतः भगवान के प्रक्षाल का अर्थ भगवान की सफाई करना यह भगवान का अवर्णवाद है।

वास्तव में देखा जाय तो प्रक्षाल अभिषेक की भावनाओं में कोई अन्तर नहीं है जिस भावना से अभिषेक किया जाता है उसी भवना से प्रक्षाल भी किया जाता है अर्थात् दोनों ही भक्ति से पुण्य वृद्धि के लिए किये जाते हैं। अन्तर मात्र द्रव्य से (बाहिरी रूप से) है। अभिषेक अर्थ है मस्तक पर से जलधारा डालना, तथा प्रक्षाल का अर्थ है मात्र चरणों पर जलधारा डालना। कभी नित्य क्रियाओं मे ऐसे भी प्रसङ्ग आते है कि हम समयाभाव के कारण उनको संक्षेप में कर लेना चाहते हैं। जिससे नित्य क्रिया में कमी भी न आवे और उनका पूर्णयतया निर्वाह भी हो जाय। पूजक को जब अनिवार्यता होती है तो अभिषेक का कार्य जो देर में सम्पन्न होता है उसे भगवान के चरणों पर जलधारा डालकर पूरा कर लेता है, अन्यथा मस्तक पर धारा डालकर विधि विधान

से अभिषेक करता है अतः प्रक्षाल अनिवार्यता के अभिषेक क्रिया का ही पूरक है। लेकिन भगवान की सफाई करने का अभिप्राय न प्रक्षाल में है न अभिषेक में है वह तो उत्कृष्ट भक्ति का ही प्रारुप है जो हर गृहस्थ और श्रावक को करना चाहिये।

शास्त्रों में स्त्री प्रक्षाल का कहीं निषेध नहीं है और न आज तक कोई माई का लाल उसका प्रमाण दे सका है। आज के सुधारवाद का एक ही केन्द्र विन्दु हैं, यदि प्राचीन मान्यताएं 'हां' करती है तो हम 'न' कहेंगे और यदि प्राचीन मान्याताएं 'न' करती है तो हम 'हां' करेंगे। प्राचीन मान्यताओं में यदि जातिवन्धन है तो हम मनुष्य जातिरे कैद कह कर उसका निषेध करेंगे। यदि भगवान के अभिषेक में भी स्त्री पुरुष, का कोई बंधन नहीं है तो हम उस वन्धन के प्रति हां करेंगे अर्थात् स्त्री-प्रक्षाल नहीं कर सकती पुरुष ही कर सकता है, कोई-कोई तो प्रक्षाल-मात्र का ही निषेध करते है।

शास्त्रों में अनेकों स्थानों पर स्त्री द्वारा प्रक्षाल न करने की चर्चा है सबसे पहले तो मैंनासुन्दुरी का प्रमाण लीजिए। उसने सिद्ध मन्त्र का अभिषेक कर अपने पति के कुष्ट को मिटाया। यह अभिषेक स्वयं मैंनासुन्दरी ने किया। एक सज्जन हम से कहता है कि मन्त्र का ही तो अभिषेक किया मूर्ति का नहीं। अर्थात् उसके दिमाग के मन्त्र को स्त्री छू सकती है मूर्ति को नहीं इसके अतिरिक्त स्त्री प्रक्षाल के अन्य भी उदाहरण है जो इस प्रकार है।

पहले हमने मैना सुन्दरी का उदाहरण दिया था कि अपने पति श्रीपाल का कुष्ट मिटाने के लिए सिद्ध यन्त्र का अभिषेक किया। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाण देखिये—

अथैकदा नुता सा च सुधी मदन सुन्दरी

कृत्वा पञ्चामृतैः स्नानं जिनानां सुख कोरिदे

श्रीपाल चरित्र, श्री नेमीचन्द रचित

विनम्र गुणवती उस मदन सुन्दरी (मैना सुन्दरी) ने पञ्चामृत से भगवान जिनेन्द्रों का अभिषेक किया।

इसी प्रकार आराधना कथा कोप में वृषभ सेनाका वर्णन करते हुए लिखा है—

तथा वृषभ सेना च प्राप्य राज्ञी पदं महत्

दिव्यान् भोमान् प्रभुंजाना पूर्व पुण्य प्रसादनः

पूजयंती जगत्पूज्यान् जिनान् स्वर्गाप वर्गदान

दिव्यैरष्ट महाद्रव्यै, स्नानदिभि रुज्वलैः

अर्थ—उस प्रकार औषधदान के प्रभाव से वृषभ सेना ने पूर्व कृत पुण्य के प्रभाव से महारानी पद को प्राप्त किया। एवं स्वर्ग तथा मोक्ष को देने वाले जगत् के पूज्य जिनेन्द्र भगवान की दिव्य अष्ट द्रव्यों से पूजा एवं अभिपेक करती थी। यहां स्पष्ट शब्दों में स्त्री प्रक्षाल का विधान किया है, और वह जिन प्रतिमा का अभिषेक किया है। हरिवंश पुराण में लिखा है—

इत्युक्तो नोययद्वेगात् सारथी रथमाय सा
जिनवेश्म तमस्थाप्य तौ प्रविष्टौ पदक्षिणौ
क्षीरेक्षु रस धारौघैं दघ्यौष घ्युद का दिभिः
अभिषिच्य जिनेन्द्राचामर्चितां नृसुरासुरेः

जिनसेनाचार्य कृत

अर्थ—गन्धर्व सेना की आज्ञा से सारथी ने जिन मन्दिर के पास रथ लाकर खड़ा कर दिया। वहां मन्दिर में प्रवेश कर पहले प्रदिक्षणा दी। वाद में दूध, इक्षुरस, दही, सर्वौंषधि, जल आदि से पंचामृत अभिषेक किया।'

यहां पञ्चामृत अभिषेक का भी विधान किया हैं और वह गन्धर्व सेना स्त्री के द्वारा किया गया है।

शास्त्रों में इन्द्राणियों द्वारा भी अभिषेक का कथन मिलता है। यथा—

ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्य शच्चादयः
सुगन्धितनु पूर्वकैः मृदुकरा उद्वर्तनम
प्रचक्र रभिषेषनं शुभपयोभिरुच्कैर्घरैः
पयोधरभरैर्निजैंखि कुचैः समर्वानतैः ॥

हरिवंश पुराण

अर्थ—इसके वाद इन्द्राणी तथा देवियों ने भगवान के सुगन्धित शरीर का कोमल हाथों से उद्वर्तन किया तथा शुद्ध जल से भरे हुए उन्नत कलशों से भगवान का अभिषेक किया।

अर्थात् जब सौधर्म आदि इन्द्र १०८ कलशों से भगवान नेमीनाथ का अभिषेक कर चुके तब इन्द्र की शची अर्थात् महा-देवी एवं देवियों ने भगवान के शरीर का उबटन किया एवं कलशों से पुनः नहलाया। इसमें स्पष्ट इन्द्राणी द्वारा भी भगवान के अभिषेक करने की चर्चा है, तब यह बात झूठो पड़ जाती है कि इन्द्र ही अभिषेक करता है इन्द्राणी नहीं।

जिनदत्त चरित्र में आचार्य गुण भद्र ने लिखा है—

गृहीतगन्ध पुष्पादि प्रार्थना सपरिच्छदा
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनायम्
त्रिःपरीत्य ततःस्तुत्वां निशंच चतुराशया
संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति संसदि

अर्थ—एक दिन जवंयशा (सेठ की पत्नी) गन्ध पुष्प आदि पूजा की सामग्री लेकर प्रातः काल ही जिन मन्दिर गई। वहां भगवान की प्रदक्षिणा देकर स्तुति की तथा अभिषेक एवं पूजा कर मुनियों के समुदाय में चली गई।

यहां भी स्त्री प्रक्षाल की स्पष्ट चर्चा है। इन्द्राणी द्वारा अभिषेक का और भी प्रमाण देखिये—

इन्द्राणि प्रमुखा देवयः सद्वर्णें खलेपनै
चक्रु रुद्वर्तनं भक्तया करै कोमल पल्लवै
महीध्रभिव तं नाथं, धरैर्जल धरैरिव
अभिष्यि समारवया जिन पूजामिधा क्रिया

पर्व ३ पद्मपुराण

इसी तरह आदि पुराण में वहां स्वयं प्रभा रानी का आख्यान दिया है वह उनके पूजा पाठ का इस प्रकार उल्लेख किया है—

अर्थ—इन्द्राणी जिनमें प्रमुख थी ऐसी अनेक देवियों ने अपने कोमल कर पल्लवों से भगवान शरीर का चन्दन से उबटन किया तथा कलशों से भगवान का उसी तरह अभिषेक किया जिस प्रकार मेघ पर्वतों के ऊपर जल बरसाते हैं।

यहां पर भी इन्द्राणी द्वारा अभिषेक का ऊल्लेख किया है। यह अभिषेक भी साधारण नहीं था वल्कि लगभग उसी प्रकार का था जिस प्रकार इन्द्र ने किया था क्योंकि उपमालंकार से यह वात वताई है कि जिस तरह मेघ पहाड़ों पर वरसते हैं उस तरह भगवान के ऊपर कलशों के जल की वर्षा हुई।

और भी देखिये—

गन्धैं सुमधिभिः सान्द्रै रिन्द्राणी मात्रमी शिशुः
अवलिय च लिपद्भिरिवाभोर्दंस्त्रि विष्टपम्

अर्थ—इन्द्राणी ने सुगन्धित द्रव्य से भगवानके शरीर का अव लोपन किया मानो उसने तीन लोक का ही अवलेप किया है। अर्थात् उस गन्ध से तीनों लोक सुगन्धित हो गये। यहां भी इन्द्राणी द्वारा भगवान के शरीर के लेपन का उल्लेख है और लेपन विना स्पर्श के होता नहीं है अतः इन्द्राणी ने भगवान का स्पर्श किया है।

तत्प्रतिष्ठाभिषेकानो महापूजा प्रकुर्वंती
मुहुः स्तुति भिरथ्यां भिः स्तुवंतो भक्तिमोहितः
ददानि पात्र दानानि मानयंती महा मुनीन्

आदि पुराण पर्व ४२

अर्थ—सुलोचना रत्नों की प्रतिमा का निर्माण कराकर उनकी प्रतिष्ठा कराती थी तथा भक्तिपूर्वक अभिपेक एवं पूजा करती थी, पात्र दान देती थी इस तरह मुनियों का आदर करती थी ।

इस प्रकार अनेक ग्रन्थों में स्त्री द्वारा अभिषेक करने के आर्स प्रमाण उपलब्ध है जबकि अभिपेक निपेधके प्रमाण शास्त्रों में कहीं नहीं है । उनका निपेध तो केवल पंथ के आग्रह को लेकर है जबकि शास्त्रों में कहीं तेरह वीस पथ की चर्चा नहीं है हमारा यह आशय नहीं है कि कौन पन्थ सच्चा है और कौन पन्थ झूंठा है । कोई मात्र शुद्ध जल से ही अभिषेक करता है इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है कोई अभिपेक करता ही नहीं है तो इसमें भी क्या आपत्ति है । यह तो अपनी-अपनी श्रद्धा और भक्ति है । हमारा कहना यही है । भगवान के अभिषेक का पुरुष और स्त्री दोनों को ही अधिकार है । अशुचि अवस्था में दोनों को ही अधिकार नहीं है, जहां तक स्त्री को मोक्ष पाने की बात है उसका श्रावक धर्म से कोई सम्बन्ध नही है । हां श्रावक धर्म में सभी को एकसा अधिकार है । लेकिन अधकारों के अन्तर्गत भी थोड़ा २ अन्तर है । वह मात्र द्रव्य से है । वह द्रव्य से भी अशक्यानुष्ठान के कारण है । लेकिन भगवान के अभिषेक में स्त्री पुरुष को समान अधिकार है । ("जैन दर्शन" पत्रिका से)

स्त्री प्रक्षाल शास्त्र सम्मत है

(स्त्री प्रक्षाल निषेध की समीक्षा)

हमारे धर्म बन्धुओं ने हमें एक पुस्तक १६ फरवरी ८४ की प्रकाशित "स्त्री प्रक्षाल निषेध" शीर्षक भेजी है। जिसमें स्त्री प्रक्षाल निषेध के नाम पर उटपटांग दलीलें दी गई है जिनका स्त्री प्रक्षाल निषेध से कोई सम्वन्ध नहीं है साथ ही स्त्री प्रक्षाल निषेध के सम्वन्ध में एक भी आगम प्रमाण का उल्लेख नहीं है। मात्र प्रारम्भ में इतना ही कहा गया है कि यह मूल संघ दिगम्बर जन आगम्नाय के विरुद्ध हो हमने प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पंक्ति देखी पर निषेध में कहीं कोई आगम प्रमाण नहीं उपस्थित किया गया उल्टे स्त्री प्रक्षाल से सम्वन्धित जो प्रमाण मिलते हैं उनका खण्डन अनाड़ीपन से किया गया है।

किसी भी वात को सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिये जाते हैं उन तर्कों में अव्याप्ति अतिकाप्ति आदि कोई दोष नहीं होना। साध्य साधन के अविनाभाव सम्वन्ध को व्यापित कहा जाता है जैसे कहीं दूर पर्वतादि स्थानों में धुंआ दिखाई देता है तो उससे अग्नि का सद्भाव सिद्ध किया जाता है क्योंकि धूंआ विना अग्नि के नहीं होता, इस प्रकार का इस पुस्तक में स्त्री प्रक्षाल नहीं कर सकती इसमें अविनाभाव से सम्वन्ध रखने वाला कोई हेतु उपस्थित नहीं किया गया। इस पुस्तक में स्त्री प्रक्षाल निषेध

में जितने भी हेतु दिये गये हैं वे सब उसी प्रकार से दूषित हैं जिस प्रकार कोई कहे कि "गाय पशु है क्योंकि उसके सींग होते हैं" लेकिन यह हेतु या तर्क गलत है यदि पशु के सींग होना आवश्यक है तो घोड़ा, गधा, हाथी, ऊँट, कुत्ता, बिल्ली आदि ये कोई पशु नहीं कहा जा सकेगा फिर इनको क्या कहा जायेगा ? मनुष्य या कीड़ा मकोड़ा। स्त्री प्रक्षाल निषेध में जो तर्क दिए गए हैं वे सब इसी प्रकार के तर्क हैं। यहां हम उन सभी तर्कों का पर्दाफाश करते हैं:—

१. तर्क– दि० जैन मूल संघ आम्नाय में स्त्री की मुक्ति नहीं आती।

उत्तर– दि० जैन मूल संघ आम्नाय में कहीं भी स्त्री मुक्ति का निषेध नहीं है, प्रत्युत उसके प्रमाण है।

२. तर्क– सम्यग्दृष्टिजीव किसी भी स्त्री पर्याय में जन्म नहीं लेता क्योंकि शास्त्रकारों ने उसे निंद्य पर्याय माना है।

उत्तर– कोई भी सम्यग्दृष्टिजीव पञ्चम काल में उत्पन्न नहीं होता क्योंकि इस काल को कलिकाल या निंद्य काल कहा गया है अतः पञ्चम काल का जीव अभिषेक नहीं कर सकता। लेखक पञ्चम काल की पैदायश है अतः उसे प्रक्षाल नहीं करना चाहिये।

तर्क–३. स्त्री के उत्तम संहनन नहीं होता।

उत्तर– पञ्चम काल के मनुष्य के भी उत्तम संहनन नहीं होता अतः उसे प्रक्षाल नहीं करना चाहिये।

४. तर्क– स्त्री के छठा गुणस्थान नहीं होता।

उत्तर– किसी भी स्वर्ग के देव को पांचवां गुणस्थान भी नहीं होता अतः उन्हें अकृत्रिम चैत्यालयों में जाकर अभिषेक नहीं करना चाहिये।

५. तर्क– स्त्री १६ वें स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयकादि में नहीं जाती।

उत्तर– पञ्चम काल का मनुष्य आठवें स्वर्ग से ऊपर नहीं जाता अतः उसे अभिषेक नहीं करना चाहिये।

६. तर्क– स्त्री के निःशङ्क ध्यान नहीं होता।

उत्तर– यहां निःशङ्क ध्यान से मतलब मोक्ष प्राप्ति के योग्य ध्यान से है। क्योंकि इसके ऊपर की गाथाओं से स्पष्ट होता है कि स्त्री को मोक्ष क्यों नहीं होता उसका कारण यह है कि अमुख कारणों से उसका एकाग्रचित नहीं होता।

७. तर्क– स्त्री वस्त्र त्यागकर नग्न दिगम्बरी दीक्षा धारण नहीं कर सकती, उसके सर्वावधि, परमावधि और मनः पर्याय ज्ञान नहीं होता।

उत्तर– वस्त्र त्याग कर नग्न दिगम्बर तो स्वर्ग के देव भी नहीं हो सकते और न उन्हें परमावधि, सर्वावधि मन, पर्यय ज्ञान होते हैं अतः उन्हें भी अभिषेक नहीं करना चाहिये। उक्त तीनों ज्ञानों को तो पञ्चमकाल का मनुष्य भी नहीं प्राप्त कर सकता।

८. तर्क– स्त्री आर्यिका (उपचरित महाव्रती) होने पर भी खड़ा आहार नहीं ले सकती।

उत्तर– पञ्चम काल का पुरुष नग्न दिगम्बर होकर भी एकता विहारी नहीं हो सकता अतः पुरुष प्रक्षाल न करें।

९. तर्क– स्त्री द्वादशाङ्ग की ज्ञाता नहीं हो सकती।

उत्तर– भद्र बाहुश्रुत केवली के बाद कोई द्वादशाङ्ग का ज्ञाता नहीं हुआ और न अब होगा, अतः अब सबसे प्रक्षाल के अधिकार छीन लेना चाहिये।

१०. तर्क– स्त्री ६३ शला का पदधारी नहीं हो सकती।

उत्तर– पञ्चमकाल में कोई ६३ शला का धारी नहीं हो सकता अतः उन्हें भी प्रक्षाल का अधिकारी नहीं होना चाहिये।

११. तर्क– स्त्री १४ कुलकर, २४ कामदेव, ११ रुद्र, ९ नारद भी नहीं हो सकती।

उत्तर– पञ्चमकाल का व्यक्ति भी २४ कामदेव, ११ रुद्र, ९ नारद नवनारद का पद नहीं प्राप्त कर सकता इसलिए उसे भी प्रक्षाल का अधिकार नहीं होना चाहिये।

१२. तर्क– स्त्री के यज्ञोपवीतादि संस्कार नही होते।

उत्तर– आज के युग में भी किसी जैन के संस्कार नहीं होते। ९५% जैन यज्ञोपवीत नहीं पहनते, उन्हें भी अधिकार अभिषेक का नहीं होना चाहिये।

१३. तर्क– स्त्री गणधर नहीं हो सकती उसके से भिन्न श्रोतृत्व और चरणादि ऋद्धियां नहीं होती।

उत्तर– आज पञ्चमकाल का मनुष्य न गणधर हो सकता है न कोई ऋद्धिधारी हो सकता है अतः वह प्रक्षाल का अधिकारी नहीं है।

१४. तर्क– स्त्री को मुनि संघ (भट्टारकादि तक) में भी को पद नहीं दिया जाता इसीसे किसी भी पद्य वली में स्त्री का नाम नहीं पाया जाता।

उत्तर– स्त्री को गणिनी पद दिया जाता है जो आर्यिका संघ की प्रमुख होती है। गणिनी का अर्थ है गण (समुदाय) की अधिकारी। हां मुनि संघ को पदावली में उनका नाम नहीं आता ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आर्यिका संघ की पदावली में किसी मुनि का नाम नहीं आता।

१५. तर्क– 'न' स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति'। स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं होती।

उत्तर– "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" अर्थात् जहां स्त्रियों का समादर होता है वहां देवता रमण करते

है यह लोकोक्ति भी उसी तरह प्रसिद्ध है जैसे कि ऊपर तर्क में लिखा है न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति अतः उसे प्रक्षाल का अधिकार होना चाहिये।

१६. तर्क– पुत्री का होना आनन्दकारी नहीं माना जाता इसीसे गृहस्थ तीर्थङ्करों के पुत्र नहीं होते।

उत्तर– पुत्री का होना सर्वथा आनन्दकारी नहीं है ऐसा कोई नियम नहीं, यह तो अपनी २ इच्छा और निष्ठाओं पर निर्भर है। बहुत प्राचीन काल में कन्या के विवाह में बड़ी कठिनाई होती थी। राजाओं में परस्पर युद्ध होता था। इसलिए कन्या कष्टदायी प्रतीत होने लगी। अन्यथा कन्या ही बहु बनती है अतः बहु को कौन नहीं चाहता था।

तीर्थंकर के पुत्रियां नहीं होती है यह तो एक प्राकृतिक नियोग की बात है। तीर्थंकर अपने माता पिता के अकेले ही पुत्र होते हैं तब क्या इसका यह अर्थ लिया जाय कि अधिक पुत्र होना आनन्दकारी नहीं माना जाता इसलिए तीर्थंकर के कोई भाई बहिन नहीं होता। आदिनाथ तीर्थंकर को पुत्रियां यदि आनन्द-कारी नहीं होती तो उन्हें प्यार से अपने दायें बायें घुटनों पर क्रमशः बैठाकर अक्षर विद्या और अंक विद्या क्यों सिखाते? प्राकृतिक नियोग जैसा कुछ होता है वैसी ही परिस्थिति होती है। स्वर्ग के देव मुनि नहीं बन सकते तो क्या वे मुनिधर्म को आनन्दकारी नहीं मानते, यह सोचने की बात है। तीर्थङ्कर तो

गृहस्थ अवस्था में अपने मां बाप को भी नमस्कार नहीं करते तो क्या मां बाप उनके लिए आनन्दकारी नहीं है ? फिर तो मुनि को वे नमस्कार नहीं करते इसका अभिप्राय भी यही होगा कि मुनि उनके लिए आनन्दकारी नहीं है। हमारे मिलने वाले एक परिचित जोहरीजी हैं अच्छे धर्मात्मा और मिलनसार हैं उनके दो पुत्रियां हैं पुत्र कोई नहीं है। जब भी उनसे चर्चा होती है तो कहते हैं कि मैं तो अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूं कि मेरे कोई लड़का नहीं है। बेटे बड़े उद्दण्ड होते हैं धन, सम्पदा, जमीन जायदाद आदि के लिए पुत्र पिता को मार देते है कम से कम लड़कियां तो यह जुल्म नहीं करती। अतः पुत्र और पुत्रियों में कौन आनन्दकारी है कौन नहीं। यह सब परिस्थितियों पर निर्भर है। मुस्लिम राज्य के काल में राजपूत के लड़की होती तो उस मार दिया करते थे इसलिए कि उनकी विवाह शादियों को लेकर आपस में महान युद्ध होते थे। अतः सन्तान पुत्र हो या पुत्री भला किसको प्यारी–आनन्दकारी नहीं होती लेकिन परिस्थितियों वश वे दुःखकारी भी हो जाती है और सुखकारी भी होती है।

१७. तर्क– स्त्री का एक ही पति होता है विवाह होते ही उसका गोत्र बदल कर पति का गोत्र हो जाता है, सन्तान का अधिकारी उसका पति ही होता है वह नहीं, इसीसे संतान अपने परिचय के लिए वल्दियत लिखाता है मादरियत नहीं।

उत्तर– स्त्री का एक ही पति होता है यह तो स्त्री के पक्ष

में उसकी श्रेष्ठता का ही द्योतक है। इस अपेक्षा से तो उसे ही प्रक्षाल का अधिकार मिलना चाहिये वहु पत्नी वाले पुरुष को नहीं। यदि स्त्री एक पति भी न रखे और अपने वालपन से ब्रह्मचारिणी वनकर रहे तो वह उस एक पति वाली से भी श्रेष्ठ है। एक पति रखना या ब्रह्मचारी वनकर रहना यह तो इन्द्रिय संयम का द्योतक है,वहुत पति या वहुत पत्नी जिसके होती वह तो संयम से भ्रष्ट ही है।

पत्नी का गोत्र वदल कर पति का हो जाता है तो गोत्र रहता तो उच्च ही है फिर उससे उसका प्रक्षाल करने न करने से क्या सम्वन्ध है। यदि पति किसी अत्यन्त नीच चान्डाल की कन्या को पत्नी वना लेता है तो फिर किसके गोत्र में अन्तर आयेगा या नहीं क्या वह पुरुष प्रक्षाल करने का अधिकारी होगा ?

जहां तक सन्तान को परिचय के लिए वल्दियत की वात है उसमें भी सव जगह एक सा ही नियम नहीं है। विदेशों में (अमेरिका आदि में) सन्तान अपना परिचय माँ के नाम से देती है अर्थात् वहाँ की सन्तान मादरियत ही लिखती हैं वल्दियत नहीं।

१८. तर्क– स्त्री के पगड़ी नहीं वन्धती पति के पट्ट पर उसका पुत्र वैठता है।

उत्तर– पगड़ी वन्धने का अर्थ है पति की सम्पत्ति का अधिकारी वनना। अगर पत्नी के कोई पुत्र नहीं है और

पति मर गया तो सम्पत्ति की अधिकारिणी उसकी पत्नी ही होगी। लेकिन इस पगड़ी बन्धने न बन्धने से प्रक्षाल के अधिकार अनाधिकार का क्या सम्बन्ध है ? यह तो व्यर्थ की कसरत है। कई पुत्र जिस स्त्री के होते हैं उन पुत्रों में सबसे बड़े को पगड़ी बन्धती है। तब क्या वे सब छोटे भाई प्रक्षाल आदि के अधिकारी नहीं हैं ?

१६. तर्क– स्त्री बरात में नहीं जाती, श्मशान घाट में नहीं जाती।

उत्तर– स्त्री बरात में इसलिए नहीं जाती कि उसके चले जाने पर घर के काम काज को कौन सम्भालेगा जबकि विवाह में काम बहुत बढ़ जाता है। स्त्री और पुरुष में स्त्री घर का काम सम्भालती हैं और पुरुष बाहर का। यदि पुरुष यह स्वीकार करे कि घर का काम चौका, बर्तन, झाड़ा बुहारी हम करेंगे तो स्त्रियों को बरात में जाने से क्या एतराज है। और आजकल तो स्त्रियां भी जाने लगी है। आजकल स्थानीय बरातें २–४ घण्टे की होती है स्त्रियों को भी बरात में जाने की सुविधा मिल जाती है।

२० तर्क– स्त्री की शारीरिक स्थिति भी बड़ी हीन है प्रतिमास ४ दिन तक रजस्वला होती है, योनिस्राव तो प्रायः नित्य बना रहता है, गुह्याङ्गों सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति होती रहता है, ९ मास तक गर्भ भार वहन करती है।

उत्तर– स्त्री की जिस शारीरिक हीन स्थिति का वर्णन किया है वह वृद्ध स्त्रियों में नहीं होता तब तो वृद्ध स्त्री प्रक्षाल की अधिकारिणी लेखक की दृष्टि में होना चाहिये। अतः वृद्ध स्त्री प्रक्षाल सिद्ध हो जाता है। जहां गुह्याङ्गों में लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति की बात है। ये लब्ध्यपर्याप्तक जीव पुरुषों के शरीर में भी होते हैं भले ही वे उसके गुह्याङ्गों में न हो अतः फिर तो पुरुषों को भी प्रक्षाल नहीं करना चाहिये।

जिन स्त्रीयों के निरन्तर योनिस्राव होता रहता है, हर माह में बार बार रजस्वला भी होती है, नौ मास बालक को गर्भ में रखते है वे यदि प्रक्षाल के अधिकारिणी नहीं तो मुनि को आहार दान की भी अधिकारिणी नहीं हो सकती। इधर तो योनिस्राव हो रहा है उधर वे आहार दे रही है क्या यह सम्भव है?

२१. तर्क– स्त्री पर पुरुष को छू नहीं सकती इसीलिये मुनि की वन्दना भी ५–७ हाथ दूरी से करना बताया है। इसके आधार पर यही नियम चैत्य वन्दना में समझना चाहिये।

उत्तर– चैत्य और साक्षात साधु में अन्तर है यह तो लेखक भी स्वीकार करते हैं, साधु के निकट से वन्दना करने में साधु में तो और स्त्री में दोनों में विकार होना सम्भव है लेकिन चैत्य वन्दना में चैत्य के विकार का कोई प्रश्न नहीं हैं रहा स्त्री में विकार, वह भी प्रतिमा के अभिषेक के समय स्त्री में कोई विकार नहीं होता।

यदि फिर भी विकार की सम्भावना है तब तो स्त्री साधु को आहार भी नहीं दे सकती क्योंकि वहां तो नग्न साधु सामने खड़ा हैं तो स्त्री में विकार को पूरी २ सम्भावना है। यदि वह मुनि से ६-७ हाथ दूर खड़ी होगी तो मुनि को आहार कैसे दे सकेगी? यह भी सोचना चाहिये।

स्त्री पर पुरुष को छू नहीं सकती इसमें लेखक का पर पुरुष से क्या अभिप्राय हैं! क्या पुत्र, भाई, पिता, बाबा पर पुरुष में आते हैं। यदि आते हैं तो मां, बहिन, पुत्री, नाती इन्हें क्यों छूती है। इसका कहीं निषेध नहीं है। हां जो ऐरा गैरा आदमी है या जिससे किसी प्रकार का कोई कौटुम्बिक सम्बन्ध नहीं है उसे नहीं [illegible]ना चाहिये। लेकिन चैत्य का स्पर्श इनमें किसी में गर्भित नहीं [illegible]। चैत्य (प्रतिमा) न कोई पर पुरुष है न गैर है पद्मासन से बैठे हुए नग्नता भी दिखाई देती है ऐसी स्थिति में यदि स्त्री चैत्य का प्रक्षाल करती है तो कोई हानि नहीं है। यदि हानि है तो फिर नग्न मुनि की तरफ स्त्री को देखना भी चाहिये, यदि नग्न मुनि घर के दरवाजे पर आवे तो किवाड़ बन्द कर लेना चाहिये। क्या इन बातों के लेखक स्वीकार कर सकेगें। स्त्री जो मुनि को स्पर्श नहीं करती उसका मुख्य कारण यही है कि स्त्री के स्पर्श से मुनि में कोई विकार न आ जावे इसलिए वह मुनि को स्पर्श नहीं करती है लेकिन प्रतिमा को छूने पर प्रतिमा में विकार आ जायगा इसकी कोई सम्भावना प्रतिमा के नहीं है अतः स्त्री द्वारा प्रक्षाल करने कोई बाधा नहीं है।

यह ठीक है कि पुरुष का और स्त्री की सीमायें अलग २ है पर इन अलग २ सीमाओं के कारण प्रक्षाल में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्यथा फिर तो कोई सिर फिरा व्यक्ति यह भी कह सकता है कि इन अलग सीमाओं के कारण स्त्री प्रतिमा का पूजन नही कर सकती फिर दूसरा सिर फिरा व्यक्ति यह भी कह सकता है कि स्त्री पुरुष की सीमाएं अलग २ होने से स्त्री चैत्यालय में नहीं जा सकती फिर कोई तीसरा सिर फिरा व्यक्ति यह भी कह सकता है कि सीमाएं अलग होने से सभी मुनि को आहार दान नहीं दे सकती। तव क्या इन सव बातों को ठीक मान लेना चाहिये यदि नहीं तो इसको भी क्यों माना जाए कि सीमाएं अलग २ होने से सभी प्रतिमा का प्रक्षाल नहीं कर सकती।

सीमायें तो सवकी अलग ही होती है। स्त्री पुरुष की तो वात ही क्या है पुरुष की सीमायें अलग २ होती हैं। भोग भूमि के पुरुषों की जो सीमायें हैं वे कर्म भूमि के मनुष्यों की नहीं चतुर्थ काल कर्म भूमि के मनुष्यों का जो सीमायें हैं पञ्चमकाल के मनुष्यों की सीमायें नहीं है पञ्चमकाल के मनुष्यों की जो सीमाएं वे छठेकाल की नहीं। चतुर्थकाल और पंचमकाल के मनुष्यों की जव सीमायें अलग-अलग हैं तव प्रक्षाल का अधिकार चतुर्थकाल के मनुष्यों को ही होना चाहिये पंचमकाल के मनुष्यों को नहीं। यदि उन दोनों काल के पुरुषों की सीमाओं में अन्तर होने पर भी प्रक्षाल के अधिकार में कोई अन्तर नहीं पड़ता तव फिर पुरुष और स्त्री की सीमाओं में अन्तर होने पर भी प्रक्षाल

करने के अधिकार में कोई अन्तर नहीं पड़ता और आगम में ही इसका कहीं उल्लेख मिलता हैं कि पुरुप प्रक्षाल न करे उल्टा शास्त्रों में तो समर्थन ही मिलता है जैसा कि हम आगे लिखेंगे।

लेखक ने अपनी पुस्तक में २१ हेतु दिये हैं जिसमें स्त्री को पुरुप से हीन बताता है और उनके आधार पर स्त्री को प्रक्षाल के अयोग्य बताया है उसकी हम समीक्षा कर चुके हैं। और प्रत्येक हेतु को दूषित कर चुके हैं।

अब यहां हम पुरुषों की हीनता के भी कुछ उदारण देते हैं जिन्हें पढ़कर पाठक निर्णय करे क्या इस हीनता के आधार पर उन पुरुपों को भी प्रक्षाल से वंचित रखा जाय ? वे हेतु इस प्रकर हैं:—

१– पुरुप मरकर सातवें नरक भी जाता है जबकि स्त्री छठे नरक तक ही जा सकती है।

२– स्त्री तीर्थंकर जैसे महापुरुपों को ६ मास तक अपने उदर में रखती है, पुरुप नहीं।

३– स्त्री ही तीर्थंकर के जन्म से सम्बन्धित १६ स्वप्नों को देखती है, पुरुप नहीं।

४– कन्या पिता के पैर नहीं छूती, पिता कन्या और जमाता के पैर छूता है।

५– "धर्म" शब्द का प्रयोग पत्नी के साथ ही (धर्मपत्नी) होता है पति के साथ (धर्मपति) नहीं होता।

६– छप्पन कुमारी देवियां तीर्थंकर की माता की सेवा करती है, तीर्थंकर के पिता की नहीं।

७– प्रसूति घर में इन्द्राणी को ही जाने का अधिकार है इन्द्र को नहीं।

८– जिनवाणी को 'माता कहकर सम्मान दिया जाता है 'जिन' को पिता नहीं कहा जाता।

९– "यत्र न यँस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" जहां स्त्रियों का आदर होता है वहीं देवता रमण करते हैं यहां स्त्री के आदर को सम्मान दिया गया है पुरुष के आदर को नहीं।

१०– घर की मालकिन स्त्री होती है पति नहीं 'गृहं हि गृहणीर्मतुः'

११– अभिषेक के बाद इन्द्राणी ही तीर्थंकर का शृङ्गार करती है, इन्द्र नहीं।

१२– आर्यिका को ही औपचारिक मुनि कहा जाता है एलक को नहीं।

१३– पुरुषों का शिशु अवस्था में पालन–पोषण स्त्रियां ही करती है पुरुष नहीं।

१४– विवाह शादीयों, गीत नृत्य आदि की प्रधानता स्त्रियों की ही होती है पुरुषों को नहीं।

१५- भक्तामर स्त्रोत में "नान्या सुतंत्वदुपमं" जननी प्रसूता कह कर तीर्थंकर की माता की प्रशंसा की गई है तीर्थंकर के पिता को नहीं।

१६- स्त्री का एक ही वार विवाह होता है और एक ही पति होता है, पुरुष कई विवाह करता है, कई पत्नियां रखता है। अतः स्त्री वर्ग प्रारम्भ से ही संयम की आराधना करता है पुरुष नहीं।

१७- स्त्री के विना घर के रख रखाव को समशान भूमि के समान वताया गया है।

१८- "गृहं हि गृहिणीमाहुः न कुद्यकरि संहतिम्" घर पत्नी को ही कहा जाता है, 'ट पत्थरों के ढेर को नहीं', न पुरुष को घर कहा जाता है।

इस प्रकार पुरुषों को स्त्रियों से हीन वताकर उन्हें भी कहा जाय कि वे प्रक्षाल करने के अधिकारी नहीं हैं तो इसमें क्या तुक हैं ? यह ठीक है कि समानाधिकरण के नाम पर सवको एक जैसे अधिकार नहीं दिये जा सकते, लेकिन विपमता के आधार पर सवके उचित अधिकार को छीना भी नहीं जा सकता। प्रतिमा के प्रक्षाल को स्त्री पुरुष का समाधिकार है, हाँ जिनमें पिण्ड शुद्धि नहीं है वे चाहे स्त्री हो या पुरुष दोनों को ही प्रक्षाल का अधिकार नहीं है। प्रक्षाल को लेकर ऊपर जो विपमताएं कही गई उससे तो जिन पूजा जिन मन्दिर प्रवेश में फिर विपमता लाना होगा।

पुरुष उक्त १६ बातों से स्त्री से हीन है इसलिए उसे प्रक्षाल करने का अधिकार नहीं है स्त्री को है।

लेखक ने पुस्तक के पृष्ट ६ पर लिखा है—"पुरुषों में असच्छूद्र तो जिन प्रतिमा के अभिषेक एवं अष्ट प्रव्य पूजन के योग्य ही नहीं माने गये हैं। सच्छूद्र अष्टद्रव्य पूजन कर सकते हैं किन्तु अभिषेक नहीं कर सकते।

समीक्षा—सच्छूद्र अष्टद्रव्य से पूजन करे प्रतिमाभिषेक न करे इस बारे में लेखक ने कोई आगम प्रमाण नहीं दिया, केवल मन गढ़न्त भावों से लिख डाला है। सच तो यह है लेखक को मालूम नहीं कि सच्छूद्र किसे कहते हैं और असच्छूद्र किसे कहते हैं सच्छूद्र अष्ट द्रव्य से पूजन कर सकता है तो वह प्रतिमा का अभिषेक भी कर सकता है क्योंकि सच्छूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन ३ वर्णों में से ही होते हैं न कि चौथे शूद्र वर्ण में। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय चर्चा इस प्रकार है—

सकृत् विवाहनियता व्रतशीलादि तत्परा
द्विजातयः त्रिवर्णोत्था सच्छूद्रा कृषिजोविका:"

अर्थ—जिनके यहां कन्या का एक ही वार विवाह होता हैं अर्थात् विधवा विवाह नहीं होता, व्रतशीलादि का पालन करते हैं, द्विजाति है, तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य) में किसी एक वर्ण के हैं किन्तु खेती आदि से आजीविका करते हैं वे सत् शूद्र हैं।

इससे स्पष्ट है कि सत् शूद्रों की पिन्ड शुद्धि रहती है अतः पूजन अभिषेक वे दोनों ही कर सकते हैं। उनके लिए अभिषेक का कहीं निषेध नहीं है।

तर्क– सोमदेव सूरि ने लिखा है—

दीक्षा योग्य स्त्रयो वर्णो चत्वारश्च विधो चिता

अर्थात्—मुनि दीक्षा के योग्य तीन वर्ण ही है और मुनि को आहारदान के योग्य चारों वर्ण है। यही बात पं आशाधरजी ने अनगार धर्मामृत में लिखी है।

समीक्षा–सोमदेव सूरि ने तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को दीक्षा के योग्य माना है और चौथा वर्ण जो शूद्र हैं उसकी अनेक विधाएँ भेद है उसमें उचित भेद, अर्थात् सच्छूद्र हैं वह भी दीक्षा के योग्य है। श्रुत सागरी टीका में विधा का अर्थ दान किया गया है। यदि दान भी अर्थ लिया जाय तब भी वह सच्छूद्र अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वर्णो में से किसी एक वर्ण वाला हो तो दीक्षा ले सकता है। लेकिन लेखक ने तो यह लिखा है शूद्र दान दे सकता है यह गलत है। आशाधरजी ने इस सम्बन्ध में कहां क्यां लिखा है इसका कोई उदारण पेश नहीं किया।

तर्क- अगर न समझो और किसी पक्षान्धता से स्त्री को अभि-
षेक की छूट दी गई तो फिर सच्छूद्र को भी इसकी छूट
देना होगा। क्योंकि इस विषय में दोनों की स्थिति
समान है।

समीक्षा-यह पक्षान्धता और ना समझी का ही कारण है कि स्त्री
द्वारा प्रक्षाल का निषेध किया जा रहा है जबकि शास्त्रों
में इसका कही निषध नहीं है न लेखक शास्त्र प्रमाणों
से प्रक्षाल निषेध को सिद्ध कर सका है। सच्छूद्र भी
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में से ही होते। मात्र आजीविक-
वंश उन्हें सच्छूद्र कहा गया है। आज भी ऐसे जैन हैं जो,
खेती बाड़ी करते हैं तथा दूसरे सट कर्मों को करते हुए
भी अभिषेक पूजन आदि करते हैं। सत्शूद्रों में पिण्ड शुद्धि
है जाति संकरता नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में
उत्पन्न होती है दीक्षा भी ले सकते है अतः वे अन्य ब्राह्म-
णादि की तरह पूजन अभिषेक कर सकते हैं।

लेखक ने तिलोप पण्णाति आदि ग्रन्थों का उदाहरण देते
हुए लिखा हैं—

तर्क- तिपोल पण्णाति आदि ग्रन्थों में लिखा है कि—देव उत्पन्न
होते ही जिन भवनों में जाकर क्षीर सागर के जल से वहां
की प्रतिमाओं का अभिषेक करती है। नन्दीश्वर द्वीपस्थ
जिन प्रतिमाओं का अभिषेक करती है। इनमें देवियों
इन्द्राणी द्वारा अभिषेक नहीं बताया।

समीक्षा—स्वर्गों में यह सब नियोग (प्राकृतिक नियम) के आधार पर होता है इसलिए नहीं कि देवियां अशुद्ध होती है, निरन्तर योनिस्त्राव रहता है या स्त्री जाति है इसलिए वे अभिषेक नहीं करती। अगर शुद्धता अशुद्धता या परिणामों के आधार पर देखना है तो देवों के चतुर्थ गुणस्थान से आगे के गुणस्थान नहीं होते किन्तु मनुष्य स्त्रियों के पांचवां गुणस्थान होता है इस दृष्टि वे देवों से भी ऊंची है जब वे देव अभिषेक कर कर सकते हैं तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती। वास्तविक स्थिति यह है कि देव प्रकृति के अधीन है जो कुछ उन्हें उस पर्याय में मिला है उसमें वे इधर उधर नहीं हट सकते। अतः यह कहना कि वहां की इन्द्राणियों को अभिषेक का अधिकार नहीं है। इन्द्र ने चमर ढोरने के लिए ६४ यक्षों को नियुक्त किया यक्षिणियों को नहीं यह अनाड़ीपन है।

स्वर्गों में एक देव के अनेक देवियां होती है कम से कम ३२ तो होते ही है। जब वह देव मरता है तब उसके स्थान पर दूसरा देव जन्म लेता है और वह उन सब देवियों का पति हो जाता है। क्या वे यह जानबूझ कर अपना दूसरा पति बना लेती है? क्यों नहीं बाद में ब्रह्मचर्य से रहती? लेकिन यह सब उनके आधीन नहीं है प्रकृति या नियोग के अनुसार उनको यह सब करना पड़ता है अतः सिद्ध है कि देव या इन्द्र जानबूझकर चमर ढोने के लिए यक्षियों को नहीं यक्षों को भेजते हैं या स्वयं अभिषेक करते हैं अपनी

देवियों को नहीं करने देते। यह तो उनका नियोग है। देवों में जो मिथ्यादृष्टि देव उत्पन्न होते हैं उन्हें भी जन्म लेने के साथ ही जिन बिम्ब दर्शन करने और प्रतिमाभिषेक करने जाना होता है। उन मिथ्यादृष्टि देवों से जिन्हें देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धान नहीं वे देवियां अच्छी जो सम्यग्दृष्टि है और देवशास्त्र गुरु पर श्रद्धान करती है फिर भी देवियां का नियोग नहीं है कि वे अभिषेक करे, सौधर्म स्वर्ग की इन्द्राणी जो सम्यग्दृष्टि है और एक भवतारी है अर्थात् अगले भव में मोक्ष अवश्य चली जायेगी उसे भी अभिषेक करने का नियोग प्राप्त नहीं है तो क्या वह उन मिथ्यादृष्टि देवों से बुरी है जिन्हें भगवान पर श्रद्धा भी नहीं है फिर भी वे जन्म से ही भगवान का अभिषेक करते हैं। अतः यह थोती दलील है कि इन्द्राणी स्त्री पर्याय वाली होने से अभिषेक की अधिकारिणी नहीं है।

उसके कुछ उदाहरण देखिये:—

"चतुर्विंशति तीर्थेशां स्नपन प्रपणीयते"
पूर्णेदथदशमे वर्से तदुद्यापन माचरेत"
शांतिकंवाभिषेक वां महान्तं विधिवत्सृजेत्

इसका अर्थ इस प्रकार है:—सुगंधदशमी व्रत में तीर्थंकरों का स्नपन (अभिषेक) किया जाना चाहिए। व्रत के पूर्ण होने पर अथवा व्रत लेने के बाद दसवें वर्ष में उस व्रत का उद्यापन करें तथा शांति विधान और महान अभिषेक विधि पूर्वक करें।

तर्क—यह रचना संस्कृत की और विक्रम की तेहरवीं शताब्दी की है, श्रुतसागरवर्णीकृत हैं, वर्णी का अर्थ ब्रह्मचारी

होता है, वे आचार्य नहीं थे अर्थात् उनकी लिखी हुई बातें प्रमाण-भूत नहीं है।

उत्तर—रचना संस्कृत की है और विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का है इससे उस रचना की अप्रमाणिकता का कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखक को तो संस्कृत का भी ज्ञान नहीं है तेरहवीं शताब्दी छोड़ कर एक शताब्दो पूर्व के भी नहीं है फिर तुम्हारी बातों का कैसे प्रमाण मान लिया जाये, कि प्रतिमा का अभिषेक करना स्त्री के लिए उचित नहीं है, निषंध में तुमने तो सारी पुस्तक में एक भी प्रमाण उपस्थित नहीं किया, फिर तुम्हारी बात कैसे मान ली जाये। श्रुतसागरजी वर्णी थे, लेकिन तुम तो वर्णी भी नही हो फिर कैसे तुम्हारी बात को स्वीकार किया जाये।

आजकल के हमारे बन्धु पल्लव ग्राही पाण्डित्य के आधार अपनी बात तो कहते जायेगें लेकिन उसके विषय के लिए यदि प्रचानी कोई विद्वानों के प्रमाण उपस्थित किये जाये तो उनके पास एक ही युक्ति है, अमुक विद्वान पांच से सात सौ वर्ष ही पुराने है, अमुक विद्वान भट्टारक थे अमुक आर्चार्य जैनाभास हैं। अभिप्राय है, जहां उनके अनुसार प्रमाण मिल जाये, वे सब ग्रन्थ और ग्रन्थ कर्त्ता प्रमाणिक है और उनके विरुद्ध मिले तो वे भट्टारक काष्ठासंघी जैनाभास, अथवा अर्वाचीन है। इसी विद्या पर वे अपनी बात लिखा करते है। परन्तु पुस्तक भी ऐसी होवे।

अभिषेक के सम्वन्ध में उक्त श्लोक करते हुए लेखक ने लिखा है 'स्नपन प्रप्रणीयत' का अर्थ है 'अभिषेक कराना चाहिए।' भला जो स्वयं सुगंधदशमी व्रत करेगा वह अभिषेक दूसरे से करायेगें। मनुष्य व्रत स्वयं ग्रहण कर और उसका विधीविधान दूसरे से करावे यह कैसे सम्भव है? पण्डित को वहां साक्षी रूप में केवल विधि वनाने का रहता विधान करता। तो वही स्वयं ही होता है। "स्नपन प्रणीयस" का अर्थ इतना ही है 'अभिषेक किया जाना चाहिए' न कि कराना चाहिए।

लेखक ने काष्ठासंघ को भी जैनाभास वताया है और पद्मपुराण आदि ग्रन्थों को काष्ठासंघी आचार्यों द्वारा वताया है। लेकिन आगम में जिन जैनाभासों का उल्लेख है उनमें काण्ठासंघ नहीं है। 'नीतिसार' ग्रन्थ में आचार्य इन्द्रनन्दि कि जैनाभासों का इस प्रकार उल्लेख किया हैः—

गोपुच्छकः श्वेतवासो द्राविड़ यापनीयकः
नि पिच्छकश्य पचेने जैनभासाः प्रकीर्तितः

अर्थ—गोपुच्छक (गाय के पूंछ के बालों की पीछी रखनेवाला) १. श्वेतवास, (सफेद वस्त्र पहनने वाले) २. द्राविण, ३. यापनीय, ४. निःपिच्छिक, (विना पीछी के) ५. ये पांच जैनाभास हैं। कष्ठासंघ को इसमें शामिल नहीं किया है।

काष्ठासंघ के वारे में लोगों की यह धारणा है कि यह संघ-काठ की प्रतिमा रखता था। और काठ की प्रतिमा की साल

सम्हाल के लिए उसका पञ्चामृत अभिषेक किया जाता था जिससे प्रतिमा का काट स्वच्छ और चिकना रहे क्यों दूध दही आदि से अभिषेक करने में प्रतिमा चिकनी हो और चीकिनी होने से वह मजबूत रहेगी। लेकिन वे यह भूल जाते है कि दूध दही के बावजूद भी जिस पर निरन्तर पानी पड़ता रहे वह काठ कब तक साबूत रहेगा।

"काष्ठा" का अर्थ लोग काठ करते है और उस काठ की प्रतिमा का जो पुजारी है उसे काष्ठा संघी कहते है। पर बात ऐसी नहीं है। 'काष्ठा' शब्द का अर्थ दिशा है। धनंजय रचित तनामाला कोष ग्रन्थ उठाकर देखिये उसमें दिशाओं के नाम इस प्रकार दिए हैं।

"काष्ठा ककुब पिगाशायं द्रक्ष कन्या तथा हरित" अर्थात् काष्ठा, ककुप, पिक, आशा, दक्ष कन्या हरित थे दिशाओं के नाम है। इससे प्रमाणित है कि काष्ठा दिशा को कहते है अतः काष्ठाम्बर संघ का अर्थ होता है दिगम्बर संघ। इस तहर कष्ठाम्बरओं दिगम्बर इन नामों में कोई अन्तर नहीं है, पर चूंकि लोगों ने अपने २ संघों के पृथक २ नाम रख लिए थे अतः अपने संघ की पृथक पहचान के लिए उन्हें पिक शब्द हठाकर काष्ठा शब्द रख लिया। मूल सघ यद्यपि एक ही है फिर भी उनमें अनेक भेद है जैसे सेन संघ, नन्दि संघ आदि इनकी मान्यता एक है पर नाम अलग २ है अतः काष्ठा संघ भी इस मूल संघ में ही

गर्भित होता है फिर भी अपना नाम पृथक रख लिया। इसलिए काष्ठा संघ के आधार पर पद्म पुराण आदि ग्रन्थों का अप्रमाण कहना अनाड़ीपन है।

आगे चलकर लेखक ने "स्त्री प्रक्षाल" के समर्थन से सम्बन्धित तथा सुगन्धदशमी कथा में लिखित एक सुस्पष्ट प्रमाण की उल्टी सीधी हास्यास्पद आलोचना की है जिसे पढ़कर लगता है कि लेखक को सस्कृत का बिल्कुल ज्ञान नहीं है। स्त्री प्रक्षाल के समर्थन में सुगन्धदशमी व्रत कथा के अन्दर कितना स्पष्ट और प्रबल प्रमाण मिलता है, देखिये:—

'नरोवा वनिता वापि व्रतमेनत् समाचरेत्

इसका सीधा अर्थ यह—'यह सुगन्ध दशमी व्रत (जिसमें पूजा और अभिषेक करना अनिवार्य है) मनुष्य हो या महिला दोनों ही भले प्रकार (विधिपूर्वक) करें:—

लेकिन लेखक जी इसका अर्थ करते हैं:—

नर और नारी दोनों ही इस व्रत का समाचरण करें इसके आचरण के पहले जो 'सम' उपसर्ग लगया है वह इस बात का द्योतक है कि अपनी सीमा (अधिकार) अनुसार-यथायोग्य व्रत क्रिया करें।

लेखक से पूछा जाये कि सम "शब्द" का अर्थ सीमा कहाँ से आ गया? किसी शब्द कोश, शब्द शास्त्र या अन्य ग्रन्थों से

वे सम का अर्थ सीमा सिद्ध कर देतो मैं उन्हें आत्म समर्पण करने के लिए तैयार हूं अयन्था उन्हें प्रायश्चित रूप से अपने दोनों कानों को पकड़ कर इस सम्वन्ध में समाज से क्षमा याचना करना चाहिए। समाचरेत शब्द "सम+आचरेत" दो शब्दों से मिलाकर वना है। जिसकी व्युत्पत्ति होती है "सम्यक् प्रकारेण आचरेत् दो" शब्दों से अर्थात् भले प्रकार या अच्छी तरह आच्-रण करे यहां सम शब्द अर्थ "सीमा" विल्कुल नहीं है। किसी अजैन संस्कृतज्ञ विद्वान से भी इसका अर्थ पूछा जाये तो वह भी वही अर्थ करेगा जो तुमने ऊपर किया है। आश्चर्य है कि जिन लोगों को प्रारम्भिक शब्द भी ज्ञान नहीं है वे आगम प्रमाणों के अथ वदलने के विना किसी आधार के धृष्टता करते है। फिर तो कोई कुछ भी अर्थ कर सकता है। जो भगवान के अभिषेक को शास्त्र सम्मत नहीं मानते उनमें से सिर-फिरा व्यक्ति यह भी अर्थ कर सकता है।

नरो वावनिता वापि-अर्थात् मनुष्य हो या स्त्री, स-वह मा-नहीं, अचरेत-करें अर्थात् स्त्री हो या पुरुष वह यह व्रत नहीं करें। तब क्या इस अर्थ को ठीकमान लिया जायेगा। सम उपसर्ग का अर्थ सीमा करना अत्यन्त अनाड़ीपन है।

इसी अर्थ प्रक्रिया के सम्वन्ध में लेखक लिखता है कि अन्यत्र भी व्रत कथाओं में स्त्रियों को लक्ष्य कर व्रत विधि में कहीं जिना-भिषेक लिखा हो तो उसका अर्थ उपयुक्त रीति से ही करना

चाहिये अर्थात् लेखक चाहते है कि जहां अपनी मान्यता की पटड़ी नहीं वैठती हो वहां इसी ऊलजलूल अर्थ करके अपनी पटड़ी वैठा लेना चाहिये क्योंकि सामान्य जनता नो शब्द का अर्थ समझती नहीं है और जो विद्वान समझते है उन्हें हम विरोधी या काष्टा संघी आदि कहकर झुठला देंगे, वस हमारे नौ वारह हो जायेंगे।

इसी प्रकार आचार्य वीरनन्दि रचित चन्द्रप्रभा चरित्र में राजा श्रीषेण और पट्टरानी श्री कान्ता द्वारा भगवान के अभिषक का वर्णन है। लेकिन उसको भी लेखक ने तोड़ मरोड़ कर झुठलाया है। श्लोक इस प्रकार है:—

तस्मिन् विधाय महती मुप वास पूर्वा
पूजां जगद्विजमिनो जिन पुङ्गवस्य
स्नानं समीहित निमित्तथस्तदीय
विम्बस्य स प्रविद् धे सहितो प्रदेव्या

इस श्लोक का सीधा अर्थ है:—अष्टान्हिका पर्व में उपवास पूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की महान पूजा करके अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिए राजा श्री सेण ने पट्टरानी सहित जिन विम्ब का स्नान अर्थात् अभिषेक किया।

इस पर लेखक को पहली अपत्ति तो यह है कि उसमें पूजा के वाद अभिषेक वतलाया है जवकि अभिषेक पूजा के पहले होता है और दूसरी आपत्ति यह है इसमें अभिषेक शब्द का उल्लेख नहीं

है सिर्फ स्नान शब्द का उल्लेख है और तीसरी आपत्ति यह है कि यह स्नान सकाम बतलाया है जबकि जिन सेवा निष्काम होती है इसलिए यहां बात कुछ और ही है।

आपत्तियों का उत्तरः—

यह ठीक है कि अभिषेक पूजा के पूर्व होता है परन्तु यह क्रम दैनिक पूजाओं के लिए होता है जब विशेष कार्यक्रम होता है और कार्यक्रम का सम्बन्ध अभिषेक से है तो पूजा को गौण कर अभिषेक की मुख्यता को लेकर वर्णन किया जाता है। आज भी न कि हम बाहुबली भगवान के मस्तकाअभिषेक के लिए जाते है तब उसका वर्णन हम इसी प्रकार करते है यथा हमने पहाड़ पर पहुंचते ही भगवान की पूजा कर १०८ कलशों से भगवान का अभिषेक किया अतः इस प्रकार की आपत्ति करना निरर्थक है दूसरी तरफ आपत्ति भी निरर्थक है जिन बिम्ब का अभिषेक और जिन बिम्ब का स्नान इनके अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। यद्यपि स्नान से अभिषेक शब्द अधिक प्रभावक है फिर भी छन्द रचना में मात्रा या गण का ध्यान रखा जाता है। छन्द केवल तुक बन्दी नहीं होती गण और मात्रा के अनुसार जो शब्द ठीक बैठ जाय वही रखना पड़ता है। अतः वीरनन्दि आचार्य को अभिषेक की जगह बिम्ब स्नान शब्द का प्रयोग करना पड़ा है वह भी 'बिम्बस्य' शब्द पृथक (तीसरे चरण में) ह और स्नान शब्द पृथक (चतुर्थ चरण में) है। यों भी शस्त्रों में अभिषेक के लिए "जिन स्पन" शब्द का प्रयोग जगह २ मिलमाह जिसका अर्थ जिनाभिषेक ही है।

तीसरी आपत्ति है पूजा संकाय नहीं होती निष्काय होती है यह भी गलत है। सांसारिक विषय भोगों की कामना पूरी करने के लिए पूजा करने का निषेध है न कि आत्माहित या परहित की कामना के लिए भी पूजा का निषेध है आज भी पूजाओं में हम शांति पाठ पढ़ते है उसमें "क्षेत्र सर्वप्रजाना........" इस श्लोक में परहित की कामना करते है तथा शास्त्राभ्यासों जिनपतिनुतिः......" इसमें आत्महित की कामना करते है। इसी तरह संकट को दूर करने के लिए भी भगवान की पूजा स्तुति का कोई निषेध नहीं है।

श्रीषेण राजा ने अपनी पट्टरानी के साथ जा जिन विम्ब का अभिषेक किया वह आत्महित के लिए किया है। उसे एक मुनिराज ने वताया था कि कुछ दिन वाद तुम्हारी पट्टरानी के एक यशस्वी पुत्र होगा वह जब बड़ा होगा तव उसे अपना राज्य-भार आदि सौंपकर दीक्षा लोगे और घोर तपश्चरण करके मोक्ष जाओगे। इसी बात को सुनकर राजा ने अणुव्रतादि लिया और धर्म कर्म पूजा पाठ में लग गया। इसी कामना की पूर्ति के लिए उसने पट्टरानी सहित अभिषेक किया। अतः स्पष्ट इस शास्त्रीय प्रमाण से स्त्री प्रक्षाल सिद्ध होता है। लेखक द्वारा किया गया खण्डन निराधार वेतुक और अज्ञानता पूर्वक किया गया है।

लेखक का कहना है कि यही कथा गुणभद्राचार्यकृत उत्तर पुराण में है उसमें कुछ और ही वात है। इस सम्बन्ध में जो प्रमाण उपस्थित किया है वह इस प्रकार है:—

"कृत्वामहाभिषेकेन्य जिनं संङ्कम मङ्गलैः ॥४९॥
गन्धोदकैः स्वयं देव्या सहैवास्नात् सुवन जिनान्
व्यधादाष्टान्हि की पूजा मंहिकामुभ को दयाम् ॥५०॥

इस डेढ़ श्लोक का अन्वय इस प्रकार होना चाहिये:—

"देव्या महैव महाभिपेक कृत्वा जिन संगममङ्गलैं गन्धोदकः जिनान् स्तुवन् स्वयं अस्नाम्"

अर्थः—पट्टरानी के साथ महाभिपेक करके, जिनेन्द्र भगवान के सङ्कम से मङ्गल स्वरूप गन्धोदक के द्वारा भगवान की स्तुति करते हुये स्वयं स्नान किया।

अतः इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि राजा और रानी दोनों ने ही एक साथ भगवान का अभिषेक किया। इस प्रकार उत्तर पुराण से भी स्त्री प्रक्षाल की सिद्धि होती है। तथा चन्द्रप्रभ चरित्र में वीरनन्दि आचार्य ने तो स्पष्ट ही लिखा है "विम्वस्य स्नान प्रविदवे" अर्थात् विम्वस्य (प्रतिमा का) स्नान किया। यहा स्नान का अर्थ अभिपेक ही है। छन्दशास्त्र के अनुसार मात्र और गण का प्रयोग ठीक वैठाने के लिए पर्यायवन्धी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यहा स्नान की अगर अभिपेक शब्द २ के प्रयोग उपयुक्त न जानकर पर्यायवाची स्नान शब्द रख दिया है। इसलिए लेखका का यह लिखाना कि 'स्नान' शब्द से जिनाभिषेक नहीं वताया हैं नितान्त गलत है।

लेखक ने एक और मनमानी की है:—लेखक का कहना है कि श्लोक में 'अथम्' पाठ गलत है, वहां सही पाठ 'अथस्' है, प्राचीन सभी प्रतियों में यही पाठ है। लेकिन वहां न अथस् है न अथस् है वहां पाठ अतस् है। अतः का अभिप्राय यह है कि पूजा की समाप्ति के वाद वृहत महाभिषेक किया। यह ठीक है कि सामान्य पूजा अभिषेक पूर्वक होती है, लेकिन यहां विशेष अभिषेक महोत्सव की प्रधानता रहती है वहां पूजा गौण हो जाती है और अभिषेक की प्रधानता रहती है। अष्टान्हिक पर्व में आठ दिन तो साधारण अभिषेक पूर्वक भगवान की पूजा हुई, पर्व की समाप्ति पर वृहत अभिषेक किया गया क्योंकि वहां राजा की मनोकामना की सिद्धि के लिए महाभिषेक अभीष्ट था इसलिए वहां लिखा है 'अतः' अर्थात् पूजा के वाद अभिषेक किया। 'अतस्' में 'स' की जगह विसर्ग हो जायेगा।

आचार्य वीरनन्दि का श्लोक इस प्रकार है:—

तस्मिन् विधाय महती मुपावास पूर्वा
पूजां जगद् विजयिनो जिनपुङ्गवस्य
स्नानं सभी हित निमित्रमतस्तदीय
विम्वस्य स सहि प्रविदधे तीव्र देव्या

यहां स्पष्ट लिखा है "उपवास पूर्वक अष्टान्हिक पर्व में जगत् विजयी जिनेन्द्र की महापूजा करने के पश्चात् (अतः)

अभीष्ट सिद्धि के लिए जिन विम्ब का स्नान अपनी पट्टरानी सहित किया। इस प्रकार चन्द्र प्रभ चरित में स्पष्ट जिन विम्वाभिषेक का कथन है। लेकिन वेचारे लेखक की इस प्रमाण से जमीन नीचे खिसक रही थी। अब ऊट पटांग बकवास करदी की श्लोक में 'अघः पाठ' 'अतः' नहीं।

इसी तरह लेखक ने जिनदत्त चरित्र के प्रमाण को जिससे स्पष्ट स्त्री प्रक्षाल का वर्णन है झूठ लाया है। प्रमाण इस प्रकार है:—

गृहीत गन्ध पुष्पादि प्रार्चना सपरिच्छादा
अथेकदाजगत्मेषा प्रातरेव जिनालयम् ॥५५॥
त्रिःपरीत्य नतः स्तुत्वा जिनांश्च चतुराशया
संस्नाप्य पूज्य मित्वाच प्रयाता यतिसंसदि ॥५६॥

इसका सीधा अर्थ यह है:—सेठानी एक दिन परिवार सहित गन्ध पुष्पादि लेकर प्रातः काल ही जिन मन्दिर गयी वहां तीन प्रदक्षिणा देकर, भगवान की स्तुति पूजा और अभिषेक कर मुनि संघ में गई लेखक अपनी हविस पूरी करने के लिये लिखते हैं:—

"सेठानी जिन मन्दिर परिवार के साथ गयी थी, अभिषेक परिवार के मनुष्यों ने ही किया था (और पूजा सबने की थी)।

लेखक से पूंछाजाय कि अभिषेक परिवार के मनुष्यों ने ही की थी किस यह शब्द का अर्थ है यह कहना कि सेठानी मुख्य-

नायका होने से उसका कथन किया है। अगर स्त्री प्रक्षाल शास्त्र में निसिद्ध होता तो आचार्य तो ग्रन्थकर्ता यह स्पष्ट लिखते कि सेठानी की उपस्थिति में सभी परिवार ने पूजा की। जब आगम में स्त्री प्रक्षाल का निषेध ही नहीं है तो आचार्य ऐसा क्यों लिखते। लेखक को चाहिए था कि वे सबसे पहले स्त्री प्रक्षाल निषेध के प्रमाण उपस्थित करते फिर इन बातों को लिखते कि अभिषेक परिवार के मनुष्यों ने किया और पूजा सभी ने की। यह लेखक की अपनी बात है स्त्री प्रक्षाल के निषेध का तो लेखक के पास कोई प्रमाण नहीं केवल परम्परा के नाम पर ऐसी मन-मानी बात लिखना जघन्य अपराध है।

आचार्य जिन सेनकृत आदि पुराण में स्त्री प्रक्षाल करने का प्रमाण मिलता है यथाः—

तत्प्रतिष्ठाभिषेकांते महापूजा प्रकुर्वती

इसका सीधा अर्थ है:—उसकी प्रतिष्ठा और अभिषेक करने के बाद महापूजा करती हुई यह प्रकरण सुलोचना के सम्बन्ध में चल रहा है अर्थात् पूजा सुलोचना के द्वारा हुई। इस पर लेखक का आक्षेप है कि मूल में कहीं भी सुलोचना द्वारा जिनाभिषेक नहीं बताया वल्कि यह लिखा है प्रतिष्ठा और अभिषेक हो जाने के बाद उसने तो सिर्फ पूजा की लेखक से पूछा जाये कि इस श्लोक में 'सिर्फ' किस शब्द का अर्थ है या यों ही मनगढ़न्त हेरा फेरी की जा रही है। दूसरे सुलोचना का नाम भले ही न हो पर

प्रतिष्ठ अभिषेक पूजा करने वाली महिला ही थी 'प्रकुर्वंनी' अर्थात् करती है। अगर पूजा करने वाले कोई पुरुष होता, तो 'प्रकुर्वन' शब्द का प्रयोग होता। तब भी क्या यही अर्थ होता कि सिर्फ उस आदमी ने पूजा की आगम में उल्लिखित शब्दों को घटा बढ़ा कर अपना उल्लू सीधा करना नरकगामी पर्वत-पर्वत की स्थिति को दुहराना है।

लेखक ने पद्म पूराण सर्ग १७ के इस श्लोक को भी झुठलाया है:—

प्रतिमा देव देवानां प्रती के सद्मनस्तया
स्थापयित्वार्चिता भक्तया स्तुति मङ्गल वक्त्रया

अर्थः—लक्ष्मीमती रानी ने सद्भावना पूर्वक देवाधिदेव जिन) की प्रतिमा की स्थापना करके भक्ति पूर्वक स्तुति मंगल-पाठ करते हुए पूजा की।

इस पर लेखक का कहना है कि इस श्लोक में अभिषेक की कहीं चर्चा नहीं है। लेखक को यह तो मालूम है कि पूजा अभिषेक पूर्वक ही होती है। अतः पूजा की तो उसका अर्थ यही हुआ कि अभिषेक पूर्वक पूजा की। जब भी पूजा की जाय तभी उसके साथ अभिषेक का भी कथन किया जाय यह कोई, आवश्यक नहीं है। फिर तो कोई यह भी कहेगा कि इसमें पूजा करने की बात लिखी है आठ द्रव्य चढ़ कर पूजा की ऐसा कहीं नहीं लिखा।

क्या इसके लेखक महाशय स्वीकार करेंगे। उत्तर स्पष्ट है कि पूजा विना अष्ट द्रव्य के नहीं होती इसी प्रकार पूजा अभिषेक प्रक्षाल के विना भी नहीं होती। पूजा में दोनों ही बातें गर्भित है।

इसी तरह स्त्री प्रक्षाल के अन्य उदाहरणों में केवल यही बात बार-बार दुहराई गई है कि वह समुच्चय पूजा का उल्लेख है, अर्थात् पूजा तो पुरुष ने की पर समुच्चय में स्त्री पुरुष दोनों का नाम जोड़ दिया गया हैं। अगर आगम में कहीं भी स्त्री प्रक्षाल का निषेध होता तो जैनाचार्य अवश्य ही समुच्य पूजा में पुरुष का ही नाम लेते। लेकिन आगम में कहीं भी स्त्री प्रक्षाल का निषेध नहीं है। अतः स्त्री पुरुष के लिए पूजन विधि को सामान्य समझकर कहीं भी यह लिखने की हिम्मत नही की। दोनों दम्पति में राजा ने ही पूजा की रानी ने नहीं की।

आराधना कथा कोष की रात्रि भोजन त्याग कथा में एक श्लोक है जिसमें दोनों ही पति-पत्नी ने भगवान का अभिषेक किया ऐसा लिखा है। श्लोक निम्न प्रकार है:—

ततस्तयोर्जिनेन्द्राणां महा स्नपन पूर्वक
कल्याणदायिनी पूजां पात्रदान सुख प्रद
कुर्वंतो सुखतः कैश्चिन्मासैर्जातः सुतोत्तमः

अर्थः—सेठ और सेठानी के अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा सुखप्रद पात्रदान करते हुए कुछ माह बाद पुत्र पैदा हुआ। इस श्लोक में भी लेखक ने वही भ्रष्ट राग अलापा है कि यहां

समुच्चय पूजा का कथन है जैसे दोनों का पुत्र पैदा हुआ जबकि पुत्र रानी के उदर से पैदा हुआ सेठ के उदर से नहीं इसी तरह अभिषेक सेठ ने किया सेठानी ने नहीं। लेखक महाशय अकल को न बेचकर यदि थोड़ा ध्यान देते तो उन्हें मालूम होता उत्पन्न बालक में पुत्रत्व धर्म स्त्री पुरुष दोनों की अपेक्षा से हैं अतः एक ही पुत्र को यह कहा जाता है कि यह अमुक पुरुष का पुत्र है। अमुक स्त्री का पुत्र है। लेकिन दोनों को यह नहीं कहा जा सकता यह पुत्र अमुक स्त्री के उदर से पैदा हुआ है। पुत्रोत्पत्ति में स्त्री-पुरुष दोनों के समान सहयोग है। अतः लिखा गया है कि उन दोनों को पुत्र हुआ। इसी तरह अभिषेक और पूजन में भी वहां सेठ सेठानी का समान सहयोग था। इसलिए लिखा है उसके प्रभाव से दोनों के पुत्र हुआ। पुत्रोत्पत्ति में यह कभी कोई नहीं पूछता कि पुत्र किसके उदर से पैदा हुआ है सेठ के उदर से या सेठानी के उदर से। क्योंकि पुत्र का आदमी के उदर से पैदा होना असम्भव है। पक्षान्वता छोकड़र लेखक को थोड़ा दिमाग से भी सोचना चाहिये। जैसे सेठ सेठानी दोनों ने मिलकर एक दूसरे के सहयोग से पुत्र उत्पन्न किया उसी तरह दोनों ने मिलकर एक दूसरे के सहयोग से भगवान का अभिषेक किया और पूजन किया। अतः उक्त श्लोक स्पष्ट स्त्री प्रक्षाल का सबल प्रमाण है।

गौतम चरित्र में सर्ग ३ में एक श्लोक है जिसमें मुनिराज कन्याओं को उपदेश दे रहे हैं:—

श्री वीरनाथ विम्वस्य स्नपनं क्रियते मुदा
ततः पूजा प्रकर्त्तव्यावीरस्य सलिलादिभिः

भगवान महावीर की प्रतिमा का अभिषेक करना चाहिये। फिर जल आदि आठ द्रव्यों से पूजा करना चाहिये।

इस पर लेखक की समीक्षा है कि मूल में अभिषेक करना चाहिये ऐसा नहीं है किन्तु यह लिखना है कि अभिषेक किया जाता है। अर्थात् पुरुषों द्वारा अभिषेक हो जाने पर पूजा करना चाहिये।

लेखक की इस बुद्धि को क्या कहा जाय? पुरुषों की तो यहां कोई चर्चा ही नहीं है। मुनिराज उपदेश कन्याओं को दे रहे हैं। लेखक के अभिप्राय से तो यह निकलता है कि जब तक पुरुष अभिषेक न करे तब तक कन्याएं पूजा न करे जबकि मुनिराज सीधी तौर पर कन्याओं को समझा रहे हैं कि पहले महावीरजी की प्रतिमा का अभिषेक करे उसके बाद उनका पूजा करना चाहिये।

लेखक ने आगे पृष्ठ ४४ पर लिखा है "स्त्री के जिन पूजनादि पुण्य कार्यों का निषेध किसी ने नहीं किया है सिर्फ प्रक्षाल (प्रतिमा स्पर्श) का निषेध किया है जसका कारण स्त्री पर्याय की अशुद्धि है।

हमारा प्रश्न है कि लेखक बतावे कि स्त्री प्रक्षाल का निषेध किस ग्रन्थ में कहां पर है। केवल परम्परा के नाम पर वह भी

कुछ स्थानों में आगम के कथन का निषेध करना जघन्य पाप है जहां तक स्त्री की अशुद्धता की दृष्टि से तो वह साधुओं को आहार भी नहीं दे सकती। क्योंकि साधुओं का दर्जा पञ्चपर-मेष्ठी के अन्दर आता है। अतः लेखक को इसका भी एक फतव निकाल देना चाहिये कि कोई साधु को आहार दान न दे औ न साधुओं को भोजन बनावे क्योंकि वे अशुद्ध होती है। इस पे लेखक यही कहेंगे कि मुनियों को स्त्रियां आहार न दे ऐस आगम में कहां लिखा है तो हम भी लेखक से पूछते हैं कि आगः में ऐसा कहां लिखा है कि स्त्री प्रक्षाल न करे।

लेखक ने पं० भूधरदासजी कृत चर्चा समाधान में जो स्त्री प्रक्षाल का समर्थन किया है उसका भी खण्डन किया है जिस खण्डन में कोई सबल युक्ति या प्रमाण नहीं है। पं० भूधर-दासजी लिखते हैं-यहां कोई कहे स्त्री पूजा करे यह तो सुनो है पर अभिषेक न करें का उत्तर–पूजा तो अभिषेक के विना होतो नहीं यह नियम है। मैनासुन्दरी अभिषेक न कीना तो गंधोदक कहां से लाई। स्त्री के स्पर्श का कुछ ऐसा द्वेष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सूं आहार साधु काहे को लेते? तिससे स्त्रीन कू पूजा अभिषेक का निषेध नहीं। भूधरदासजी के इस कथन की समीक्षा लेखक ने इस प्रकार की है:—

साक्षात् (सजीव) देव शास्त्र गुरू की पूजा जो विना अभि-षेक के ही होती है क्योंकि इनका अभिषेक (स्नान) तो होता ही

नहीं रही प्रतिमा सो जैसे सच्छूद्र (पंचम गुण स्थानवर्ती) बिना अभिषेक के ही प्रतिमा की पूजा करता है वैसे ही स्त्री भी करती है, जैसे सच्छूद्र के यज्ञोपवीत नहीं होता वैसे स्त्री के भी नहीं होता। निर्भक्त भी पंचम गुण स्थायी तक होते हैं वे भी पूजा करते हैं किन्तु उनके लिए अभिषेक नहीं बताया है। लेखक की उक्त समीक्षा भी अत्यन्त अज्ञानता को लिए हुए हैं। इन महाशय को यह भी पता नहीं कि सच्छूद्र की व्याख्या क्या है।

सच्छूद्र। सच्छूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में होते हैं किन्तु खेती आदि की आजीविका करते हैं इसलिए सत् शूद्र हैं। चौथा वर्ण जो शूद्र है उसके स्पर्श्य और अस्पर्श्य ये दो भेद हैं। उनमें सत् असत् का कोई भेद नहीं है। अतः ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों में आने वाले सच्छूद्र अभिषेक आदि भी कर सकते हैं क्योंकि वे शरीर पिंड से शुद्ध है। मात्र भ्रष्ट आजीविका के कारण उन्हें शूद्र कहा जाता है अन्यथा वे ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य ही है। इस सम्बन्ध में प्रमाण देखिये:—

सकृद विवाह नियता व्रत शीलादि तत्पराः
द्वि जातयस्त्रिवर्णोत्था सच्छूद्रा कृषिजीविकाः

अर्थ:—जिनमें एक बार ही विवाह होता है अर्थात् विधवा विवाह नहीं होता, जो व्रतशील आदि का पालन करते है तथा तीन वर्णों (ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य) में उत्पन्न होने वाले

द्विजाति होते हैं एवं खेती आदि से आजीविका करते है वे सच्छूद्र हैं।

इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखियेः—

पशु पाल्यात् कृषेः शिल्पाद् वर्तन्ते तेषु केचन
शुस्त्रूषन्ते त्रिवर्णो ये भाण्डभूषाम्बरादिभिः
ते सच्छूद्रा असद्शूद्रा द्विधाशूद्रा प्रकीर्तिताः
ये षां सकृत विवाहोऽस्ति ते चाद्याः पर या परे
सच्छूद्रा अपि स्वाधोना पराधीना अपि द्विधा
दासी दासा पराधोना स्वाधीना स्वोप जीवितः

अर्थः—उक्त तीन वर्णों में से जो पशुपालन द्वारा, शिल्प द्वारा कृषि द्वारा आजीविका करते हैं वे सच्छूद्र और असच्छूद्र त्रिवर्णी होते हैं। जिनमें विधवा विवाह नहीं होता वे सच्छूद्र होते हैं। शेष असच्छूद्र है। सच्छूद्र भी दो प्रकार के होते हैं एक स्वाधी दूसरे पराधीन। दासीदास पराधीन सत्सूद्र है, अपनी स्वतन्त्र आजीविका करने वाले स्वाधीन सतशूद्र है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध है सच्छूद्र मूल में तीन वर्ण वाले ही होते हैं शूद्र वर्ण वाले नहीं होते, इनमें विधवा विवाह नहीं होता व्रतशिलादि का पालन भी करते है अतः वे अभिषेकादि भो कर सकते है उनके लिए शास्त्रों में कहीं निषेध नहीं है अतः

स्त्री प्रक्षाल निषेध में यह तर्क देना कि जैसे सच्छूद्र अभिषेक नहीं कर सकता वैसे स्त्री भी अभिषेक नहीं कर सकती सर्वथा गलत है सच्छूद्र भी अभिषेक कर सकता है और स्त्री भी अभि-षेक कर सकती है।

गौतम चरित्र में स्पष्ट अभिषेक का विधान किया गया है। वहां मुनि कन्याओं को उपदेश दे रहे है-श्लोक इस प्रकार है:—

श्री वीरनाथ बिम्बस्य स्नपनं क्रियते मुदा
ततः पूजा प्रकर्तव्या: वीरस्य सलिलादिभिः

अर्थ:—महावीर स्वामी की प्रतिमा का हर्ष पूर्वक अभिषेक करना चाहिये।

इसकी समीक्षा करते हुए लेखक ने यहां भी अपने अनाड़ी-पन का प्रदर्शन किया है। लेखक का कहना है "मूल में अभिषेक करना चाहिये ऐसा नहीं लिखा किन्तु यह लिखा है अभिषेक किया जाता है फिर पूजा करना चाहिये।"

इस पर हमारा कहना है कि "अभिषेक किया जाता है" यह सामान्य कथन नहीं है किन्तु दृढ़ता और आवश्यकता का द्योतक कथन है। उदाहरण के लिए कोई दूसरे व्यक्ति को सम-झाता है "पहले शौच जाया जाता है बाद में दन्तधावन करना चाहिये।" इसका सीधा अर्थ है कि दन्तधावन करने से पहले शौच जाना आवश्यक है। इसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये

कि पूजा से पहले अभिषेक करना आवश्यक है।" मुनिराज लड़कियों को उपदेश कर रहे हैं। तब यदि स्त्री प्रक्षाल का निषेध होता हो मुनिराज जैसे ज्ञानी व्यक्ति या तो अभिषेक की बात नहीं करते और अगर सामान्यतया कही है तो बाद में निषेध करते कि अभिषेक किया जाता है पर उन्होंने मात्र पूजन ही करना चाहिये ऐसा कथन करना था। अतः स्पष्ट है कि मुनिराज के मन में प्रक्षाल के सम्बन्ध में स्त्री पुरुष का कोई विकल्प नहीं है। वे दोनों के लिए पूजन से पहले प्रक्षाल की आवश्यकता महसूस करते हैं।

हमें आश्चर्य है कि लेखक ने स्त्री प्रक्षाल के आगम में जो प्रमाण मिलते हैं उनके विरोध में तो यद्वा तद्वा दिमागी कसरत की है लेकिन आगम में स्त्री प्रक्षाल का कहां-कहां निषेध किया है ऐसा एक भी आगम प्रमाण उपस्थित नहीं किया है। जब तक स्त्री द्वारा प्रक्षाल का निषेध आगम में नहीं मिलता तब तक अपनी कपोल कल्पना से स्त्री प्रक्षाल का निषेध करना आगम का अवर्णवाद है। यहां हम कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं:—

अथैकदा नुता साच सुधी मदन सुन्दरी
कृत्वा पञ्चामृतैः स्नानं जिनानां सुख कोटिदम्

श्रीपाल चरित्र

एक दिन उस विदुषी मदन सुन्दरी ने पञ्चामृत द्वारा जिन प्रतिमाओं का बहु सुख प्रदान करने अभिषेक करके ....

इसमें स्पष्ट मदन सुन्दरी महिला द्वारा जिन प्रतिमाओं के अभिषेक उल्लेख है।

और देखिये:—

तदा वृषभ सेना च प्राप्य राज्ञी पदं महत्
दिव्यमान् भोगान् प्रभुञ्जाना पूर्वपुण्य प्रसादतः
पूजयंती जगत् पूज्यात् जिनान् स्वर्गापि वर्गदान्
द्वियैरष्ट महाद्रव्यैं स्नपनादि भिरुज्वलै

आराधना कथा कोष

सेना ने पूर्व पुण्य (औषध दानादि) के प्रसाद से पटरानी का पद प्राप्त कर दिव्य भोगों को भोगते हुए तथा स्वर्ग मोक्ष देने वाले जगत् पूज्य जिनेन्द्रों की उज्वल अभिषेक एवं अष्ट महा-द्रव्यों से पूजा करती हुई ....

इसमें वृषभ सेना द्वारा अभिषेक और पूजा दोनों के करने का उल्लेख है।

इसी प्रकार हरिवंश पुराण में भी स्त्री प्रक्षाल का उल्लेख है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता ह कि स्त्री द्वारा प्रक्षाल प्राचीन काल से उसी तरह चला आ रहा है जिस तरह पुरुष प्रक्षाल चला आ रहा है। शास्त्रों में भगवान की पूजाविधि में स्त्री पुरुष का कोई भी भेदभाव नहीं किया गया है।

कुछ लोग जिनमें विद्वान भी शामिल हैं यह तर्क दिया करते हैं—जन्म कल्याण में इन्द्र ही को अभिषेक का अधिकार होता है इन्द्राणी को नहीं। लेकिन यह तर्क भी अनाड़ीपन को लिए हुए है। जन्माभिषेक में इन्द्र द्वारा अभिषेक करना वह उसके लिए प्राकृतिक नियोग है, अधिकार का वहां कोई प्रश्न नहीं है। यदि अधिकार की बात होती तो सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र से भी बड़े सनत्कुमार माहेन्द्र आदि इन्द्रों को अभिषेक का अधिकार होना चाहिये। छोटे देवों को तो अभिषेक का अधिकार दिया जाय और बड़े देवों को नहीं यह कहां का न्याय है। इन्द्राणी को अभिषेक का अधिकार न होने से हम उसे हीन मान लें तो हमें सनत्कुमार माहेन्द्र आदि स्वर्ग के इन्द्रों को भी हीन मानना चाहिये। अतः यह तर्क देना कि इन्द्र को ही अभिषेक का अधिकारी है इन्द्राणी को नहीं इसलिए पुरुष को ही अभिषेक करने का अधिकार है स्त्री को नहीं यह सर्वथा गलत है।

दूसरी बात है कि इन्द्राणी सर्वथा ही अभिषेक नहीं करती यह कहना भी गलत है। वल्कि इन्द्राणी द्वारा भी भगवान का अभिषेक और उद्वर्तन करने का प्रमाण मिलता है, यथा—

इन्द्राणि प्रमुखादेव्या सद्वर्णं खलेपनैः
चक्रु रुद्वर्तन भक्त्या करेः कोमल पल्लवैः
महीध्रमिवतं नाथं घटैर्जलधरैरिव
अभिषिच्य समारब्धा......(पद्मपुराण)

अर्थः—इन्द्राणी जिनमें प्रमुख थी ऐसी देवियों ने अपने पल्लव के समान कोमल हाथों से भगवान का उबटन किया और पर्वत के समान भगवान का मेघों के समान कलशों के द्वारा अभिषेक किया।

इसमें इन्द्राणी तथा देवियों द्वारा उबटन एवं अभिषेक का उल्लेख है। अतः दलील बेकार है कि इन्द्राणी को अभिषेक का अधिकार नहीं है इन्द्र को ही है। यदि इस तर्क को ठीक मान लिया जाय कि इन्द्र ही को अभिषेक का अधिकार है इन्द्राणी को नहीं अतः पुरुष को अधिकार है स्त्री को नहीं तो इसके जवाब में यह भी कहा जा सकता है कि स्त्री को अपने गर्भ से पैदा करने का अधिकार है पुरुष का नहीं इसलिए स्त्री को ही भगवान के अभिषेक का अधिकार होना चाहिये पुरुष को नहीं। तो क्या यह तर्क मान्य किया जा सकता है।

हमें अपनी हर ग्राहिता पूरी करने के लिए बुद्धि से दिवालिया नहीं बनना चाहिये। स्त्री द्वारा प्रक्षाल किया जाना पूर्णतथा शास्त्र सम्मत है। और विद्वान द्वारा यह तर्क दिया जाना ठीक है स्त्री यदि पञ्च परमेष्ठियों में गर्भित आचार्य उपाध्याय, साधु को अपने हाथ से आहार दे सकती है तो उसी परमेष्ठि में गर्भित अरहंत की प्रतिमा का अभिषेक भी कर सकती है। ●

———

स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक पर
शास्त्रीय प्रमाण

●पं० मनोहरलाल शाह, जैन शास्त्री, रांची।

अनादिकाल से यह प्राणी कर्मोदयवश चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ दुःख पाता है। उसे तनिक भी शान्ति का अनुभव नहीं होता। विशेष पुण्योदयवश यह जीव नर पर्याय को प्राप्त करता है। इसमें भी उत्तम कुल, निरोगता, पवित्र जैन धर्म का संयोग, जिनवाणी श्रवण, मुनियों को आहार दान आदि बातों का प्राप्त होना तो और भी उत्तरोत्तर कठिन है। इसीलिए आचार्यों ने पापों के नाश, पुण्य की अभिवृद्धि एवं आत्मविशुद्धि के लिये देवपूजा आदि षट्कर्मों का उपदेश दिया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है—

"दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।"

अर्थात श्रावकों के लिए जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना एवं दान करना मुख्य धर्म है। अन्य आचार्यों ने गृहस्थों को षट्-कर्मों का प्रतिदिन पालन करना आवश्यक बताया है। पूजा के अङ्गों को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए आचार्यों ने लिखा है—

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं, जप ध्यानं श्रुतिश्रवः।
क्रियाः षड्डुदिताः सद्भिः देवा सेवा सुगेहिनाम्॥

अर्थात् गृहस्थ प्रतिदिन निम्नलिखित क्रियायें करते हुए अपने आपको पुण्य एवं यश का भागी बनावे। सर्वप्रथम जिनालय में जाकर स्नानादि कर पूजा हेतु शुद्ध वस्त्र पहन कर भगवान का अभिषेक करे। अनन्तर अष्ट द्रव्यों से पूजन करे, फिर स्तोत्रपाठ और तब जाप्य, ध्यान एवम् शास्त्र श्रवण। आचार्यो ने धर्म साधन का सामान्यतः यही प्रकार बताया है। पूजा करने वाले गृहस्थ को सर्वप्रथम भगवान का अभिषेक करना चाहिए, फिर जिनेन्द्रपूजन। आचार्यो ने इन षट्कर्मों का विधान गृहस्थों के लिये किया है जिनमें श्रावक–श्राविका दोनों आते हैं। श्राविकाओं के लिये कोई अलग विधान नहीं है। जैसे श्रावक भगवान की पूजा, अभिषेक एवं मुनीश्वरों को आहार देने की क्रिया कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी भगवान की पूजा अभिषेक करने एवं मुनीश्वरों को आहार देने की अधिकारिणी हैं। स्त्रियों द्वारा भगवान की पूजा एवं मुनिराजों को आहार दान की बात तो सर्वमान्य है परन्तु स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने में कुछ लोगों की असहमति है जो समीचीन नहीं है।

जैन शास्त्रों में अनेक स्थानों पर ऐसे उल्लेख एवं प्रमाण मिलते हैं जो स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक करने का समर्थन करते हैं।

☐ उत्तरपुराण के रचयिता भगवद् गुणभद्राचार्यकृत जिनदत्तचरित्र : सर्ग १–

गृहीतगन्धपुष्पादि, प्रार्चना सपरिच्छदा
अथैकदा जगामैषा, प्रातरेव जिनालयम् ॥५५॥
त्रि परीत्य ततः स्तुत्वा, जिनांश्च चतुराशया ।
संस्नाप्य पूजयित्वा च, प्रयाता यति संसदि ॥५६॥

(एक दिन की बात है कि सेठानी जीवंजसा स्नानादि से शुद्ध होकर दास–दासियों के साथ सवेरे ही जिनमन्दिर गई। वहाँ पहुंच कर उसने पहले तो जिनदेव की तीन प्रदक्षिणा दी और बाद में स्तुतिपूर्वक भगवान के बिम्ब का अभिषेक किया, पूजन की, फिर मुनियों की सभा में गई।)

यह उपर्युक्त उल्लेख ही स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक करने का प्रबल समर्थक है, अन्य अनेक ग्रन्थों के उद्धरणों से क्या ! क्योंकि यह "जिनदत्तचरित्र" प्रातः स्मरणीय भगवद् गुणभद्राचार्य द्वारा रचित है। भगवद् गुणभद्राचार्य प्रत्येक विषय में प्रत्येक विषय में कितना अगाध पाण्डित्य रखते थे और महान् ग्रन्थों के रचने में उनकी कितनी असाधारण क्षमता थी, यह बात तो केवल इसीसे जानी जा सकती है कि अनेक शिष्यों के होते हुए भी महापुराण को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भगवज्जिनसेनाचार्य ने अपना योग्यतम शिष्य जानते हुए आपको सौंपा। भगवद् गुणभद्राचार्य के वर्तमान में आदिपुराण के अवशिष्ट भाग के अलावा उत्तरपुराण, आत्मानुशासन और जिनदत्तचरित्र ये तीन ग्रन्थ मिलते हैं। ये तीनों ही ग्रन्थ टीका सहित

प्रकाशित हो चुके हैं। इन्हें आर्ष ग्रन्थ माना जाता है, इनमें किसी को विवाद नहीं है। "विद्वज्जनबोधक" के कर्ता ने भी इन तीनों का आर्ष ग्रन्थ होना स्वीकार किया है। ऐसे आर्ष ग्रन्थ में जब सेठानी जीवजसा द्वारा भगवान के अभिषक का उल्लेख मिलता है तो स्पष्ट है कि स्त्रियों को जिनाभिषेक का पूर्ण अधिकार है। इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान ही अवशिष्ट नहीं रह जाता।

☐ **जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण : सर्ग २२–**

इत्युक्तो नोदयद्वेगा, सारथि रथमाप सः।
जिनवेश्म तमास्थाप्य, तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणां ॥२०॥
क्षीरेक्षुरसधारोघैर्घृ तदध्युदकादिभिः।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चिताम् नृसुरासुरैः ॥२१॥

"हरिवंशपुराण" के भाषाटीकाकार पं० गजाधरलालजी ने उक्त श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार किया है–"गन्धर्वसेना के ऐसे वचन सुनते ही सारथी ने रथ हांक दिया और मन्दिर के पास जाकर खड़ा किया। रथ से उतर कर कुमार और गन्धर्व सेना ने जिनालय में प्रवेश कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी तथा दूध, ईख का रस, घी, दही, और जल से भगवान का अभिषेक किया।"

☐ **भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण : पर्व ४३–**

तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती ।
महास्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतः ॥१७४॥
ददती पात्रदानानि मानयन्ती महामुनीन् ।
शृण्वती धर्ममाकर्ण्य, भावयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१७५॥

"आदिपुराण" के भाषाटीकाकार श्री पण्डित दौलतराम जीने उपर्युक्त श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार किया है : "वह नाना प्रकार मणिमई अनेक जिनप्रतिमा करावै, अर तिनकी अनेक मणिमई हेममयी उपकरण करावै । अर वह सुलोचना अनेक जिनमन्दिर बणाय जिन प्रतिमा का अभिषेक करि महा-पूजा कर । अर निरन्तर पात्रदान करै, महामुनिन की स्तुति करै..............।"

☐ भगवद् रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण : पर्व ९६—
अभिषेकैर्जिनेन्द्राणां मत्युदारैश्च पूजनैः ।
दानैरिच्छाभि पूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् ।
दानं पूजाभिषेकश्च तपश्चा शुभसूदनम् ॥१६॥

(भावार्थ : यहाँ सीता से कहा गया है कि हे देवि ! अशुभ कर्म को दूर करने के लिये जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक तथा पूजन करो और दान दो । उनके इस प्रकार कहने पर सीता ने इसे स्वीकार किया ।)

☐ आचार्य वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभु चरित्र : सर्ग ३–

तस्मिन् विधाय महतीमुपवासपूर्वां
पूजां जगद्विजयिनो जिनपुङ्गवस्य ।
स्नानं समीहितनिमित्तमघस्तदीय
बिम्बस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या: ॥६१॥

(भावार्थ : उस पर्व के दिन राजा ने व्रतधारणपूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की भारी पूजा की और फिर अपनी कामना पूर्ण होने की अभिलाषा से रानी सहित जिनबिम्ब का अभिषेक किया।)

☐ आचार्य सकलभूषणविरचित षट्कर्मोपदेशमाला–

इतीमं निश्चयं कृत्वा, दिनानां सप्तकं सती ।
श्रीजिनप्रतिबिम्बानां, स्नपन सा तदाऽकरोत् ॥
चन्दनागुरुकर्पूरैः सुगन्धैश्च विलेपनैः ।
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसन्ध्यकम् ॥

(भावार्थ : उस सती रानी ने ऐसा निश्चय कर सात दिन तक तीनों समय भगवान का अभिषक किया और चन्दन, अगुरु, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से भगवान की पूजा की।)

(किसी एक मदनावली नामकी रानी ने पहले भव में मुनि की निन्दा की थी। उस समय पाप कर्मोदय से शरीर में दुर्गन्ध

उत्पन्न हुई थी। तब उसने अपने रोग की शान्ति के लिये किसी आर्यिका के उपदेश में यह धार्मिक क्रिया की थी। इसीसे उसकी व्याधि दूर हुई तथा आयु पूर्ण कर वह पंचम स्वर्ग में देव हुई। इसी वर्णन में यह श्लोक कहा गया है।)

☐ आराधना कथाकोश :

रात्रिभोजन त्याग कथा, पृष्ठ ४०२—

ततस्तयोर्जिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम्।
कल्याणदायिनीं पूजां, पात्रदानं सुखप्रदम् ॥१८॥
कुर्वतो सुखतः कैश्चि मासै र्जातः सुतोत्तमः।

(भावार्थ : इसके अनन्तर सेठ और सेठानी ने अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा पात्रदानादि करते हुए समय व्यतीत किया और कुछ दिनों बाद सेठानी धनमित्रा ने पुत्र प्रसव किया।)

☐ श्रीपालचरित्र बृहन्नेमिचन्द्र कृत पृष्ठ संख्या ६—

अथैकदा सुता सा च, सुधी मदनसुन्दरी।
कृत्वा पञ्चामृतस्नानं, जिनानां सुखकोटिदम् ॥

(भावार्थ : इसके अनन्तर एक दिन गुणवती वह मैनासुन्दरी करोड़ों सुखों के देने वाले जिनेन्द्र भगवान का पञ्चामृत अभिषेक करके……………)

☐ पण्डित भूधरदासजी कृत चरचा समाधान, पृष्ठ ९४—

"इहाँ कोई कहै स्त्री पूजा करै यह तो सुनी है पर अभिषेक न करै ताका उत्तर–पूजा तो अभिषेक विना होती नाहीं यह नियम है। ऊपरि मैना सुन्दरी अभिषेक न कीना तो गन्धोदक कहाँ से लाई तथा स्त्री के स्पर्श का ऐसा कुछ दोष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सौं आहार साधु काहे को लेते। तिसतैं उत्तम पतिव्रता स्त्रीनि को पूजा का अभिषेक का निषेध नाहीं।"

शास्त्रों में जहाँ–जहाँ पूजा का विधान बताया है वहाँ–वहाँ पूजा का एक अंग होने से अभिषेक को भी पूजन में ही सम्मिलित कर लिया गया है। पण्डित सदासुखजी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में पृष्ठ २२६ पर लिखा है कि निर्दोष जल करि अरहन्त के प्रतिविम्ब का अभिषेक करना सो पूजन है।

प्रथमानुयोग के उपर्युक्त उल्लेखों से सिद्ध होता है कि स्त्रियों को अभिषेक करने का पूर्ण अधिकार है। अतः स्त्री हो या पुरुष, पूजन अभिषेक पूर्वक ही करना चाहिए। स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक के प्रमाणों से आर्ष ग्रन्थ भरे पड़े हैं, लेख बढ़ जाने के भय से उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं होगा। इन्हें पढ़कर विज्ञजनों को आगमानुसार अपनी श्रद्धा बनानी चाहिए।

एक बात और, सुमेरु पर्वत पर भगवान का अभिषेक मात्र सौधर्म और ईशान इन्द्र ही करते हैं–ऐसी भ्रान्ति कुछ लोगों के अन्तस में भरी है परन्तु ग्रन्थावलोकन से यह बात भी सही प्रतीत नहीं होती। इसमें भी आगम प्रमाण निर्णायक है।

☐ पद्मपुराण, पर्व ३ : आदिनाथ भगवान का जन्मोत्सव—

इन्द्राणी प्रमुखा देव्यः सद्वर्णैरवलेपनैः ।
चक्रुः उद्वर्तनं भक्त्या, करैः कोमलपल्लवैः ॥१८४॥
महीध्रमिव तं नाथं: घटैर्जलधरैरिव ।
अभिषिच्य समारब्धा, कर्तुमस्य विभूषण ॥१८५॥

(भावार्थ : इन्द्राणी है प्रमुख जिनमें ऐसी देवाङ्गनाओं ने अपने पल्लव के समान कोमल हाथों से भगवान के शरीर पर सुगन्धित चन्दन का लेप किया तथा महागिरि के समान जिनेन्द्र का मेघ के समान कलशों से अभिषेक करके इन्हें विभूषित करना प्रारम्भ किया ।)

☐ हरिवंश पुराण, सर्ग ८ ऋषभ जन्मोत्सव—

अत्यन्त सुकुमारस्य, जिनस्य सुरयोषितः ।
शच्याद्या पल्लवस्पर्शात् सुकुमारकरास्ततः ॥१७२॥
दिव्यामोदसमाकृष्ट, षट पदौघानुलेपनैः ।
उद्वर्तयन्त्यस्ता प्रापुः शिशुस्पर्शं नवं सुखम् ॥१७३॥
ततो गन्धोदकैः कुम्भैरभिषिच्यन् जगत्प्रभुम् ।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतम् ॥१७४॥

(भावार्थ : इन्द्राणी आदि देवाङ्गना अत्यन्त सुकुमार प्रभू का शरीर को पल्लव हूते अधिक जो कोमल कर तिन कर अंगो-

छती भई, अर दिव्य सुगन्ध जा पर भ्रमर गुञ्जार करै है—ताका लेपन करती भई, बहुरि गन्धोदक के कलशनि करि (जगत्प्रभुम् अभिषिञ्चन्) भगवान का अभिषेक करती हुई...............।

□ हरिवंशपुराण, सर्ग ३८ भगवान नेमिनाथ जन्मोत्सव—

ततः सुरपतिस्त्रियः, जिनमुपेत्य शच्यादयः ।
सुगन्धितलपूर्वकैः, मृदुकराः समुद्वर्तनम् ॥५३॥
प्रचक्रुरभिषेचनं, शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः ।
पयोधरभरैर्निजैरिव समावर्जितैः ॥५४॥

(भावार्थ : इसके बाद शची आदि देवाङ्गनाओं ने भगवान के शरीर पर अपने कोमल हाथों से उद्वर्तन किया एवं जल से भरे हुए उन्नत घड़ों से प्रभु का अभिषेक किया ।)

□ आदिपुराण : आदिजिनजन्मोत्सव प्रसंग—

गन्धैः सुगन्धिभिः सान्द्रैरिन्द्राणी गात्रमीशितुः ।
अन्वलिपच्चलिम्पद्भिरिवामोदैस्त्रिविष्टपम् ॥

(भावार्थ : इन्द्राणी प्रभू के शरीर नै जल सहित सुगन्धित गन्ध कर लेपन करती भई सो मानो सुगन्ध करि तीन जगत नै लेपन करती ही प्रभू के सर्वांग में लेपन कियो ।

विज्ञ जनों के लिए उपर्युक्त प्रमाण पर्याप्त हैं । पूजन के षडङ्ग बताये गये हैं । जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि

अभिषेक आदि पूजन के पहले की आवश्यक क्रिया है; जहां भगवान का अभिषेक ही नहीं किया वहाँ पूजन का जो सबसे बढ़ कर महत्त्व माना जाता है, वह प्राप्त नहीं हो सकता अभिषेक क्रिया महत्पुण्य सम्पादक सातिशय क्रिया है। पूजन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है, एवं यही प्रधान है।

इसलिये जहाँ पूजन का विधान है वहां पर सर्वत्र अभिषेक विधान सुतरां सिद्ध है। अतः अभिषेक पूजन करना जैसे श्रावकों के लिये नियत है वैसे ही श्राविकाओं के लिये भी नियत है। शास्त्रों में सर्वत्र श्रावक–श्राविकाओं के लिये पूजनविधान समान ही मिलता है। अतः यह बात निर्णीत हुई कि जैसे पुरुष अभिषेक पूर्वक पूजन करते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी अभिषेक पूर्वक पूजा करने की अधिकारिणी हैं।

भगवान के पूजन अभिषेक का अधिकारी वही हो सकता है जो मुनिराजों व संयमी जनों को दान देने का अधिकारी हो। मुनियों को आहारदान करने का अधिकार स्त्रियों को है अतः उन्हें भगवान् की पूजा एवं अभिषेक का अधिकार भी स्वयंसिद्ध है।

स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक करना विधेय है

(पं० चन्दनलाल जैन साहित्यरत्न-शास्त्री ऋषभदेव)

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती, राजीमती द्रोपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता, चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरो प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

स्त्रियों के द्वारा जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करना आगम सम्मत नहीं है। इस बारे में श्री पं० शिवजी रामजी पाठक राँची वालों ने "स्त्री प्रक्षाल आदि निषेध" इस नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में उन्होंने अपने मन्तव्यों को पुष्टि में जो शास्त्र प्रमाण प्रस्तुत किये हैं और जो दलीले दी हैं उनमें से एक भी प्रमाण या दलील सत्य की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। इस बारे में आगे विस्तार पूर्वक विचार किया जावेगा।

इस संसार में पुरुषों की उत्पत्ति जितनी प्राचीन है स्त्रियों की उत्पत्ति भी उतनी ही प्राचीन है। स्त्री पुरुष दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। विना स्त्री के पुरुष का तथा विना पुरुष के स्त्री का कोई महत्व नहीं है। वल्कि कई कारणों से स्त्रियाँ पुरुषों से भी अधिक महत्वपूर्ण मानी गई हैं। पुरुष की प्रकृति विध्वंसक मानी गई है और स्त्री की प्रकृति सृजनशील मानी गई

है। पुरुष की विध्वंसक प्रकृति को नियंत्रित कर सृजन की ओर मोड़ने का गुरूतर कार्य स्त्री ही कर सकती है।

जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार स्त्री पुरुष दोनों में से एक दूसरे के बिना गृहस्थाश्रम भी नहीं चल सकता है। गृहस्थ जीवन में दोनों का साहचर्य एव सहयोग अनिवार्य है। धर्म अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ जो कि गृहस्थ जीवन के अनिवार्य अंग हैं को साधना में दोनों ही समान रूप से परस्पर सहयोगी होते हैं। परन्तु मोक्ष पुरुषार्थ की साधना एकाकी होती है और इस साधना में सांसारिक सम्बन्धों को तोड़ कर दोनों को ही स्वतन्त्र रूप से आत्म कल्याण करने का अधिकार है। इस मोक्ष पुरुषार्थ की साधना में स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं है। धार्मिक कार्यों में स्त्रियां सदैव पुरुषों से आगे रही हैं। भगवान महावीर के संघ में भी साधुओं से लगभग तीन गुनी अधिक साध्वियां थी। उसी प्रकार श्रावकों से तीन गुनी अधिक संख्या श्राविकाओं की थी।

सुभाषित रत्न सन्दोह में आचार्य अमितगति ने स्त्रियों के बारे में जो निम्न उद्गार व्यक्त किये है वे मननीय हैं।

स्त्रीतः सर्वज्ञनाथः सुरनत चरणो जायतेऽबाधबोधः,
तस्मात्तीर्थं श्रुताख्यं जनहित कथकं मोक्ष मार्गाव बोधः।
तस्मात्तस्माद्विनाशो भवदुरित ततेःसौख्यमस्माद्वि वाधं,
बुध्वेवंस्त्रीपवित्रां शिवसुखकारणीं सज्जनःस्वीकरोति ॥

स्त्री तीर्थंकरों की जननि है। तीर्थंकरों के उपदेशों से मोक्ष मार्ग का ज्ञान होता है। और इससे भव्य प्राणी आत्म कल्याण करते हैं ऐसी पवित्र माताएँ समादरणीय वन्दनीय है।

इसी प्रकार १२ वीं शती के प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य ने वस्तुपाल प्रशस्ति में कहा है—

अस्मिन्नसार संसारे सारं सारंग लोचना।

यत्कुक्षी प्रभवाएते वस्तुपाल भवादृशाः॥

इस असार संसार में यदि कोई वस्तुसार है तो वे माताएँ ही हैं जिनकी कोख से वस्तुपाल जैसे तीर्थोद्धारक नररत्न उत्पन्न होते हैं।

स्त्रियों की महिमा को प्रगट करने वाला निम्न दोहा तो सर्वत्र प्रसिद्ध है—

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से ही उपजे, महावीर भगवान॥

वैदिक सम्प्रदाय में भी मनुस्मृति कारने स्त्रियों को आदरणीय माना है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाक्रिया॥

येही मनुस्मृतिकार कहते हैं—

"दस उपाध्यायों की अपेक्षा एक आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों की अपेक्षा एक पिता श्रेष्ठ है लेकिन हजार पिताओं की अपेक्षा एक माता श्रेष्ठ है।"

ऐसी आदरणीया माता वहिनों को जिन्हें भारतीय समाज में गृहलक्ष्मी, गृहशोभा, गृहदेवी तथा गृह स्वामिनी जैसे उत्कृष्ट सम्बोधनों से सम्बोधित किया जाता है उन्हें जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करने की अनधिकारिणी कैसे माना जा सकता है।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम की शासिका संचालिका महिलाओं को भगवान का अभिषेक करने से रोकना कौन उचित मानेगा।

ब्रह्मसूत्राभाव—

"स्त्री प्रक्षाल आदि निषेध" पुस्तक के लेखक का कहना है कि विना ब्रह्मसूत्र या यज्ञोपवीत धारण किये किसी को भी देव पूजादि षट् कर्म करने का अधिकार नहीं है। इस वारे में अनेक अभिषेक पाठों के श्लोक प्रस्तुत किये हैं जिनका भाव यह है कि अभिषेक कर्ता को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। परन्तु निषेध कर्ता ने साथ में जोड़ दिया कि "जनके यज्ञोपवीत नहीं है उन्हें षट् कर्म करने का अधिकार नहीं है। स्त्रियों के यज्ञोपवीत नहीं होता अतः उन्हें षट् कर्म करने का अधिकार नहीं है।"

निषेधकर्ता ने जिन अभिषेक पाठों के श्लोक प्रस्तुत किये हैं वे सभी पंचामृत अभिषेक पाठ के श्लोक हैं और पुस्तक लेखक ने आगे उसी पुस्तक में पंचामृत अभिषेक का निषेध किया है।

ऐसी स्थिति में उन्हीं के द्वारा अमान्य किये गये पंचामृत अभि-षेक पाठ के ये श्लोक प्रमाण कैसे माने जा सकते हैं। ऐसा ही एक प्रमाण पूजा सार का दिया है यथा—

धौत वस्त्रं पवित्रं च ब्रह्मसूत्रं सभूषणं ।
जिन पादार्चितं गंध–माल्यंधृत्वा चर्यतेजिनः ।।

और इस श्लोक का अर्थ उन्हीं के शब्दों में—

"आभूषणों के साथ पवित्र धुले हुए वस्त्र और यज्ञोपवीत पहिन कर श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणार्चन से पवित्र गंध माल्य को धारण करके भगवान की पूजा करनी चाहिये।"

यहाँ पर भी पुस्तक लेखक ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) के प्रमाण के साथ २ गंधमाल्य की पुष्टि कर गये हैं जिसका कि वे विरोध करते हैं। पूजासार के उक्त श्लोक का जो अर्थ उन्होंने किया है उसमें भी कौन से शब्दों के द्वारा वे स्त्रियों को अभिषेक करने की अनधिकारिणी सिद्ध करना चाहते हैं समझ में नहीं आता। इस प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत कर मात्र पुस्तक का कलेवर बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

स्त्री को यज्ञोपवीत की आवश्यक्ता इसलिये नहीं है कि उसकी सारी सत्ता अपने पति में ही विलीन रहती है। विवाह होते ही पति का गोत्र ही स्त्री का गोत्र हो जाता है। गृहस्थ धर्म की गाड़ी को मोक्ष मार्ग तक ले जाने के लिये पति–पत्नी

दोनों ही समान सहयोगी हैं। गृहस्थ का अर्थ घर में रहने वाला मात्र न होकर सपत्नीक को ही गृहस्थ संज्ञा मानी गई है यथा—

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः ।
गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुडयकट संहतिम् ॥

(सागार धर्मामृत)

जिसने कन्या दी है उसने त्रिवर्ग सहित गृहस्थाश्रम ही दे दिया है। गृहणी को ही घर कहा गया है दीवार या ईंट पत्थर आदि के ढेर का नाम घर नहीं है।

इसीसे मिलता जुलता एक नीतिकार का अभिप्राय भी देखिये।

माता यस्य गृहे नास्ति, भार्या च प्रिय वादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

जिसके घर में माता अथवा भार्या के रूप में स्त्री नहीं है उसे तो जंगल में चले जाना चाहिये। क्योंकि उसके लिये घर और जंगल समान हैं। इस प्रकार स्त्री रहित घर को जगल के समान माना गया है।

गृहस्थ के लिये जो दो यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है वह इसीलिये है कि एक अपना और एक धर्मपत्नी का। स्त्री का समस्त सर्वस्व पति ही होता है। अतः स्त्री के सभी संस्कार पति में ही गर्भित होते हैं। गृहस्थाश्रम भारतीय संस्कृतिकी प्रमुख आधार शिला है। यह दो आत्माओं का गंगा यमुना का

पवित्र संगम है, भिन्न २ प्रकृति की दो धाराएं परस्पर मिलकर एकाकार हो जाती हैं। अतः पति के द्वारा दो यज्ञोपवीत धारण करना ही स्त्री का भी यज्ञोपवीत युक्त होना है। इस प्रकार यज्ञोपवीत होने से स्त्री को जिनाभिषक करने से वंचित रखना रखना किसी भी प्रकार युक्ति युक्त नहीं ठहरता है।

"स्त्री प्रक्षाल आदि निषेध" पुस्तक पृष्ट ६ पर लिखा हैं "स्त्रियां अपने शुद्ध समय में स्नानादि से पवित्र होकर श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर सकती है परंतु अभिषेक नहीं कर सकती हैं क्योंकि उन्हें यज्ञोपवीत के लिये अपात्र कहा गया है।"

स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता एक तरफ तो लिखते हैं विना यज्ञोपवीत के षट्कर्म नहीं किये जा सकते हैं और दूसरी तरफ लिख दिया पूजन तो कर सकती हैं। स्त्रियों के यज्ञोपवीत नहीं होता है तो फिर वे विना यज्ञोपवीत के पूजा कैसे कर सकती है। इस तरह की बचकानी वातों पर कोई कैसे विश्वास कर सकता है।

इस प्रकार स्त्री प्रक्षाल निषेध कर्ता को प्रथम द्लील कि स्त्रियां यज्ञोपवीत की अधिकारिणी नहीं है अतः षट्कर्म नहीं कर सकती हैं स्वयं आपके ही कथन से निरस्त हो जाती है।

हमारे यहाँ अनेक आचार शास्त्र श्रावकाचार, सावयधम्म दूहा, सागार धर्मामृत, अनागार धर्मामृत, श्रावक प्रतिक्रमणादि नामों से प्रचलित हैं और हम सब उन्हें मान रहे हैं और इन्हीं आचार शास्त्रोक्त विधिपूर्वक व्रत नियमों का पालन परम्परा से

होता आ रहा है। पुरुषों की ही तरह स्त्रियां भी इन्हीं आचार शास्त्रोक्त व्रत, नियम, संयम, तप यहाँ तककि महाव्रतों का भी पालन कर रही हैं। स्त्रियों या आर्यिकाओं के लिये कोई अलग से श्रावकाचार या अनगारा धर्मामृत नहीं है इससे सिद्ध होता है कि स्त्री पुरुष दोनों के लिये एक ही प्रकार के आचार शास्त्र विधेय हैं और स्त्रियां भी पुरुषों की तरह ही जिनाभिषेक करने की अधिकारिणी हैं। आपकी मान्यता के अनुसार तो ब्रह्मसूत्राभाव के कारण स्त्रियां ब्रह्मचारिणी, क्षुल्लिका, आर्यिका कुछ भी नहीं बन सकेंगी। अथवा उन्हें इसके लिये यज्ञोपवीत धारिणी बनना पड़ेगा।

स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता स्वयं ही इन बिना यज्ञोपवीत धारिणी स्त्रियों को पूज्य और आदरणीय मानते हुए लिख रहे हैं "ठीक इसी प्रकार व्रती आर्यिकाएं क्षुल्लिकाए ब्रह्मचारिणियां एवं अन्यान्य और भी साधारण स्त्रियां भी पूज्य या आदरणीय हैं"

आपके ही उक्त कथन से यज्ञोपवीत विहीना भी व्रती अव्रती सभी स्त्रियां पूज्य या आदरणीय हैं तो फिर आपका ब्रह्मसूत्राभाव का सिद्धान्त कहाँ गया। इस प्रकार आपके ही द्वारा यज्ञोपवीत धारी ही षट्कर्म करने का अधिकारी है यह दलील सर्वथा खोखली सिद्ध हुई है।

स्त्रियों का रजस्वला होना—

स्त्रियों को जिनाभिषेक के लिये अनधिकारिणी बताने वालों ने दूसरी युक्ति दी है "स्त्रियों का रजस्वला होना" अर्थात् स्त्रियां

रजस्वला होती हैं अतः जिनाभिषेक नहीं कर सकती। इस बारे में कोई शास्त्रीय प्रमाण तो वे प्रस्तुत नहीं कर सके हैं परन्तु शूद्रों द्वारा दर्शन पूजन करने सम्बन्धी कुछ श्लोक हरिवंश पुराण के लिखकर व्यर्थ ही पुस्तक का कलेवर बढ़ाने का प्रयत्न किया है और-

"कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा"

वाली उक्ति चरितार्थ की है।

इस विषय में समझना चाहिये कि, स्त्रियां रजस्वला होने के दिनों में अशुद्ध रहती हैं परन्तु शास्त्रों में उनकी भी मर्यादा है। सूतक पातक प्रकरण को आप हम सब जानते हैं उसमें स्पष्ट लिखा है—

"रजस्वला स्त्री चौथे दिन पति के भोजनादिक के लिये शुद्ध होती है। परन्तु देव पूजन पात्रदान के लिये पांचवे दिन शुद्ध होती है।"

इस प्रकार आप हम सब मानते हैं कि रजस्वला होने के बाद पांचवें दिन स्त्री शुद्ध होती है। रजस्वला होने का अशौच सदैव नहीं रहता। यही परम्परा समाज में मान्य है।

एक नीतिकार ने तो बताया है कि रजस्वला होने से स्त्री की अशुद्धि रज के साथ निकल जाती है—

भस्मना शुद्धयते कांस्यं, नदी वेगेन शुद्धयते।
रजसा शुद्धयते नारी, ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥

कदाचित स्त्री प्रक्षाल निषेध कर्ताओं के कथनानुसार स्त्रियों को भगवान का अभिषेक के वारे में रजस्वला होना बाधक मान भी लिया जाय (मान्य तो है ही नहीं) तो जो वृद्धा माता वहिनें अथवा कुमारिकाएं रजस्वला नहीं होती हैं वे तो अभिषेक करने की अधिकारिणी उन्हीं के कथनानुसार हो जाती हैं। इस प्रकार इस दलील के द्वारा भी उन्हें अपनी लुटिया डूवती नजर आई नजर आई तो एक कुतर्क प्रस्तुत कर दिया कि—

"कोई स्त्री अभिषेक करते समय रजस्वला हो जाय तो इसका क्या प्रायश्चित है।"

इस तरह के कुतर्क द्वारा लोगों को भ्रम में डालने का प्रयत्न किया गया है जो सर्वथा अनुपयुक्त है। लगभग सभी स्त्रियों के मासिक धर्म का समय निश्चित रहता है और उन्हें अपने रजस्वला होने के समय का पूर्व ज्ञान हो जाता है। इस वारे में जिन माता वहिनों को जरा भी शंका रहती है वे स्वयं ही सोच समझ कर ऐसे समय में धार्मिक कार्यों में भाग नहीं लेती हैं।

इस तरह के कुतर्कों के बारे में मैं भी उन निषेधकर्ता विद्वानों से पूछना चाहूंगा कि यदि कोई महिला मन्दिर में दर्शन करते, पूजन करते, स्वाध्याय करते, अथवा भोजन वनाते समय रजस्वला हो जाय तो आप कौन से प्रायश्चित का विधान करते हैं। वही प्रायश्चित अभिषेक कर्ता महिला पर भी लागू कर दीजिये।

स्त्री प्रक्षाल निषेध पुस्तक में पृष्ठ ६ पर स्वयं उन्होंने लिखा है "स्त्रियां अपने शुद्ध समय में भगवान की पूजा कर

सकती है" उक्त कथन के द्वारा उन्होंने स्वयं यह बात स्वीकार की है कि स्त्रियों का कोई शुद्ध समय होता है अर्थात् स्त्रियां सदैव अशुद्ध नहीं रहती हैं।

इस प्रकार आपके ही कथन से स्त्रियों को रजस्वला होने के कारण जिनाभिषेक करने की अनधिकारिणी बताना भी निरस्त हो जाता है।

शारिरिक्त अशुद्धि—

स्त्री प्रक्षाल निषेध कर्ताओं की तीसरी दलील है कि स्त्रियों के गुप्तांग सदैव अशुद्ध रहते हैं इसलिये वे अभिषेक नहीं कर सकती हैं। इस बारे में भाव संग्रह के कुछ श्लोक प्रस्तुत किये। भाव संग्रह के वे श्लोक संयम प्रकरण से सम्बन्धित हैं जिन पूजन या जिनाभिषेक से इन श्लोकों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं हैं। इस कथन से कदापि यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्रियां जिनाभिषेक नहीं कर सकती। संवेग और वैराग्य भावों की अभिवृद्धि हेतु शरीर की नश्वरता एव अपवित्रता की बातें लिखी गई हैं यथा—

पल रुधिर राध मल थैलो, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहे घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥

(छहढाला)

इस प्रकार यह मानव देह चाहे स्त्री का हो या पुरुष का मलीन और अपवित्र है इसके प्रति मोह ममत्व नहीं रखना चाहिये भाव संग्रह के वे श्लोक भी केवल यही प्रगट करते हैं कि स्त्रियां श्रेष्ठ संयम धारण नहीं कर सकती हैं। स्त्री प्रक्षाल निषेध पुस्तक में भरतेश वैभव का एक गुजराती अनुवाद का अंश प्रस्तुत कर स्त्री प्रक्षाल निषेध को पुष्टि करने का असफल प्रयास किया है। उनके उस अनुवाद का सारांश है—

"इस प्रकार सम्राट् ने पंचामृत के असंख्य कलशों से अभिषेक किया। पहाड़ जितनी सामग्री इकट्ठी हो गई थी उसे परिवार की स्त्रियां ले जा रही थी। रानियाँ भी सम्राट् को मदद कर रही थी। कई रानियां उन्हें सामग्री दे रही थी, कई आरती उतार रही थी, अमृत से भरे बडे २ घड़े उन्हें दे रही थी। भरत राज स्वय घड़े उठा २ कर अभिषेक कर रहे थे और रानियों को वे देखने का कह रहे थे।"

निषेधकर्ता ने बड़े उत्साह के साथ यह उदाहरण प्रस्तुत किया लगता है। वे लिखते हैं—

"अने राणियो ने ते जोवानु केहता हता"

इस पंक्ति में स्पष्ट आदेश कहाँ है कि स्त्रियां प्रक्षाल करने की अधिकारिणी नहीं हैं।

वलिहारी है उस लेखक की विद्वत्ता और बुद्धिमानी की जो इस पंक्ति का अर्थ करते हैं "स्त्रियां प्रक्षाल करने की अधि-

कारिणी नहीं है" स्पष्ट तो क्या अस्पष्ट भी ऐसा अर्थ नहीं निकाला जा सकता है।

भरतेश वैभव के इस गद्यांश से तो पंचामृत अभिषेक और आरती की भी पुष्टि हो रही है जबकि स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता पंचामृत अभिषेक और आरती के भी विरोधी हैं न जाने क्या सोचकर इस प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिन स्त्रियों को वे अशुद्ध और अपवित्र मानकर जिनाभिषेक की अनधिकारिणी बता रहे हैं उन रानियों और स्त्रियों के हाथों से दी गई सामग्री अभिषेक के काम में कसे पवित्र मान ली गई!

इस प्रकार स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता द्वारा दिये गये प्रमाण या युक्तियां एक भी उनके पक्ष का समर्थन नहीं करती हैं उल्टे उन्हीं के प्रमाण स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक करने, आरती, पुष्पार्चन, तथा पंचामृत अभिषेक का समर्थन करते हैं।

मथुरा के कंकाली टीला जिसे "जैन टीला" भी कहते हैं वहाँ से हजारों प्राचीन जैन अवशेष प्राप्त हुए हैं। ईस्वी सन् से कई शताब्दी पहले से लगाकर बारहवीं शताब्दी तक के ये अवशेष तीर्थंकर प्रतिमा, आयाग पट्ट, वेदियां, तोरण द्वार स्तंभ आदि के रूप में प्राप्त हुए हैं। इनमें से बहुत से अवशेष ऐसे हैं जिनपर उस समय की प्रचालित ब्राह्मीलिपि तथा संस्कृत प्राकृत भाषा में लेख खुदे हुए हैं। जिन शिला पट्टों या मूर्तियों पर वे उत्कीर्ण हैं उनके बनवाने एव प्रतिष्ठापति कराने वाली अधिकांश महिलाएँ ही हैं।

मथुरा से प्राप्त तीर्थंकर प्रतिमाओं की चरण चौकी पर प्रायः हाथ जोड़े हुए या पूजा सामग्री लिये अनेक स्त्रियों के चित्रण अंकित हैं। ये अवशेष लखनऊ तथा मथुरा के संग्रहालयों में आज भी विद्यमान हैं।

प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर उत्कीर्ण ये स्त्रियों के चित्रण स्त्रियों द्वारा जिन प्रतिमाजी को स्पर्श करने के हस्ताम-लकवत सुस्पष्ट एवं अकाट्य प्रमाण हैं।

जैन विवाह विधि की जितनी भी पुस्तकें प्रचलित है सभी में वर वधू के द्वारा जिन मन्दिर में जाकर अभिषेक पूजन करके विनायक यन्त्र को घर लाकर प्रतिदिन अभिषेक पूजन करने का विधान है।

स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता स्त्रियों को जिनाभिषेक की अनधि-कारिणी बताकर ही संतुष्ट नहीं हुए हैं वे स्त्रियों को त्यागियों को आहार दान देने की भी अनधिकारिणी बताकर अप्रमाणों को प्रमाण बताने का प्रयास किया हैं।

महासती चन्दन बाला के द्वारा भगवान महावीर को आहार देना और मैना सुन्दरी के द्वारा सिद्ध चक्र विधान करना और यंत्राभिषेक के गंधोदक द्वारा श्रीपाल एवं सात सौ कोढियों का कोढ मिटाना आदि ऐसे ज्वलंत प्रमाण हैं जिन्हें कोई अमान्य नहीं कर सकता। इन दोनों प्रमाणों से स्त्रियों का आहार दान देना तथा जिनाभिषेक करना स्पष्ट सिद्ध होते हैं। स्त्रियों के

द्वारा जिनाभिषेक किये जाने के बारे में तो पुराणों या कथा ग्रंथों आदि से इतने प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते है कि वे सब दिये जावे तो एक बहुत बड़ी स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है।

मैं समझता हूं ऐसा करने में स्त्री प्रक्षाल निषेधकर्ता का एक मात्र उद्देश्य—

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् कुर्याद् रासभरोहणं।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत ॥

उक्त श्लोक में वर्णित ही रहा प्रतीत होता है। तभी इस प्रकार के अप्रमाणों को प्रमाण बताने का प्रयत्न कर गये और स्त्रियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार आगम प्रमाण एवं युक्तियों से स्पष्ट सिद्ध है कि स्त्रियां जिनाभिषेक कर सकती हैं एवं मुनिराजों को आहार कर सकती हैं। अतः किसी भी माता बहिन को किसी के बहकावे में न आकर जिनाभिषेक आहार दान आदि सभी धार्मिक कार्य सोल्लास करने चाहिये।

———

तोड़ फोड़ करने वालों से सावधान रहे।

कुछ नमूने इस प्रकार है जिनका कुछ लोग विभिन्न माध्यमों से प्रचार कर रहे हैं आइये इनकी वातों पर विचार करें।

अष्टद्रव्य और पूजा की विधि दूसरों से ली है यह जैनों की अपनी नहीं है। यह कहना भी धोखा है कि द्रव्य आलम्वन है। आव्हानन विसर्जन व्यर्थ है।

ध्यानतराय, भूधरदास वृन्दावन दास की स्तुतियों में परिवर्तन करें इनमें तथा महावीर की कृपा से यह कार्य हुआ है इसमें ईश्वर कर्तृत्व की गंध आती है।

अभिषेक की कोई आवश्यकता नहीं है पंचामृत अभिषेक व्यर्थ है

मूर्तियों की पंच कल्याण प्रतिष्ठा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह आडम्वर का कार्य है। इसमें लगाये गये पैसे का अपव्यय है।

धूप जलाना, दीपक प्रज्वलित करना, होम करना व्यर्थ है।

मन्दिरों में चढ़ाई गई सामग्री चढ़ाना वन्द करदें तो श्वेतांवर, स्थानकवासी, दि जैन मिल जावेंगे। आदि अनर्गलल वातें वनाकर समाज के भक्ति—प्रवाह को रोकने की असफल चेष्टा कर रहे हैं।

कुछ लोगों के मस्तिष्क में ही विकार पैदा हो गया है कि जैनों के पास अपना कुछ नहीं है जो कुछ दिखाई देता है दूसरों

की नकल है। जैसे पूजा विधि वैष्णवों की नकल है। अष्टद्रव्य व्यर्थ है। यह कहना भी धोखा है कि द्रव्य आलम्बन है। उन लोगों को समझ लेना चाहिए कि वैष्णव धर्म का प्रारंभ तब हुआ जब देश में जैन और बौद्धों द्वारा अहिंसा का अधिक प्रचार हुआ। हिंसात्मक यज्ञ में होने वाली हिंसा को देखकर जन साधारण की रुचि हटी श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का निर्माण हुआ। श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद को लेकर श्री मामानुजाचार्य ने राम भक्ति और वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति को आधार मानकर पुष्टि मार्ग की नींव डाली। जिस समय शैव शक्ति पाशुपत और लिंगायत इनका बोलबाला था। अनेक प्रकार के हिंसात्मक यज्ञ को धर्म का आधार समझा जाता था। तब हिन्दू धर्म के आचार्यों ने वैष्णव धर्म की आधार शिला रखी। और हिंसात्मक यज्ञ कलियुग के लिए निषेध कर दिये। वैष्णव का अर्थ है विष्णु की पूजा करने वाले अहिंसात्मक भावनाओं के अनुयायी। इसीलिए वैष्णव भोजनालय का अर्थ है शाकाहारी भोजनालय। वैष्णव धर्म ने जिस पूजन विधि को अपनाया है वह जैनों की नकल है। ब्रज संस्कृति का इतिहास लेखक प्रभुदयाल अग्रवाल।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने जैन कांफ्रेंस के अवसर पर कहा था—

महाराजा गायकवाड़ ने पहले दिन कांफ्रेंस में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार अहिंसा परमो धर्मः इस सिद्धान्त ने ब्राह्मण

धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। यज्ञ योगादि में पशुओं का वध होकर यज्ञार्थ पशु हिंसा आजकल नहीं होती। यही एक बड़ी भारी छाप ब्राह्मण धर्म पर मारी है।

इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय पुण्य जैन धर्म के हिस्से में है। जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्म पीछे से कितना निकट सम्बन्ध हुआ है सो ज्योतिष शास्त्री भास्करा-चार्य के ग्रंथ से विशेष उपलब्ध होता है। उक्त आचार्य ने ज्ञान दर्शन और चरित्र को धर्म के तत्व बताये हैं। एक ही आर्य प्रजा के दोनों धर्म हैं इन दोनों धर्मों का ऐसा निकट सम्बन्ध निरंतर ध्यान में रखना चाहिए और परस्पर ऐक्य बढ़ाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

हमारी पूजा का उद्देश्य है—देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र देव की पूजा सभी प्रकार के दुःखों का नाश करने वाली है। मनो-भिलाषित कार्य की सिद्धि करने वाली है और मन के विकार दूर करने वाली है। पूजा दो प्रकार की होती है द्रव्य पूजा और भाव पूजा। साधु जो पूजा करते हैं वह भाव पूजा है। मूलाचार में लिखा है देव पूजा अपने विभव के अनुसार करना चाहिए। मूलाचार की टीका में आचार्य वसुनन्दी ने कहा है कि जिनेन्द्र देव की पूजा के लिए अक्षत गंध धूप आदि जिस सामग्री का उप-योग किया जाय उसे प्रासुक और निर्दोष होना चाहिए।

मूर्ति के द्वारा मूर्तिमान की पूजा की जाती है मूर्ति को देखते ही मूर्तिमान का स्मरण हो जाता है। मूर्ति मनुष्य के

चंचल चित्त को रोकने का एक मात्र आलम्बन है। मूर्ति पूजा उस आदर्श की पूजा है जो प्राणी मात्र का सर्वोच्च लक्ष्य है। मोहन जोदाड़ो की खुदाई से लेकर आज तक की खुदाई में विभिन्न स्थानों पर जैन मूर्तियां प्राप्त होती है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी यह स्वीकार किया है कि मूर्ति पूजा जैनों से ही शुरू हुई जैन पूजा किसी की अंश मात्र नकल नहीं है।

स्वामी समन्त भद्राचार्य ने भ. वासुपूज्य की स्तुति करते समय कहा है–हे नाथ ! तुम वीतराग हो इसीलिए तुम्हें अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं। और वीत द्वेष होने के कारण निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं। फिर भी तुम्हारे पवित्र गुणों की स्मृति हमारे चित्त को पाप रूपी मैल से बचाती है। जैन पुजारी आकांक्षा नहीं रखता वह तो जन्म जरा को दूर करने के लिए पूजा करता है। आपकी पूजा करते समय प्राणी को जोसावद्यदोष होता है वह पुण्य राशि में दोष का कारण नहीं बनता। विष की एक कणिका अपार समुद्र के जल को दूषित नहीं कर सकती।

बाह्य वस्तु की अपेक्षा न रखता हुआ केवल आभ्यन्तर कारण जीवादि किसी द्रव्य का परिणाम गुण दोष की उत्पत्ति में समर्थ नहीं है। "कारण य सानिध्यात्सर्व कार्य समुम्दव:" दोनों कारणों के मिलने पर ही कार्य की सिद्धि होती है। महावीर स्वामी के समय में जो पूजा थी आज भी वह वैसी रहे यह कैसे सम्भव है। समय का परिवर्तन वस्तु का स्वभाव है यह मनोवैज्ञानिक बात है।

हमारे विसर्जन में आह्वाननं नैव जानामि वाला पद दूसरों के पद से मिलता हुआ देखकर चटपट कहने लगे देखो यह दूसरों की प्रतिकृति है। परन्तु उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मानवीय स्वभाव संसार के विभिन्न देशों में बसने वाले कवियों और लेखकों के भाव एक दूसरे से मिल जाते हैं। भाषा और भावों की समानता एक देश में बसने वाले भक्त हृदय पर पड़ना स्वाभाविक है। क्योंकि धर्म और विनय रसिक व्यक्तियों के भावों में समानता पाई जा सकती है यह नैसर्गिक बात है।

इसी प्रकार जो स्थापना की जाती है उसमें न भगवान सिद्धालय से आते हैं और न जाते हैं। यह तो मन की भावना है।

पादौ त्वदीयो मम प्रतिष्ठतां सदा,
तमो धुनाना हृदि दीपिका विव।

आपके दोनों चरण कमल मेरे हृदय में सदा कीलित हुए की भांति प्रतिबिम्बित से तथा अन्धकार का नाश करने वाले दीपक की तरह स्थित हैं। इसी प्रकार जल से अभिषेक अथवा पंचामृताभिषेक दोनों ही शास्त्र सम्मत हैं। पंथ की लकीर को पकड़कर उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। पद्मपुराण की टीका करते समय पन्डित दौलतरामजी ने हिन्दी टीका इस प्रकार की है—

"जो नीर से जिनेन्द्र का अभिषेक करें सो देवों कर मनुष्यों कर सेवनीक चक्रवर्ती जिसका राज्याभिषेक देव विद्याधर करें।

दग्वव करं अरहन्त का अभिषेक करें सो क्षीर सागर के जल समान कांतिधारक देव होय है। मनुष्य होय मोक्ष वालें। दधिकर ददि समान उज्जवल यह पालें। जो घृत कर अभिषेक करें सो स्वर्ग विमान विषे महावलवान होय परम्परा अनन्त दीप्ति को धरें इक्षुरस कर जिननाथ का अभिषेक करें सो अमृत का अहारी है सुरेश्वर पद पाय मुनिश्वर होय अविनश्वर पद पावें।"
१६५ से १६९ श्लोक तक।

अभिषेक पाठ संग्रह में पं. पन्नालालजी सोनी ने १५ अभिषेक पाठों का संग्रह किया है। जिसमें पूज्यपाद आचार्य गुणभद्र अभयनादि इन्द्रनान्दि सकलकीर्ति अभद्र अनेक आचार्यो द्वारा निर्मित अभिषेक पाठ हैं। इससे पंचामृताभिषेक की मान्यता दिगम्बर जैन शास्योक्त सिद्ध होती है।

जो लोग जल मात्र से ही अभिषेक को शास्त्र सम्मत मानते हैं वे लोग हजारों की संख्या में विपुल द्रव्य खच करने के उपरान्त श्रमण वेल गोला जाकर घी दूध केशर चन्दन आदि विविध द्रव्यों के द्वारा वाहुंवली भगवान का अभिषेक देखकर अपने को कृतार्थ क्यों मानते हैं। यदि एक जल मात्र का अभिषेक देखना है तो प्रति वर्ष वर्षा के समय वे वहां जाकर जलाभिषेक देख सकते हैं। इससे प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन होगे। वास्तव में वात यह है इसमें पथ मोह नहीं होना चाहिए। आगम के कथन पर पूर्ण श्रद्धा रखना चाहिए।

आचार्य शांतिसागर भी महाराज जिनकी प्रज्यता तथा श्रेष्ठता को सभी पंथ वाले स्वीकार करते हैं। कुंथलगिरि में उन्होंने यम सल्लेखना की थी। उन दिनों की सल्लेखना में वे प्रति दिन पंचामृत अभिषेक बड़े ध्यान से देखा करते थे। गंधोदक लेते थे। यदि यह कार्य धर्म तथा संस्कृति के विरुद्ध होता तो वे महान तपस्या के काल में अभिषेक देखने का कष्ट क्यों करते। इसलिए हमें समझना चाहिए पंचामृत अभिषेक शास्त्र सम्मत है।

यह व्यक्तिगत रूचि व अपने प्रदेश में न होने के कारण कोई पंचामृत अभिषेक करे या न करे। किन्तु उसकी प्रमाणिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारे प्रदेश में नहीं होता है तो न करें।

प्रत्येक वस्तु आलम्बन बन सकती है वस्तु के प्रयोग करने वाले पर निर्भर है। शस्त्र, शास्त्र, वीणा, पुस्तक, नर–नारी जैसे के हाथ में पहुंच जाते हैं तदनुकूल उनसे कार्य होने लगता है इसलिए अष्ट द्रव्य जिनसे हम एक महत्वपूर्ण उद्देश्य को लक्ष्य करके कार्य लेते हैं निःसंदेह अपने ध्येय की पूर्ति में रामवाण औषधि है। और इनमें दोष देखने की बुद्धि हो तो सीधे रूप में यों ही कहो वातें महाराज सूखी नमस्कार है।

जिस प्रकार प्रातः स्मरणीय पं टोडरमलजी, जयचन्दजी, सदा सुखदासजो आदि विद्वानों ने जिनागम की रक्षा के लिए

संस्कृत प्राकृत ग्रंथों का देश भाषा में अनुवाद किया। ठीक इसी प्रकार कवि वर घानतरायजी, भूधरदासजी, दौलतरामजी, वृन्दावनदासजी, जिनेश्वरदासजी और मनरंगलालजी आदि विद्वानों ने हिन्दी भाषा की पूजायें रचकर जनसाधारण का महान उपकार किया। उनकी स्तुतियों में भक्ति भावना कूट-कूट कर भरी है। जो भव्य हृदय को जागृत कर शांति की ओर आकर्षित करती है। हमें उन स्तुतियों में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि हम न पढ़ना चाहें या उनमें कांट छांट कर अपनी मर्जी अनुसार बनाना चाहें उन कवियों के प्रति और जिनवाणी के प्रति घोर अन्याय है। वे कवि अपने सपूतों के किये ऐसे कार्यों को देखकर स्वर्ग से जी भरकर आशीर्वाद देंगे।

भ० महावीर की कृपा से ऐसे शब्द साधारण जनता के मुख से निकलते है तो ठीक है। उसमें कर्तावाद की गन्ध सूंघने वाले को समझना चाहिए कि चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शांति-सागरजी महाराज तक कार्य की सफलता होने पे ऐसे शब्द कहते थे। महान ज्ञानी गणधर देव ने कहा है केवली प्रणीत धर्म का मूल विनय है। धर्म और विनय रसिक बनना चाहिए न कि अभिमानी।

मूर्तियों के पंच कल्याणक करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा जो लोग कहते हैं वे यह चाहते हैं जयपुर से रामचन्द नाहटा की दुकान से मूर्तियां खरीदो और घरों तथा मन्दिरों में

रखलो। जैसा कि अन्य लोग करते हैं। फिर उनमें प्रज्य बुद्धि होकर वे दर्शनालय की वस्तु बन जायेगी। और घर-घर में ऐसी मूर्तियों के अम्बार लग जावेंगे। मंत्र और विधिपूर्वक होने वाले पंच कल्याणक जनता की श्रद्धा के केन्द्र हैं। लाखों स्त्री पुरुष उस अवसर पर दूर-दूर से आकर पंच कल्याणक उत्सव में सम्मिलित होकर अपना मानव जन्म सफल करते हैं। उत्सवों में इतना व्यय और आयोजन होता है। यह प्रशंसनीय बात है विवाह शादियों में होने वाले व्यय की आलोचना नहीं की जाती। उत्सव 'प्रियान्मानवा:' मनुष्य उत्सव प्रिय है पवित्र भावनाओं को जागृत करने के यह योग्यतम साधन है। हमें उन्हें और अधिक सुरुचिकर शिक्षाप्रद बनाना चाहिए न कि उनका विरोध करें। वैष्णव विधि और जैन विधियों में बड़ा अन्तर है। वैष्णव विधि में देवता की पूजा इस प्रकार होती। प्रातः काल से लेकर सोने तक सारी बातें पुजारी उसी प्रकार करता है जैसे कोई राजा की सेवा करता है अब भोग लगने का समय है अब शयन करने का समय इत्यादि जैनों की पूजा इससे सर्वथा भिन्न है।

धूप जलाना, दीपक प्रज्वलित करना, होम करना इसका वे ही लोग खण्डन करते हैं जो इसका महत्व नहीं समझते। अष्ट-द्रव्यों में धूप स्थान है। अष्टांगी धूप का वर्णन है। दीपक आरती का साधन है। होम की प्रशंसा में आचार्य पूज्यवाद ने शाँति भक्ति में इस प्रकार कहा है—

कुद्धा शोर्विषदष्ट्र दुर्जय विष ज्वालावली विन्द्रमो
विद्या भैषज मन्त्र तोय हवनैर्याति प्रशान्ति यथा।

क्रोधित हुए सर्प के काट लेने पे जो असह्य विष शरीर में फैल जाता है वह गरुडी मुद्रा दिखाने या उसके पाठ करके विष को नाश करने वाली औषधियों को देने से मन्त्र से जल से और होम (हवन) करने आदि से बहुत ही शीघ्र हो जाता है।

जिस प्रकार अन्य मतावलम्बी अग्नि को देव मानते हैं और उसके द्वारा दी गई आहुतियां देवताओं को पहुंचती है। ऐसा विश्वास हमारा नहीं है। हम अग्नि का अर्थ करते हैं जो अग्र-गण्य है वेद की पहली ऋचा यह है कि पूर्वाभि: ऋषिभि: ईज्य् उत नूतने अपि।

जो अग्नि पहले के ऋषियों द्वारा पूज्यनीय थी वर्तमान कालीन ऋषियों द्वारा भी पूज्य है। यहां अग्नि का अर्थ अग्रगण्य होने वाले अग्निदेव ऋषभ देव हैं। अन्य नहीं। अखण्ड दीप के सम्बन्ध में स्व. राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसादजी जब लंका गये तो उन्होंने वहां देखा २००० वर्षो से एक दीपक जल रहा है जो अशोक के पुत्र महेन्दे ने प्रज्वलित किया था। यदि पाठ आदि के अवसर पर दीपक प्रज्वलित किया जाता है तो क्या हानि है? घर गृहस्थी के कार्यो में इसे कभी मना नहीं करते। विवेक यत्ना-भिचार और सावधानी की सदैव आवश्यकता है।

समाज में तेरह पंथ बीस पंथ दोनों ही विचार धारा के मानने वाले हैं। अपनी-अपनी आम्नाय अनुसार पूजाविधि करें। हमें एक दूसरे का खण्डन करने की अपेक्षा उनमें सौहार्द और वात्सल्य बढ़ इसका प्रयत्न करना चाहिए। न कि उनकी दूरी बढ़े। तेरा पंथ क्रियायें यह कोई ऋषि प्रणीत परम्परा तो है नहीं। विद्वानों द्वारा किसी समय चालू की गई एक परिपाटी। जिसके कारण हम मुख्य विषयों की उपेक्षा कर बैठे है।

महासभा आगमपन्थी हैं ?

दि० जैन समाज में कोई तो तेरापंथी है और कोई वीस-पंथी। वीच में एक "साढ़े सोलह पंथ" भी चला था, पर अब उसकी चर्चा सुनाई नहीं देती। तेरा बीस को लेकर जैन पत्रों में पहले भी नोंक झोंक चलती रही है, अब भी कुछ लोग यदाकदा चुभते वाक्य लिख दिया करते हैं। इसमें कोई नई वात भी नहीं है। हमने तो जबसे होश संभाला है तब से प्रायः एक-दूसरे के माल को खोटा बताकर अपनी दुकान चलाते हुए ही लोगों को देखा है। तेरापंथ और वीसपंथ के प्रकरण में यह दृष्टव्य है कि हमले प्रायः बीसपंथ पर ही होते हैं। वीसपथियों को तेरापंथ मे से कोई खास गिला नहीं है। इधर कुछ सोनगढ़ी भी तेरापंथ की आड़ में अपनी रोटियाँ सेकने लगे हैं।

तेरापंथ और वीसपंथ ये काल्पनिक नाम हैं। हमारे पूर्वाचार्यों ने आगम ग्रंथों में कहीं इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया। पिछले ढ़ाई-तीन सौ वर्षों से ही ये शब्द चलन में आये हैं। जब लोग तेरा-बीस के नाम पर झगड़ने लगे तो पूज्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज ने एक बड़ा अच्छा समाधान दिया। उन्होंने कहा कि वीसपंथ श्रावकों के लिए और तेरापंथ मुनियों के लिए है। पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत और आठ मूलगुण ये वीस व्रत श्रावकों द्वारा पालनीय हैं तथा पंच महाव्रत पंच समिति और त्रिगुप्तिरूप त्रयोदश प्रकार के चारित्र

को पालने वाले मुनि कहलाते हैं। वीसपंथ "कामदं" और तेरह-पथ "मोक्षदं" है। आगम में इसके अलावा अन्य कोई तेरह या वीसपंथ नहीं है।

तेरह और वीस शब्द संख्यावाचक हैं अथवा "तेरा" का अर्थ जिनेन्द्र की ओर "वीस" का अर्थ विषम होता है, इन सब व्याख्याओं में उलझना हमें इष्ट नहीं है। हम तो केवल इतना जानते हैं कि तेरापंथ और वीसपंथ में कोई धर्मभेद नहीं है। दोनों ही पंथों के मानने वाले जिनेन्द्रदेव, वीतराग वाणी और निर्ग्रन्थ गुरु के अनन्य भक्त और धर्मात्मा हैं। उनकी पूजा-पाठ और अभिषेक की पद्धति में अन्तर हो सकता है किन्तु दोनों की सैद्धान्तिक मान्यतायें एक हैं। रत्नत्रय में सबकी अटूट आस्था है। सर्वज्ञभाषित तत्वों पर दोनों ही अटल विश्वास रखते हैं। वीतरागता की प्राप्ति ही दोनों का चरम लक्ष्य है। फिर समझ में नहीं आता कि तेरा और बीस के नाम पर समज में खींचतान बनाये रखने में कौन-सी तुक है!

तेरापंथ और बीसपंथ के नाम पर जो सवाल उछाले जाते हैं, उनमें मुख्य हैं:—

- ☐ स्त्रियां अभिषेक कर सकती हैं या नहीं ?
- ☐ अभिषेक जल से करना चाहिए या पंचामृत से ?
- ☐ पूजा में फल चढ़ाना उचित है या नहीं ?
- ☐ भगवान के चरणों में केसर-चंदन लगाने का विधान है या नहीं?
- ☐ उपासना खड़े होकर करें या बैठकर ?

आगम और परम्परा से इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में भी मिलता है और 'नहीं' में भी। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रवृत्तियां देखी जाती हैं। उत्तर भारत में कोई जल से और कोई पंचामृत से अभिषेक करता है। दक्षिण में सर्वत्र पंचामृताभिषेक का प्रचलन है। विश्व विख्यात भगवान गोम्मटेश्वर बाहुबलि का महामस्तकाभिषेक दूध, दही,घृत इक्षुरस और सर्वोपधि से होता है। प्रति बारह वर्ष बाद होने वाले इस आयोजन में तेरापंथी और बीसपंथी सभी (अनपढ़ से लेकर विद्वान तक) दूर-दूर से आकर शामिल होते हैं। स्त्रियों द्वारा अभिषेक किये जाने पर वहाँ कोई आपत्ति नहीं करता। कहना है कि जो दीक्षा का अधिकारी है तथा मुनियों को आहारदानादि दे सकता है, वह जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक भी कर सकता है। शास्त्रों में फल चढ़ाने तथा श्री जी के चरणों में केशर-चन्दन लगाने के प्रकरण मिलते हैं। अवस्था और शक्ति के अनुसार बैठकर या खड़े होकर पूजन करके विधिनिषेधों पर बहस करना व्यर्थ है, मुख्यता मन के उत्साह और भावों की होती है।

इन सब विषयों पर विद्वानों में पहले काफी चर्चा हो चुकी है। बहुत कुछ लिखा गया है। पुनः विस्तार में जाना बेकार की माथापच्ची होगी। उससे कोई लाभ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। पूजा पद्धति में अन्तर होने से ग्रहस्थ के समयक्त और व्रतों में कोई दोष नहीं लगता। हां! इतना ध्यान अवश्य रखना होगा कि हमारी सम्पूर्ण क्रियायें विवेक पूर्वक होनी चाहिये। विवेकरहित क्रियायें

जो चाहे तेरापन्थियों की हो, चाहे बीस पंथियों की, वे पापबन्ध का ही कारण है। विवेक से हमारा प्रयोजन है कि अभिषेक में प्रयुक्त जल, दूध, दही, घृत आदि शुद्ध अर्थात् मुनियों द्वारा ग्रहण करने योग्य हों। फल पके हुये हों, हरितकाय न हो, रजस्वला-अवस्था में स्त्रियां अभिषेक न करें आदि।

जहां जैसी मान्यता हो, वहां उस तरह लोगों को ये क्रियायें करने देना चाहिये। किसी प्रकार का आग्रह या जोर जबरदस्ती उचित नहीं है। उससे कषाय उत्पन्न होती है। आपस में तनाव बढ़ता है। सन् १९८१ की बात है, हम दक्षिण यात्रा पर थे। श्रवण बेलगोल में परम पूज्य ऐलाचार्य जी के पास बैठे थे तभी बड़ौदा की एक बहिन ने पूछा-'महाराजजी! क्या स्त्रियां प्रक्षाल कर सकती हैं? महाराज श्री का सधा हुआ उत्तर था-'इधर तो करती हैं, कर सकती हैं किन्तु उधर यदि रिवाज न हो तो मत करना।' उस बहन ने पुनः पूछा-'क्या शास्त्रों में स्त्री-प्रक्षाल का निषेध नहीं है? इस पर उन्होने विनोद पूर्वक कहा-'है भी और नहीं भी है। इसलिए कि स्त्रियों को यदि पूरी तरह पूजाभिषेक का अधिकार मिल गया तो पुरुष दर्शन करना भी छोड़ देगें। वहां बैठे सब लोग हंस पड़े। सभी साधुओं को इस विषय में इसी तरह अनाग्रही होना चाहिये। गृहस्थों की क्रियाओं में साधुओं द्वारा प्रेरणा करना ठीक नहीं है। किसी की जिज्ञासा का समाधान करना अलग बात है।

आज तीर्थों पर पूजा, पूजा-पाठ और अभिषेक की क्रियाओं में शुद्धि-अशुद्धि पर कौन ध्यान देता है। श्री महावीर जी में पुजारी

और दर्शनार्थी सब गड्ढ होकर चलते हैं। भारी भीड़ के कारण उनके मध्य एक अंगुल की दूरी भी तो नहीं रह पाती। सब एक-दूसरे को धकियाते हुए और अभिषेक पूजा करते हुये देखे जाते हैं। गोमटेश्वर पर अभिषेक के लिए जो दूध, दही, घी आदि ले जाये जाते है, क्या वे प्रासुक होते हैं? यथार्थ में तीर्थ क्षेत्रों पर भक्ति की प्रधानता होती है। वहां कि इन विषमताओं पर प्रायः विद्वानों का भी ध्यान नहीं जाता। वहां से भी उसी तरह पूजा-पाठ करने को विवश होते हैं। वे ही विद्वान जब हाथ धोकर बीसपंथ के पीछे पड़ जाते है तो आश्चर्य होता।

महासभा तेरापंथ और बीसपंथ को विवाद का विषय नहीं मानती। ऐसा करो और ऐसा मत करो, इस प्रकार का उसका कोई आग्रह नहीं है। इस सन्दभ में वह तटस्थ दृष्टि रखती है। तेरा और बीस वास्तव में कोई पंथ नहीं मात्र पद्धतियाँ हैं। महासभा में दोनों ही पद्धतियो के मानने वाले विद्वान हैं। हम स्वयं व्यक्तिरूप से तेरापंथ को पसन्द करते हैं। फिर भी बीस पथ से हमें कोई एलर्जी नहीं है। महासभा वस्तुतः आगमपन्थी है और उसका लक्ष्य धर्म की सुरक्षा है। धर्म कर्त्तव्य पालन का ही दूसरा नाम है। देव पूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षडावश्यक ही गृहस्थ के मुख्य कर्तव्य हैं। पूजा-अभिषेक कैसे करें, इस बारे में कोई निर्देश-आदेश न देकर महासभा इस बात पर जोर देती है कि ऐसा कोई काम न करें, जिससे पाप-बन्ध हो। पांच पापों अथवा चार कषायों से प्रत्येक प्राणी को बचना चाहिये। ये ही बन्ध के

कारण हैं। अष्टाह्निका-चतुर्दशी तथा अन्य पर्व तिथियों पर यथा शक्ति एकाशन-उपवासादि करना चाहिये। जो करना हो, उन्हें समुचित आदर दें। यही आगम-मार्ग है। कहा भी है :—

"जं सक्कइ तं कीरइ जं पुण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणों जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥

तेरापंथ-बीसपंथ के विवाद को उछालकर समाज के वातावरण को बोझिल बनाना हमारी दृष्टि में सर्वथा अवांछनीय है। आशा है, प्रबुद्धजन इस पर विचार करेंगे। सम्पादक, जैन गजट

जिनपूजा और हिंसा

("चलें, जिनालय जायें" पुस्तक से)

हिंसा के नाम पर कई लोग जिनपूजा का विरोध करते हैं। वे लोग बारंबार अपनी रेकर्ड बजाया करते हैं कि पूजा में जल के, पुष्प के कई प्रकार के जीवों की हिंसा होती है। धूप-दीप प्रगटाने में अग्निकाय जीवों की हत्या होती है। मंदिर के निर्माण में कितने जीव जंतु के नाश होता है। यह कैसा धर्म है ?- इसकी आराधना कैसे करे ? जहां हिंसा वहां धर्म कैसे रह सकता है ? वास्तव में यह सब बातें अज्ञान मूलक है। जिन दर्शन के रीत से न समझने वाला ही ऐसी बाते कर सकता है। तत्वजिज्ञासु सज्जनों ने एसी बाते सुनकर कभी प्रमादित नहीं होना चाहिये। किन्तु शास्त्रीय रहस्यो

के मर्म को प्राप्त करने का अथाग प्रयत्न करना चाहिये। और सही समझने के बाद उसे आचरण में रखने का बिल्कुल विलंब नहीं करना चाहिये

अब, जिनपूजा में हिंसा का पाप है कि नहीं वह समझने के लिये हम थोडी बातें सोचेगें।

जिनपूजा में हिंसा होने का कहने वालो से मेरा प्रश्न है कि पूजा के अलावा जितने धर्म के मार्ग है उन सभी में आपको कहां हिंसा के दर्शन होते या नहीं ?

हे भव्यात्मा ! जरा सोचें ? मंदिर, धर्मशाला, उपाश्रय, स्थानक के निर्माण में क्या कच्चा (अप्रासुक) जल इस्तेमाल होता है कि नहीं? इंट, माटी, लोहा में पृथ्वीकाय के जीव मरते है या नहीं? प्रवचनो के लिये लकडी की पाट बनवाने में, वनस्पति कार्य के जिवों की विराधना होती है की नहीं ? धर्म स्थानको की सफाई करने में जलकाय के जीवों की हत्या होती है या नहीं ? साधर्मिक वात्सल्य में पटकाये के जीवो का धात है या नहीं ? वहाँ मींडा आदि लीलोत्तरी शाकभाजी इस्तेमाल नहीं होती ! गाय को घास डालने में अनुकंपा धर्म है तो भी वहाँ वनस्पतिकाय जीवों की विराधना से कैसे बचेगें ! तुलातुर मानव को जलपान में क्या हिंसा नहीं है ? बिमार साधुओं को मोसंबी आदि का रस क्या देना नहीं ? प्रवचन में, विहार में, हाथ पैर हिलाने में वायुकाय जीवों की विराधना क्या असंभवित है ? मास क्षमण आदि तपस्या में पेट के कृमि का नाश

होना नहीं है ? एसा कौनसा धर्म है कि जहां कई ने कई प्रकारकी हिंसा न होती हो ! यदि एसे कार्यों में होने वाले हिंसा को पाप मानना पडेगा तो सर्व जनगण ने जगत में जाके श्वासोच्छ्वास भी बंध करके मात्र निश्चेतन बनकर बैठ रहना पडेगा क्योंकि सर्वत्र हिंसा का पाप लगने की सभावना है।

आपही कहे एसी क्या बात स्वीकृत हो सकेगी ? क्या इन सभी को सत्य मानकर चल सकोगें ? उपाश्रय, मंदिर निर्माण, प्रवचन व्यवस्था, अनुकंपा के कार्य, वैयावृत्ति, विहार, तपस्या आदि धर्मकार्यो में हिंसा है तो वे क्या बंध कर सकोगे ? यदि इन सभी में हिंसा का पाप लगना होता तो भगवान ने और अनेक आचार्यो ने विहार, मंदिर निर्माण, अनुकंपा–दयाके कार्यो और जिनपूजा जैसे कार्य करनेका उपदेश क्यों दिया ? तीर्थंकरो ने ये सभी उपदेश दिया है इसलिये यह मानना पडेगा कि ए सब कार्यो में अज्ञान, दृष्टिदोष और द्वेष वश हिंसा दीखती है किन्तु वास्तव में ये सभी क्रिया में हिंसामयी नहीं है। मात्र वहार की प्रवृत्ति से हिंसा या अहिंसा का निर्णय नहीं हो सकता। प्रवृत्ति के साथ वृत्ति भी कैसी है। वह भी देखना होगा।

जिनपूजादि कार्यो में जो हिंसा दिखती है उसे शास्त्रकार परमर्षिओ ने स्वरुपहिंसा कहा है। माने बाह्यरुप में भाग दीखती है किन्तु अभ्यंतर उनके परिणामो में हिंसा होती नहीं है। वहाँ ता अहिंसा के निर्मल झरने बहते है, जो आत्मा को सुकोमल और सरल बनाती है।

आचार्यो ने कहा है कि जिनपूजा में वस्तुतः हिंसा है ही नहीं क्योंकि उसमें प्रमादि स्वरुप मिथ्यात्व आदि कोई दोष है नहीं इसके फल में दुर्गति के कोई त्रास नहीं है। प्रवृत्ति द्वारा जो कर्म बंध होता है वह भी दुष्ट अनुबंध के बल बिना का होता है और वह भी क्षणभर में टूटकर खलास हो जाए ऐसा अति अल्परजःवी है। हेतु शुद्ध है इसलिए कर्म का अनुबंध हिंसक नहीं अहिंसक भी होता है। और जीसके बल पर अगणित पुण्य सामग्री का भोग प्राप्त करके जीवात्मा अनेक जीवों को अभय दान देता हुआ स्वेच्छा से शिव पद को प्राप्त करता है और तब तक ये शिथिल कर्म पूर्ण पर्ण नाश हो गया होता है।

पक्षी समुदाय को जाल बीछा के जुवार के दाने चुगने को देने वाला दयालु माणस और जाल में फसने से बचाने के लिये छोटे कंकरो से पक्षीओं को उडने के लिये संकेत करनेवाला युवक में को हिंसक है। जरा सोचिये। अपने बच्चे को मुंह में पकड़ने वाली बिल्ली उंदर को भी एसे ही पकड़ना है किन्तु भाव और वृत्ति पर हिंसा या अहिंसा का निर्णय होता है। एस कई दृष्टांत से देखने पर हिंसा किन्तु अंतर में अहिंसा के भाव नय हो जाते हैं इसलिये जिन पूजा में हिंसा देखना सही दृष्टि नहीं है।

सावय धम्म दोहा

(श्री योगीन्द्र देव कृत)

चंदन पूजा :—

जो जिन भगवान की चंदन से पूजा करता है उसका शरीर सुगन्धित होता है। जैसे कि दीप में डाले तेल से घर में उजेला किया जाता है ॥ १८४ ॥

पुष्प पूजा :—

जो पुष्प से जिनदेव को पूजता है उसका कभी भोग नहीं छुटता। सरोवर में नदी नहर मिला देने से पानी अगाध हो जाता है ॥ १८६ ॥

अभिषेक में दोष नहीं :—

जो अभिषेकादि के समारम्भों का सावद्य कहते हैं उन्होंने दर्शन का नाशकर दिया। इसमें कोई भ्रान्ति नहीं ॥ २०६ ॥

पुण्यराशी में पाप विन्दु :—

अभिषेकादि की पुण्य राशी में यदि किसी ने लघु पाप भी कर लिया तो विष के एक कण से समुद्र भर का जल दूषित नहीं हो सकता ॥ २०७ ॥

पंचामृताभिषेक :—

जो जिन भगवान को शक्कर और आम्र के उत्तम रसों से नहलाता है वह नर जन्मोदधि को तरता है इसमें भ्रांति मत करो।

जो कंचनवर्ण घृत से जिन भगवान के भाव धारण कर नहलाता है वह दुर्गति में जाना नहीं और जन्म भरमें पाप नहीं लगता ।। २०६–२०७ ।।

पूजन में द्रव्य

पूजा दो प्रकार की है : एक भाव पूजा और दुसरी द्रव्य पूजा तदाकार और अतदाकार एसे भी भेद शास्त्रो में है साथ में सचित्त और अचित्त पूजा ऐसे भी भेद है। कोई भी द्रव्य की सहायता विना मात्र स्मरण, मौखिक पाठ, चितन, ध्यान, जप, आत्मविचारणा, द्रव्य-तत्व के भेद का मनन आदि भावपूजा में आते है। गृहस्थ संयोगावेसात् कभी ऐसी पूजा से अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कर सकता है किन्तु सावन, समय और अनुकूलता होते हुए गृहस्थ के लिये भाव पूजा करना योग्य नहीं है। किन्तु क्षुल्लक ऐलक, क्षल्लिका, आर्यिका, मुनि और उपाध्याय-आचार्य के लिये भावपूजा ही सच्चा अवलंबन है। आज-संप्रति काल में द्रव्यपूजा में अष्ट द्रव्य इस्तेमाल किये जाते है। गृहस्थ कभी कभी अपने प्रमादवश काम से भी काम निकाल लेता है किन्तु वह सही मार्ग नहीं है। आज जो अष्ट द्रव्य है वे शुरु शुरु में कम होंगे। क्योंकि वरांग चरित्र नामक सबसे प्रथम प्राचीन पुराण में द्रव्यों में मात्र चार के नाम दिये है। शनै: शनै: उसमें वढोतरी होती गई होगी और आज है आठ इसमें जल, अक्षत सर्व सामान्य है। चंदन भी एसा है। किन्तु

कोई वीसपंथी चंदन भगवान के चरण पर चढ़ाते है तब तेरापंथी थाली में या कटोरी में डालते है। पुष्प और नैवेद्य का भारी झगडा है। धुप-दीप में एसा नहीं है किन्तु वहां भी मत-भेद है। फल में प्रासुक-अप्रासुक हरा-सुखा विसमय जगडा है। तेरापंथ का जो आग्रह है उसका समर्थन कहां नहीं है। वह जयपुर-सहारनपुर आदि शहरों में कई अति वाने पंडितो द्वारा प्रचलित हुआ लगता है। कोई शास्त्र, प्रतीष्ठापाठ, पूजन, पाठ में पीले चावल और नीबु, केला, दाडम आदि नहीं चढाना ऐसा व्यक्तव्य नजरे में आया नहीं है। आज जीतने पूजा पाठ है उन सभी को आप देखले तो कहीं भी तेरापंथ के आग्रह वाले द्रव्य का नाम नहीं मिलेगा। वहां सभी पूजाओं में अनेक प्रकार के पुष्प : गुलाब, चमेली, मोगरा, परिजात आदि के नाम दिये है कई पूजापाठ तो महाव्रती आचार्यो के लिखे हुए है। अनेक प्रकार के नैवेद्य-व्यंजन : मोदक, गेवर, फेणी, गेवर पकवान, खुरमा, तदाडो, बरफी, पेडा, खाजा, पूवा, पापर आदि के नाम दिये हैं। फलों में श्रीफल, लवंग, बादाम, पिस्ता, दाख, छुहारा, खजूर, दाडिम, आम, पुंगीफल, जायफल, इलायची सेब, संतरा, केलं, चिरोंजी, नारगी, निबु, कमरख आदि के नाम दिये है। कई पूजापाठ तो तेरापंथ कों मानने वाले कवि राजो ने बनाये है तो भी ऐसे ही द्रव्यो के नाम लिये है। दीप में घृत का उपयोग करने का सभी पाठो में फरमान है कही भी पीली चटक से काम लेना नहीं लिखा है। तो भी कई भाईओ का आग्रह है। कि एसे ऐसे द्रव्य चढाना नहीं चाहिये। तो वहीं सास्त्राज्ञा-आचार्य का

आदर और जिनवाणी का विनय करता रहा। सोचिये! विचारीये! हठाग्रह मत रखीये इतनी प्रार्थना है।

तेरापंथ के समर्थक ग्रंथों की समीक्षा

(१) शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश :

संकलन कर्ता : पू. १०८ श्री विवेकसागर महाराज

प्रकाशक : दिगम्बर जैन समाज : मेरठ

अ = पूजा द्रव्य का वर्णन (पृ. १५९)

यद्यपि शास्त्रकारों ने सचित्र द्रव्यों से पूजन करने का निषेध नहीं किया है। परंतु आचार्य श्री संमतभद्रस्वामी का निम्न सिद्धांत को महत्व देते है

पूज्य जिनं.................................... वहुपुण्दरा शौ
दोसाय नाल कणिका............ श्तनमिवाम्बुराशौ।५।

हे प्रभो! आपकी जल, चंदन, अक्षत आदि अष्ट द्रव्यों से पूजन करने वाले को यदपि प्रारंभ संवंधी दोष का लेश होता हैं, किन्तु आपकी भक्ति और पूजन के माहत्म्य से विशेष सातिशय पुण्य राशि का वंध होने का कारण वह दोष नगण्य है अर्थात् गिना नहीं जाता है............... इसलिये भव्य प्राणीओं को सचित्र पूजन की अपेक्षा अचित्र प्रासुक द्रव्य से पूजन करना विशेष लाभ कारक है।

Note :– कारिका का उद्धेश जो था उसका कैसा उपयोग किया

है वह आप देखें। इसमें सचित्र द्रव्यों का निसेधता है नहीं—समर्थन है तोभी सार मनस्वी निकाल लिया है।

ब = केशर का चर्चना (पृ. १९० और आगे)

(१) मूर्ति-प्रतिबिंब और सजीव मुनि की तुलना करना ठीक नहीं है

(२) पूजासार : भट्टारक अजितसेन कृत में लिखा है कि चन्दन, और केशर को भगवान चरण कमल के आगे मत चढावो इसमें आगे का भी निषेध है और वह भी भट्टारक द्वारा, तों फिर भट्टारको को क्यों दोष लगाते हो ? चंदन आदि फिर कहां रखें ? उपर नहीं।

(३) १००८ नामों में "निर्लेप" एक नाम है उसका अर्थ केसर का लेपन करना आगम विरुद्ध है एसा करना क्या ठीक है ?

(२) **विद्वज्जन बोधक :**

प्रथमखंड : संग्रहकर्ता = श्रावक (नाम क्यों नहीं ?)

(अ) आर्सग्रंथो को नामावली (पृ. २०५)

तत्वार्थसूत्र, मूलाचार, उत्तरपुराण, आदिपुराण, ज्ञानार्णव पंचविंशतिका, भगवती आराधना, चारित्र सार, त्रिलोकसार

नोंध :- अभी कितनेक तेरापंथ आचार्य मुनि इन सबको मान्यता नहीं देते है और उनको जाली घोषित करते है वह क्या योग्य है? इन शास्त्रों को काष्टासंगी कहना यथार्थ है ?

(ब) अभिसेक निर्णय (२९०) + (३१५ से ३६४)

मूलसंघमें दिगंबरनिके किये ग्रंथ निये तो पंचामृतका नाम हू सरां सून्य" (पृ. २९२)

एसी वात लिखी हुइ है क्या वह सत्य है ? पुरा ग्रंथ :— संशय तिमिर प्रदीप में इस कथन के विरुद्ध में कई दृष्टांत दिये है। वाचक स्वयं निर्णय करे गंध जलसे अभिषेक जन्माभिषेक का समय का है एसी दलील क्या सही है ? शांति के निमित्त पूजन के अन्त में भी महाअभिषेक करना योग्य है— (पृ. ३०६)

(क) अष्ट द्रव्य निर्णय :—

चर्चयेत-संचर्चयामी-चर्चयं-ए क्रियापद चरणारविंदको लेपन का वाचक है (पृ. ३१६) विलेपन करन मये एसा अर्थ करोगे तो सर्वांग लेपन करना पडेगा" तर्क किया है ??

प्रतिक्रमण—सीद्धभक्ती आदि में

"पिच्चकालं अंचेमि, वंदामि, पूजेमि, वंदामि, पभंसामि" शब्द गौर से देखें। इसमें अंचेमि और पूजेमि" एसे दो शब्द इस्तेमाल कार्य है। माने अर्चना और पूजा में जरुर अंतर है ही। यह बहुत प्राचीन रचना है। सभी भक्तियों में यही वात मिलती है।

पृ. ३५५ पर लिखा है कि हरितपुष्प तथा प्रासुकपुष्प .... जैसे अपने योग्य मिल तैसे ही उत्तम पुष्प भगवन के अग्रभाग मे चढाना-योग्य है—

पृ. ३५७ पर लिखा है–" जिनके जो द्रव्य मैं पवित्र खाद्य उत्तम बुद्धि सो सर्व रोटी चावल आदि नाना व्यंजन प्रभृति चार ही प्रकार भोज्य चढावो योग्य है– और उत्तम घृत जनित ज्वलित दीपक चढाने योग्य है— कपूर भलेच्छ ही वनावे है तातैं पूजन में ग्रहण करने योग्य नही है– और अग्निकुंडरुप धूपायन में अग्निधूप

करने योग्य है। और सचित्र अचित्र भेदयुक्त सर्व ही मनोहर उत्तम फल चढाने योग्य है- सचित्र पूजन की भी आज्ञा है"— ये सब वचन आधुनिक तेरापंथी श्रावक को कहाँ मान्य है ? तो किसको सही मानना वह पक्ष हो जायगा।—

(३। आर्ष मार्ग ज्ञान दीपक— ईडर दिगम्बर जैन समाज
आर्ष मार्ग मार्तण्ड — ईडर जैन महिला मंडल

संपादक :- श्री १०८ आचार्य सुमतिसागरजी महाराज दोनो पुस्तकों में ६०२ का व्यक्तव्य एक ही है। मात्र पुनः मूद्रण किया है – पुस्तक में सिद्ध किया गया है कि पंचामृत अभिषेक काष्ठासंघी आचार्यों द्वारा चलाया गया है, यह शास्त्र विहित नहीं है आरती भी आर्समार्ग नहीं है किन्तु कोई समर्थ आचार्य का मन नहीं दिया ओर जिन आचार्यो ने पंचामृतादि के लिये लिखा है। वे सभी को काष्टासंघी कह दिया है। वाचक सोचे स्वयं कि यह विधान क्या सही है ? यहां पुराण जैसे शास्त्रों को जैनाचार्य द्वारा निर्मापित्त कहना क्या ठीक है !

एक संघी भट्टारक संहिता में केशर चढाने का निषेध है– तो फिर सब दोस मान भट्टारको क्यों दिया जाता है ? पं. आशाधरजी को भी काष्टासंघी कहा है ?

आरती करना जैन सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है (पृ. ८४) किन्तु दिल्ली के लाल मंदिर आदि कई मंदिरों में आरती होती है इसका क्या ? अपने घर में हजार लाइट करने से कोई पाप नहीं

है ? पाप मंदिर में घी का दिया जलाने से ही पाप होता है ? क्या नूक है।

ये दोनों पुस्तके आचार्य सूर्यसागरजी महाराज के प्रकाशनों की मात्र नकल हैं। क्या कुछ नहीं है।

(४) तेरापंथ दोपिका— पं. दीपचन्दजी वर्णी–

(*i*) वीसपंथी दिग्पालादि देवों को भी पूजते हैं एसा अेकपक्षीय कथन कीया है !

(*ii*) पूजनादि संवंधी कोई चर्चा नहीं है।

(५) **पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तत्व**

लेखक :– हुकमचन्द भाटिल्ल शास्त्री *M.A.*

प्रथम अध्याय : पूर्व धार्मिक व सामाजिक विचार धारायें (पृ. ३-३१) से :–

(१) मूलसंधा उसके नये चैत्यवासी है, जिन्हें देवसेन ने तनिहीं परंतु उनके वाद वहुत पीछे के तेरह पंथ के प्रवर्तको ने जैनाभास वतलाया– (जैन साहित्य इतिहास पृ-४८६)

(२) १५ वीं, १६ वीं, शदी में ३ सो जैन संप्रदाय में भी एक मूर्तिपूजा विरोधी क्रांति ने जन्म लिया। लोका शाह द्वारा मूर्ति विरोधी उपदेश प्रारंभ हुआ, चर संप्रदाय ढूंढिया नाम से भी पुकारा जाता है। इस संप्रदाय में से १८ वी शदी के प्रारंभ में आचार्य भिक्षु द्वारा तेरहपंथ की स्थापना हुई। वर्तमान में इस संप्रदाय के नवे आचार्य तुलसीगणी हैं।

(३) दिगम्बर संप्रदाय में भी सोलहवी शदी में तारणस्वामी ने एक ऐसे ही पंथ की स्थापना की जो तारणपंथ कहलाता है। उन-के ग्रंथों में मूर्तिपूजा के विरोध और समर्थन में कहा भी कुछ भी नहीं लिखा गया है पता नहीं उक्त संप्रदाय में मूर्तिपूजा विरोध कबसे और कहां से आया ? यह एक शोध का विषय है।

(४) विक्रम का १६ वी शदी में पं बनारसी दास ने जिस शुध्धा-म्नाय का प्रचार किया और जिसे वि. की उन्नीसवी शदी में पं टोडरमल ने प्रौढता प्रदान की वह इन भडार को के विरोध में ही था। (पृष्ठ १५)
धार्मिक शिथिलता और बाहरी आडंबर के विरुधकि यह सफल क्रांति अध्यात्म पंथ या तेरह पंथ (तेरापंथ) के नाम से जानी जाती है। इसने मठपति भट्टारकों की प्रतिष्ठा का अन्त कर दिया और उन्हें जडसे उखाड फेंका।

(५) तेरहपंथ की उत्पत्ति के बारे में पं. टोडरमल के समकालीन पं: बखतराम शाह वि. सं. 1921 में लिखते है यह पंथ सबसे पहले वि. सं १८८३ में आगरा में चला। ब. रायमल, लिखते है कि तेरापंथ तो अनादि निधन है।

आगरा के बाद इसका प्रचार कामां में हुआ। तेरापंथ के नामकरण के संबंध में भी विभिन्न अभिप्राय मिलते है। अमरचंद गोदिका का पुत्र ने तेरह बातों का उत्थापन करके तेरह पंथ चला-या। वह था नरेन्द्रकीर्ति का समय १६२४ के लगभग का था।

स्पष्ट है कि जयपुर निर्माण के पूर्व जयपुर के समीप सांगानर में तेरापंथ का प्रचार पं. टोडरमल के पुर्व अमरचंद या उनके पुत्र जोघराम द्वारा हो चूका था। पं. पन्नालाल अपने तेरहपंथ खण्डन नामक ग्रंथ में लिखते है। कि तेरह बाते हटाकर वही रीति चलाने के कारण इसका नाम तेरापंथ पडा। विकृतियों के विरुद्ध जो आंदोलन हुआ वह सत्रहवी साल में आरभ हुया बीस पंथ को विसम पंथ के नाम से भी पुकारा जाता था। —भारिल्ल

(६) टोडरमल के वाद उनके द्वितीय पुत्र पं. गुमानी राम ने कठोर कदम उठाये। और नई आचार संहिता बनाई। यह पंथ का मंदिर जयपुर में तप उन्होने १० वाते वताई (पृष्ट ३१) वह "गुमानपंथ" कर चलाता था।

नोंध = उपर के उदाहरणों से यह तय होता है कि तेरापंथ मूल-आदि का चीज नहीं है। परिस्थितिवश अतिरेकता के विरुध्ध उत्पन्न हुई प्रथा है। मूल तो मूलसंघ ही था। सभी कार्यों में अतिशय सर्वत्र प्रजयेत्-सिद्धांत अपनाने से ही समता और एकता आ सकती है। उसका प्रयत्न करना चाहिये। —प्रकाशक

मात अल्पांश

पूज्य धर्म दिवाकर आचार्य विमलसागर जी के शिष्य श्री १०८ क्षुल्लक श्री रत्नसागर जी ने खुब स्वाध्याय-मनन करके एक छोटीसी पुस्तक तैयार की है। उसका नाम है "जैन लकोध्धारक

तत्व दीपिका'' उसमें उन्होंने पंचामृताभिषेक, पूर्वउत्तराभिमूख पूजन अष्ट द्रव्यों का पूजनादि विषयों को लेकर अनेक शास्त्रों के अनेक प्रमाण आगमग्रंथ का नाम-पन्ना श्लोक और उसका अर्थ और कभी कभी विशेसार्थ भी लिखा है। पुण्य पुस्तक यहां प्रस्तुत करना संभव नहीं है इसलिए मात्र पूजन वारे में मात्र गाथाओं का अर्थ दिया जाता है जिज्ञासु मूल पांडलिपि देखकर अपनी जिज्ञासा संतोसित कर सकते हैं।

(१) सर्व प्रथम योगेन्द्रदेवजी का श्रावका चार का कथन है कि : जो पुरुष जिनेन्द्र का अभिषेक घृत दुग्ध दहि से कर करे है उसकु देव स्नान करावें है। क्योंकि जो जैसा करेसी वैसा ही पावेसी ये जगत प्रसिद्ध वात है। जो जलधार श्री जिनेन्द्र के चरणो में डारी थकी कर्म रजकूं शीघ्र ही नाश करे है। जोपुरुष चन्दन करि जिनेन्द्र के चरणों को चर्चे उसका देह देवों मे प्यारा होय।

(२) शुभचंद्रस्वामी ने प्रतिष्ठा कल्प में लिखा है कि :— सूवर्ण रत्नों करीके जड्या हुआ एसा पीठ पर जिनेन्द्र देव जो है जिन्हें मस्तिक से पंचामृत करिके स्नान कराय शास्त्र रीति सें अष्ट प्रकार द्रव्य करि के पूजन करे।

(३) यशोधर चंपू में कहा है कि : राजा यशोधर है। जो अष्ट प्रकार पूजन करि तैसे ही पंचामृत अभिषेक करि तीर्थंकर नामकर्म बंधन करता हुआ।

(४) यह नंदी पंच विशति में भी लिखा है कि : जैसे श्री जिनेन्द्र के वचन संसार के ताप को मिटाने वाले है तैसा में शीथल नहीं हूं

याती मैंने भक्ति करि ये कपूर चन्दन स्यापन किया सो आपके चरणो आन्दय करना है।

(५) फिर भाव संग्रह में गाथा २० कहती है कि जो भव्य जीव श्री जिनेन्द्र के चरणों पर सुगंध का लेप करे है सो भव्य सुभाव से सुगंधित निर्मल वैं कचंन शरीर पावे है।

(६) नंदीश्वर उद्यापन में कथन है कि : जो पुरुष जिनेन्द्र के चरण कमल युगल को चन्दन सहित कपूर कसेर वरास करि लेपन करे हैं वे पृथ्वी के विसों सुगंवित शरीर सहित वसे हैं।

(७) अभयनंदी स्वामी कृत श्रेयोविधान ग्रंथ में भी लिखा है कि मैं केसर अगर चन्दन कपूर व गैहत करि लेपन करता हुं श्री जिनैन्द्र की प्रतिमा का जिनका सुगंध मय शरीर है वह सबका ताप हरता है।

(८) वसुनंदी श्रावक-चार में कथन है कि : कपुर इलायची द्रव्यकरि से मिला चन्दन श्री जिनेन्द्र के चरण में चढ़ता हुं चन्दन जो अपनी सुगंध से दिशाओंका मुझे सौरम युक्त बनाता है।

(९) भगवान निरावरण है। उसका अर्थ समजना चाहिये। आक्रियते अनेन इति आवरणं। सरज रजा भाविक अनंत ज्ञान दर्शन शक्ति ढक जाय जिस करि सो आवरण कहिये। ये दो कर्म है वहां आवरण है दूसरा आवरण कोई नहीं है। केसर से वे ढक नहीं सकते।

भ्रामक पंथ भेद

—श्री प्यारे लाल बड़जात्या, अजमेर

दि० जैन समाज के सामाजिक पत्र अधिकतर किसी न किसी मनोनीत संस्था से संबन्धित रहते हैं, यदि सभी पत्रों का ध्येय या उद्देश्य धर्म प्रचार, समाज को सुसंगठित, आपस में प्रेम व्यवहार, समाज उत्थान, कुरीतियों को हटाना आदि होता है तो समाज भी फलती फूलती है जिसे समन्वय नीति कहते हैं पर यदि किसी न किसी प्रकार की कूट नीति के उद्देश्य से नीति भेद अपनाई जाती है तो उसका उल्टा परिणाम होता है और समाज भी टुकड़ों में बंट कर उसमें कलह विसंवाद, फूट आदि उत्पन्न हो जाते हैं।

मैं पाठकों का ध्यान श्री भारतवर्षीय दि० जैन संघ के मुख पत्र जैन संदेश दि० ७ फरवरी ८५ के सम्पादकीय लेख दि० जैन धर्म में पंथ भेद शीर्षक की ओर दिलाना चाहता हूं—यह तो सबको विदित है कि समाज में जो भी तेरापंथ व बीसपंथ प्रचलित भेद हे वह भी केवल मुख्यतया पूजा पद्धति का ही भेद है पर देव,शास्त्र गुरु एक हैं, दोनों की आचार्य परम्परा में कोई भेद नहीं है, दोनों के आपस में धार्मिक और लौकिक रीति रिवाजों में समानता है। इसी विषय में सम्बन्धित श्रीं भारतवर्षीय दि० जैन महासभा दि० जैन महासभा के मुख पत्र जैन गजट अंक १५ ता० ५ फरवरी ८५ में सह सम्पादक प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन द्वारा प्रकाशित

"महासभा आगम पंथी है" शीर्षक की ओर आकर्षित करता हूं, विद्वान लेखक ने कई बातों पर अच्छा प्रकाश डाला है और समन्वय नीति का ही आश्रय लिया है जैसा महासभा का उद्देश्य है, क्योंकि आगम में तो पंथ भेद नहीं है।

इस पर मैं अधिक तो कुछ नहीं कहना चाहता पर जब से हमारे यहां के परम्परागत आचार्यों द्वारा रचित सिद्धान्त ही आगम ग्रन्थ छपवाने के कारण सुलभता से प्राप्त स्वाध्याय प्रेमियों के पढ़ने में आने लगे हैं तब से तो जो कुछ आपस में मन मुटाव भी था वह भी जाता रहा।

इसी प्रकरण में पाठकों का ध्यान भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित व विद्वद्वर्य पं० कैलाश चन्द जी सिद्धान्ताचार्य द्वारा अनुवाद सम्पादित 'सागार धर्मामृत' की ओर विशेष ध्यान दिलाता हूं और निवेदन भी करता हूं कि इस ग्रन्थ का एक बार स्वाध्याय अवश्य करें और श्रावकाचार संबन्धी पूजा पद्धति व क्रियाओं की जो मिथ्या धारणायें बनी हुई हैं वे निकल सकती हैं। स्वयं श्री पण्डित जी ने भी कई विषयों पर ऊहापोह करके अपने विचार भी प्रकट किये हैं और कहीं कहीं मत भेदों पर भी स्पष्टीकरण किया है। इस ग्रन्थ के कर्ता पं० आशाधरजी के संबन्ध में मान्यवर पं० श्री कैलाश चन्द जी ने अपनी प्रस्तावना पृ० ६ पर लिखा है-आशाधर जी ने अपने कथन के समर्थन में पूर्वाचार्यों और ग्रन्थ-कारों के ग्रन्थों में सैंकड़ों पद्य उद्धृत किये हैं, उनके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सागार धर्मामृत अपने से पूर्व में रचे

गये न केवल श्रावकाचारों का, किन्तु अन्य भी उपयोगी धार्मिक और लौकिक ग्रन्थों का निचोड़ भूत है—सागार धर्मामृत से रचे गये श्रावकाचार सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ रत्नकरण्ड श्रावकाचार, महापुराण के अन्तर्गत कुछ भाग, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, यशस्तिलक के अन्तर्गत उपासकाध्ययन, अमितगति श्रावकाचार, चरित्रसार, वसुनन्दि श्रावकाचार, पद्मनंदि पंचविंशतिका आदि......। इसी पुस्तक के पृ० ७५ में पूजा के फल का वर्णन करते हुये विशेषार्थ में देवसेन आचार्य के भावसंग्रह में पूजा का फल—जो भव्य जीव जिनवर के चरणों में सुगन्धित चन्दन का लेप करता है वह स्वभाव से सुगन्धित वैक्रियिक शरीर प्राप्त करता है, सुगन्धित पुष्पों से जिनदेव के चरणों को पूजता है वह उत्तम देव होकर स्वर्ग के वनों में आनन्द करता है [पूरा प्रकरण पढ़ने योग्य है]। पण्डितजी के कतिपय उद्धरणों से ऐसा मालूम पड़ता है कि आगम प्रमाण न देकर पन्थ व्यामोह में पड़ कर कुछ अपने विचार प्रगट किये हैं उदाहरणार्थ—आप लिखते हैं कि 'तेरे का अर्थ वीतराग का' है, मैं पूछता हूं कि क्या आपकी दृष्टि में जिसे आप बीसपंथी कहते हैं वे सरागी हैं? और जहां तेरे का अर्थ वीतरागी हैं क्या वे वीतरागी हैं। दोनों का समन्वय तो आगम पन्थ की अपेक्षा जो तेरह प्रकार का चारित्र पालन करे सो वीतरागी और ८ मूलगुण व १२ व्रतों को धारण करे सो सरागी और दोनों ही इस प्रकार वीतराग पंथ के अनुयायी हैं।

आप लिखते हैं कि जब तीर्थङ्कर का जन्म होता है तो इन्द्र

उनका अभिषेक एक मात्र क्षीरोदधि के जल से करते हैं यह कहना तो ठीक है पर साथ में इन्द्राणी इनके शरीर को पोंछती है शृंगार भी करती है यह तो सब तीर्थंकर की सराग अवस्था की क्रियायें हैं, परन्तु यहां तो चैत्य की पूजा का प्रकरण है जिसमें नव देवता भी गर्भित होते हैं जो सामान्य से श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य है। इस सम्बन्ध में इसी धर्मामृत अध्याय ६ श्लोक २२ पृ० २६५ पर जिन भगवान के अभिषेक आदि से उपासना की विधि में बतलाया है–'अभिषेक की प्रतिज्ञा करके अभिषेक की भूमि शोधन करें, ऊपर सिंहासन स्थापित करें, फिर उनके चारों कोनों में जल से भरे कलश स्थापना करें तथा चन्दन से श्री और ह्रीं ऊपर जिनेन्द्र भगवान को स्थापित करें, फिर इष्ट दिशा में खड़े होकर आरती करें फिर जल, रस, घी, दूध और दही से अभिषेक करके नन्द्यावर्त आदि का अवतर करके पहले सुगन्धित जल से अन्त में चारों कोनों में स्थापित कलशों के जल से अभिषेक करें। ऐसे अभिषेक सम्बन्धी प्रकरण पुराणों में, कथा भागों में, श्रावका चारों में कई स्थानों पर पाये जाते हैं।

और भी कई ऐसे विषय हैं जिस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है-जहां दोनों आम्नाय के मन्दिर हैं वहां तो यह प्रश्न ही नहीं उठता इन आम्नाय सम्बन्धों में मेरा यही सुझाव है कि समाज व्यर्थ के इन चक्करों में नहीं पड़ कर जिस प्रकार की पूजा पद्धतियें सनातन रूप से चली आ रही हैं उसी में योगदान दें नहीं तो कालान्तर में समाज को रसातल में पहुंचा देगी। ये ऐसी जय-

देखने आई है—सुजानगढ़ समाज का उदाहरण अवश्य रखता हूं जहां १०५—२०० घर हैं अधिकतर श्रेष्ठी वर्ग है एक मन्दिर और एक नसियां है उनमें कई वेदियां निर्मित हैं जहां स्त्रियां भी अभिषेक करती हैं। तेरापन्थी व बीसपन्थी भी अपनी अपनी मान्यतानुसार भक्ति पूर्वक पूजन करते हैं पर कभी भी आपस में मन मुटाव होते नहीं सुना। वैसे और भी ऐसे स्थान हैं। यह तो व्यवहार साधन मार्ग हैं कषायों में मन्दता बनाते हुये शुभ धार्मिक अनुष्ठान करें वही श्रावक के लिये परम्परागत मुक्ति का मार्ग हो सकता है, परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी के शब्दों में पन्थवाद जीर्णज्वर के समान हैं। अतिरेक किसी का और दुराग्रह किसी प्रति नहीं होना चाहिये।

अभिषेक पाठ-संग्रह

वीर सवंत २४६२ में शास्त्री पन्नालाल सोनी के संपादकत्व में पं. इन्द्रलाल जी शास्त्री ने उपरोक्त ग्रंथ श्री वनूजीलाल ठोलिया दि. जैन-ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित किया था। इस संग्रह में १५ अभिषेक पाठ दिये है। सभी पाठ अपूर्व है। संस्कृत के कुल पाठ पांचवों शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक के है। अन्त का एक पाठ सोलहवीं सदी के बाद का है। इस संग्रह से उन शंकाओ का निर्णय हो जाता है जो पक्षपात वश किंवदन्ती के रुप में चल पडी है कि पंचामृताभिषेक काष्ठासंघ का है, पीछे से भट्टारकों ने

मूलसंघ में उसे स्थान दिया है और इससे वीतरागता नष्ट हो जाती है आदि। काष्ठासंघ का एक भी पाठ इसमें संग्रह नहीं किया गया है तथा भगवत् पूज्यपाद रचित महाभिषेक काष्ठासंघ की उत्पत्ति के करीब तीन शतावदी पहले का है। भडारकों के अलावा आचार्यों द्वारा रचित भी अनेक पाठ इस संग्रह में है। तथा आचार्यो द्वारा प्रणीत होने से वीतरागता नष्ट होने का पक्ष ही हक हो जाता है।

इस ग्रंथ में (१) देवसेन कृत प्राकृत भाव सग्रह (२) जिनसेणाचार्य कृत महापुराण (३) जिनसेनाचर्य कृत हरिवंपुराण (४) वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्त्ति कृत उपासकाध्यन (५) मल्लिसेण कृत नाग कुमार कथा (६) एकसंन्धि कृत जिन संहिता (७) कामदेव कृत संस्कृत भाव संग्रह (८) वर्धमान भट्टारक कृत वरांग चरित्र (९) सकलकीर्ति कृत श्रीपाल चरित्र (१०) पं. सकल भूषण कृत उपदेशरत्न माला (११) सिंहनंदि कृत णमोकार कल्प(१२) पं. दौलतराम जी (जयपुर के तेरापंथी विद्वान) कृत पद्म पुराण भाषा और (१३) बाबा दुलीचंदजी कृत वसुनंदी श्रावका भाषा-आदि ग्रंथो में से पंचामृताभिषेक विषयक गाथायें—श्लोक दिये। वांचक स्वयं देख सकते हैं।

इस संग्रह में [१] पूज्यपाद स्वामी का महाभिषेक [२] गुणभद्रभदन्त का बृहत्स्नपन [३] सोमदेव सूरिका जिनाभिषेक [४] अभयनदि—सूरिका लघुस्नपन-सटाक [५] गुजाकुंशकवि का जैनाभिषेक-सटाक [६] पंडित शाधरकृत निरय महोद्योत [९] अभिषेक

क्रम [८] पं. अटयचार्य का जन्माभिषेक विधि [९] पं. नेमिचन्द्र का नित्यमह [१०] इन्द्रनंदी योगीन्द्र का जिन स्नपन [११] आ. सकलकीर्ति का रत्नत्रयाद्यभिसेक [१२] भट्टारक शुभचंद्र का सिद्ध चक्राभिसेक [१३] कलिकुंड यंत्रा भिसेक [१४] आशाधर लिखित जिन-श्रुत-गुरु-सिद्ध-रत्नत्रय स्नपनविधि [१५] इन्द्र वाम देव का वृहत्स्नपन पंजिका और [१६] भाषा पंचामृतभिषेक पुरे पुरे दिये गये हैं ये सब देखने से आपकी पंचामृताभिषेक शास्त्रोक्त आप्त प्रणीत-आगम कथित हैं ऐसी दृढ श्रद्धा हो जायगी और संशय-शंका आदि निर्मूल हो जायेंगे।

इस ग्रंथ के आधार से श्री अभिक्ष्ण ज्ञानोपयोगी उपाध्याय श्री अजितसागर मुनि महाराज ने देव-गुरु, शास्त्र यंत्र, सिध्य आदि के अभिषेक करने के लिये कई पद एकत्रीत कीये हैं वे सब पाठक की जिज्ञासा पूर्ति के लिये नीचे दिये जाते हैं। उन सब में पंचामृताभिसेक का ही विधान है। इसलिये ये सभी शास्त्रों का दृढ स्वाध्याय करना ही सभी दृष्टि है और आगम का सही आदर हैं

(अ) जिन स्नपनम्

(१) मर्तैरिव जिनेन्द्रस्य, वारिभिस्तायहारिभिः ।
निर्मलं स्नापयामीशं विशुद्धं मद् विशुद्धये ॥

(२) नारिकेरजलैः स्वच्छैः शतैः पूतै मनोहरै ।
स्नान क्रियां कृतार्थस्य, विद्धे विश्वदर्शिनः ॥

(३) सपक्वैः कनकच्छायैः सामोदैः मंदिकारिभिः ।
सटकाररसैः स्नानं कुर्मः शर्मैकि सद्मनः ॥

(४) प्राणिनां प्रीणनं कर्त्तु दक्षैरि क्षुरसैर्मुदा ।
सौवर्णकलशैः पूर्णैः स्नापयेह निरञ्जनम् ॥

(५) द्राक्षारवजूर चोचेक्षु प्राचीनामल कोभ्दवैः ।
राजादनाम्र पूगोत्थैः स्नापयामि जिनंरसैः ॥

(६) कनत्कनक सज्जात नालिका रूचिरत्विसा ।
पाज्येनाज्येन निर्वाण राज्यार्थ स्नापयाम्यहम् ॥

(७) स्थूलकल्लोल दुग्धाब्धे वेंलाफेनानुकारिणा ।
क्षीरपूरेण मारारेः प्रारंभे स्नपन क्रियाम् ॥

(८) लोकत्रयपतेः कीर्ति मूर्ति साम्यादिव स्वयम् ।
संलब्ध स्तब्ध भावेन दध्ना मञ्जन मारभे ॥

(९) पिष्टैश्च कल्क चूर्णैश्य गंध द्रव्य समुद्भवैः ।
जिनाङ्ग संगता ज्यादि स्नेहपूनं करोम्यहम् ॥

(१०) क्षीरभूरुह सञ्जातत्व त्वक्कसाय जलैरहम् ।
मञ्जातमल विच्छित्यै मञ्जनं विदधे विभोः ॥

(११) संसिध्ध शुध्धया परिहार शुध्धया
कर्पूर सम्मिश्रिन चन्दनेव ।
जिनेन्द्र देवासुर पुज्यवृष्टिं
विलेपन चारु करोमि भक्त्या ॥

(ब) श्रुतस्कंध–यंत्र स्नपनम्

(१) केवल ज्ञान जन्मानं गणेन्द्र कथितः लिपीं ।
सूरिभिः स्थापितां जैनीं वाचं सिञ्चे वराम्बुभिः ।।

(२) सद्यः पीलित पुण्ड्रेक्षु प्रकाण्ड रसधारया ।
जैनीं समरसं लिप्सु रभिषिञ्चामि भारतीम् ।।

(३) निष्टप्त नासिका पेय तरतभमभि सर्पिसा ।
स्नापयामि जगल्लक्ष्मी स्नेहिन्नीं भगवत गिरम् ।।

(४) रसायवेन पीयूस स्पर्धिना भिसुणोम्यहम् ।
गोक्षीरेण सवर्णेन जिनवाणीं स्वसिद्धये ।।

एसे ही दधि, चतुकुंम, गंन्धोदकादि के श्लोक दिये है और अंत में इनका उत्तम फल क्या मिलता है वह कहा है –

(स) गुरु गणधर पादुका स्नपनम्

इसमें जल, इक्षुरस, घृत, दुग्ध स्नपन के श्लोक है बाद में और निम्न प्रकार के तीन श्लोक है -

(१) जगतां मङ्गलस्योच्चै मंङ्गलाय गणेशिनः ।
मङ्गलौ मङ्गलेनांहो दहना संस्नापयोम्यतम् ।।

(२) सुवण कुम्भ मुखोदत्रीर्णः सौरम्य व्याप्त दिङमुखैः ।
तर्थोदकै गंणेन्द्रस्ये क्रमावाप्लावयेडञ्जसर ।।

(३) जगत्तापहरणोच्चैः सौर भ्याकुलितालिना ।
प्रीत्ता गन्धोदकेनाह मुक्षामि गणिनां क्रमौ ।।

(द) रत्नत्रय स्नपनम्

इस मंत्र का अभिषेक सात द्रव्यों से करने के लिये अलग अलग श्लोक दिये है उसमें से यहां नमूना के तौर पर तीन मात्र दिये जाते है।

(१) तीर्थेन तीर्थँ शुचि निर्मलेन प्रह्लादने ह्लादनदुर्मदेन ।
स्वात्मानमानन्दरसेन सेवतुं सिञ्चामि रत्न त्र मंभसाहम् ।।

(२) असक्तमध्यात्मदृशां समश्री चलापांगरसं पिपासु: ।
रत्नत्रयं तत्क्षणपीलि तेक्षुरशौधाराभिरहं सुनोभि ।।

(३) धर्मामरोर्वीरुहरोहणेन दयारसेनार्द्रयितुं स्वचेत: ।
धारोस्णगोक्षीरमरेण भक्त्या रत्नत्रंयस्य स्नैपनं करोमि।।

(य) सिद्ध प्रतिमा स्नपनम्

इसमें भी मात्र तीन श्लोक नमूने के दिये जाते है

[१] खर्जूराम्रादिजातेन रसेन मलहारिणा ।
स्वभावपदमापन्नं सिव्वं सं स्नापयाम्यतम् ।।

[२] दाहोत्तीर्णं स्वर्णाभाकारया घृत धारया ।
स्वभावपदमापन्नं सिध्द संस्नापयाम्यतम् ।।

[३] कंकोलादि महाप्रप्यै: प्ला आदिक्याय संयुतै: ।
स्वभाव पदमापन्नं सिध्दं संस्नापयाम्यहम् ।।

(र) सिद्धचक्र मंत्र स्नपनम्

इसमें भी नमूना के तीन श्लोक और गंन्धोदक वन्दम् का एक एसे चार दिये जाते है

[१] शुभैः स्निग्धैवरक्षीरैः शुक्रध्यानोज्वलैः परैः ।
स्वशुध्यात्मपदारुढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥

[२] लवङ्गगंगसुकपूंरचूर्णैः पूर्णै सुगन्धिभिः ।
स्वक्षुधात्मपदारुढं स्नापयाम्यजमुत्तमम् ॥

[३] चतुर्वर्गैरिवोम्द्भूतै श्चतुष्क कलशामृतै ।
शुध्यात्म पदारूठं स्नापयाम्यज मुत्तमम् ॥

[४] य दङ्ग संगितो येन याति पापं नृणां क्षणात् ।
त दर्थये निजे मू र्ध्न्यवतिसति कथं मम ॥

(ल) कलीकुण्डयन्त्रा भीषेक :

पुस्तक के ३५६ से ३५८ पन्ने पर स्थापना करके अभिषेक के दस श्लोक छपे है उसमें से मात्र तीन यहाँ नमूना के दिये जाते है -

(१) ये चोचमोचादिसदिक्षुजा ये प्राक्षारसालादि फलोभ्दवाये ।
एभी रसैः स्वैरमृतोपमानैर्भकत्या भिषिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम्॥

(२) कुन्दावदातोत्पल सिन्धुवार चंद्रांशुमालाद्रवमाहसर्द्भिः ।
गव्यैःपयोभिःकिमु माहिषैश्च भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम्

(३) नीरैररमीभि वियदाय गाद्यानीतैर्हिमा ...सोदिभृतालिवर्गैः ।
आयूरितैः कोणघटैश्चतुर्भि भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयंत्रम्॥

पाठक ! इन प्राचीन संस्कृत पद्योसे आप स्वयं अपना यकीन सही कर सकते है और अपने परिवार तथा मित्रों के भी करा सकते है

इसमें ही सच्ची ऋजुता और गुणग्राहिता है और जिनवाणी का आदर है।

यत्र तत्र से

(चुलिका)

तीर्थंकर

लोपै दुरित हरै दुःख सँकट आपै रोगरहि तनितदेह
पुण्य भंडार भरै जस प्रगटे मुक्ति पंथ सौं करे सनेह
रचे सुहाग देव शाभो जग पर भव पहुचावै सुरगहे
कुगनिवंध दलमलहि 'वनारसि' वीनटाग पूजाफलतहे

जिन पूजा फल

देवलोक ताकोधर आंगन, राजरिध्घ सेवे तसुपाय
ताकेतन सौभाग आदिगुन केलिविलास कटैनित आय
सौं नर तुरंततरै भवसागर, निर्मलहोय मोक्षपद पाय
द्रव्यभाव विधिसहित वनारसि जो जनवट पूर्जमनलाय

पूजा का फल

हर दुःख का इलाज पूजा है पूजा ही करने दो
वच्चे को अच्छा करना तो पूजा ही करने दो
प्रभु समान कौन है जग में भेटें जो बाधायें
प्रभु पूजा से ही पुरी हो सकती सब आशायें

—हजारीमल काका

पूजा प्रभाव

ज्यों नर रहै रिसाय कोपकर,त्यों चिनाभय त्रिमुख वलपान
ज्यों कायर शंकै रिपुदेखत,त्यों दारिद्र भाजै भयमान
ज्यों कुनारि परिहरं खंडपनि, त्यों दुर्गति छंडै पहिचान
रितु ज्यों विभौ तजेनहि संगत,सो सव जिनपूजा फलजान

जिन पूजा महिमा

जो जिनेन्द्र पूजे फुल्लनि सौ, सुरनि नैन पूजा तसुहोय
वंदै भाव सरित जो जिनवर, वन्दीक त्रिभुवन में सांय
जो जिन सुजस कटै जनताकी,महिमा इन्द्र करे सुरलोक
जो जिन ध्यान करहि(वनारसि)ध्यावहि मुनिताके गुणजांय

—सोमप्रभाचार्य—सुक्ति मुक्तावलि
से सन् ५५५ ई.स. (यशसिलकयंपु)

पूजा जैसा पुन्य जगत में 'सरस' न समजो हुआ
मुक्ति पथ की ओर कदम रखवाती पहेले पूजा
यों तो देव अनेकों उनकी अलग रहे पूजा
वीतराग को पूजे जो एक दिन हो उसकी भी पूजा

—शर्मनलाल 'सरस'

अतिरेक का अंके दष्टांत

एक बार भादों में दशलक्षण पर्व जयपुर में व्यतीत करने का अवसर मिला था। अनंत चौदस के दिन हम अकस्मात् अभि-

ऐक दर्शनार्थ ऐसे मंदिरजी में चले गये, जहाँ जिन भगवान पर जल की धारा भी नहीं की जाती थी, वहाँ थाली में ही जल की धारा छोडी जाती थी, घंटा बजता था, और मनमें यह संकल्प होता था कि हम भगवान का ही अभिषेक कर रहे है। उस जल को गंधोदक मानकर ग्रहण किया जाता था, जिसका जिनेन्द्रदेव के शरीर से स्पर्श तक नहीं हुआ था। मैंने लोगों से पूछा—कि यह क्या बात है, तब बताया गया, कि गुमानपंथी भाइयों का यह मंदिर है। यहाँ भगवान् का अभिषेक नहीं करते हैं। इस पंथ के स्थापक पं. टोडरमलजी के छोटे पुत्र गुमानीरामजी थे।

इन लोगों का तर्क है,केवली भगवान का अभिषेक नहीं होता है अतः अभि क करना योग्य नहीं है। संभव है, उस समय संपूर्ण महत्वपूर्ण ग्रंथों पर लोगों का ध्यान नहीं गया होगा। अभिषेक जिन का होता है, केवली भगवान का अभिषेक वहां होता है। दुसरी बात यह भी है कि इस विषय में आगम को देखा जाय तो ज्ञात होगा, कि जिनका जल, घी, दूध दही तथा रसके द्वारा अभिषेक करना गृहस्थ का कर्तव्य कर्म है, बाहुबली भगवान का श्रवण बेल गोला में जो अभिषेक घी, दूध, दही आदि से होता है, वही आगमोक्त पद्धति है। प्रायः सभी प्रसिद्ध-ग्रंथों में पूजा के पूर्व में किये जाने वाले अभिषेक का यही स्वरुप कहा गया है।

मोक्षभिलासी व्यक्ति का कर्तव्य है कि आगम के अनुसार प्रवृति करें। आगम सर्वज्ञ भगवान की वाणी है।—

[चारित्र चक्रवर्ती पृ० २३४-५—ले:-पं. सुमेरचन्द्रजी दवाकर]

तेरापंथ की तेरह बातें

(नीमच से प्रकाशित "तेरापंथी को रासो" से)

तव तेरा वातां तहां, प्रथम उथायी सार
जिन मतकी सरधातजी मिथ्या मत विस्तार ।।

दश दिगपाल उथापि गुरु चरण नहीं लागे
केसरी जिनपद नाहीं पुष्प से पूजा त्यागे ।।

दीपक अस्या छांडि आसिका माल न करि हैं
जिन मस्तक नहीं न्हाव न राति पूजा पार लडि हैं ।।

जिन शासन देवी तजी राँध्यो अन्न चटोडे नहीं
फल न चढावे पातकी वैठिन पूज करे नहीं ।।

ऐ तेरेह उर धारि पंथ तेरह निर माप्यते
समकिन सरधा छांडि दोजते मत उथात्य।

चुनकी वात छिपाय आपम नमत सिखल
भोला वालक जीव ताहि सांची दिखलावे

किन पूछी किस शास्त्रतें कहीं वात तुम जोर
ताके उत्तर देने को दियो तहं तव रोय ।।

महिलाओं को अभिषेक का अधिकार

पूजा अभिषेक पूर्वक होती है। इसमें सबसे ज्यादा ठोस प्रमाण है धवला ग्रंथ का। स्त्री लोग के लिये दैनिक सटकर्म का कोई अलग गीनती नहीं है। इसलिये यदि वह पूजा कर सकती है तो निःसंदेह वह अभिषेक करने की भी अधिकारिणी हैं।

जितने अभिषेक पाठ, प्रतिष्ठा पाठ और चरणानु योग के ग्रंथ है इन सभी में स्त्री अभिषेक का विधेय ही बताया हो हेय नहीं। ये विधेय दर्शाने वाले ग्रंथ १००।२०० या ४०० वर्ष पुराने नहीं किन्तु १०००।१५००।२००० वर्ष या इसके पहले के प्राचीन है। और महा व्रत धारी आर्समार्गी ऋसि-आचार्यादि प्रणीत है। पुराणों में जो दृष्टांत आते है वे सब चाथे काल के ही। कई तो भवांतरो के भी है। तोभी ऐसे पुराने दृष्टांतो का न मानना अपनी ढोल की वजाना ही है।

—"जैन दर्शन में उपासना" से

इतिहास के आलोक में

मंदिर तोडे जा रहे थे । एवं मूर्तियाँ खंडित की जा रही थी तब प्राय सभी धर्मों में मूर्ति पूजा विरोधी संप्रदाय उठ खडे हुये थे। १५ वीं, १६ वीं शदी में लोंका शाह ने एसा उपदेश का प्रारंभ किया । इसमें से १८ वीं शदी में आचार्य भिक्षु द्वारा तेरह पंथी की स्थापना हुई ।

दिगम्बरों में भी १६ वी शदी में तारणस्वामी ने एसे ही पंथ की स्थापना की थी । १६ वीं शती में पं. बनारसो दास ने जिस शुद्धाम्नाय का प्रचार किया और जिसे विक्रम सं. की १९ वी शदी में पं. टोडरमल ने प्रौढता प्रदान की वह इन भट्टारकों के विरोध में ही था । १७५७ में बनारसी मत खंडन लिखा गया । धार्मिक शिथिलता और बहारी आडंबर के विरुद्ध यह सफल क्रांति अध्यात्म पंथ (तेरापंथ) के नाम से जानी जाती है आगरा के बाद कामामें और सांगानेर में यह पंथ का प्रचार हुआ अमरचंद भौंसा तथा जोधराम गोदी का इसमें प्रमुख थे । गुमानपंथ के नाम से यह प्रसिद्ध बना । पं. बखतराम, पं. पन्नालाल और चन्द्र कवि आदि इतर पक्ष के कर्णधार थे । मिथ्यात्वखंडन, तेरहपंथखंडन आदि रचनायें भी प्रगट हुइ ।

आज १९ वीं शदी में मूर्ति का अभिषेक का नहीं किन्तु मूर्तिका भी विरोध-निसेधपरक पुस्तिकाये प्रगट हो चूकी है । समय की बलिहारी है । संसार में भातभात के लोग थे और रहेंगे ।

सर्वोपरी, शिरोधार्य जिनाज्ञा

[१] जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्सूत्त लेस देक्षणयं ।
आणा भंगे पावंता जिसमय दुकरं धम्मं ॥११॥

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला की यह गाथा है इसका अर्थ है कि जिन आज्ञा का उल्लघंन करके उन्मार्ग रूप उत्सूत्र का जो अंश-मात्र भी उपदेश देता है वह जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का भंग करता है। जिन आज्ञा का भंग करने में ऐसा पाप है कि उनके लिये जिनधर्म प्राय होना अति कठिन हो जाता हैं। मान कसाय के वशीभूत होकर जिन आज्ञा विरुद्ध एक अक्षर भी कहेगा तो ऐसा पाप से लिप्त होगा कि वह जीव निगोद में जायगा।

[२] धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धांन्तार्थ विप्लवे ।
अपृष्टैरपिवक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने ॥

जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बगडती हो, तथा समीचीन सिद्धांत का लोप होता हो, उस जगह समीचीन धर्मक्रिया और सिद्धांत के प्रकाशनार्थ विना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिये। क्योंकि वह सत्पुरुषों का कार्य है।

गीतार्थ आचार्यों के अनुभव वचन

[१] अण्णस्स अप्पणो वा विधम्मिए विद्‍वंतए कज्जे ।
ज अ पुच्छिज्जंतो अण्णेहिय पुच्छिओजंय ॥८३६
स्वकीये परकाययेवा धर्मकृत्ये विनश्यति ।
त्वम पृष्टो वदान्यत्र पृष्ट एवं सदावद ॥८४५॥

अर्थ :- सदैव किसी के द्वारा पूछे जाने पर ही बोलना चाहिये किन्तु धर्म का नाश होता हो, स्वतः का अथवा परके घात का प्रसंग उपस्थित हुआ तो ऐसे समय में धर्म, प्राण के रक्षणार्थ विना पूछे ही बोलना चाहिये ॥८३६॥

—मूल आराधना=भगवती आरधना पृष्ठ ४१० से

(२) पदमक्खरं चाल एक्कं पिजोण रोचेदि सुत्तणिदिठ्ठं ।
सेसं रचंतो विहु मिच्छाठ्ठिी मुणेयव्वो ॥३९॥

जो जीव समस्त सूत्र निदिष्ट वाङ्मय का श्रध्धान करता है किन्तु एक अक्षर या पद का श्रध्धान नहीं करता वह समस्त श्रुत की रुची करता हुआ भी मिथ्या दृष्टि है —मूल आराधना

आत्मा को अश्रध्धान का एक कण भी दुषित कर देता है)

(३) गणधरादि कथित सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा भले प्रकार समजाने पर भी यदि वह जीव उस पदार्थ का समीचीन श्रध्धान न कहे तो वह जीव उसकी काल से मिथ्यादृष्टि हो जात है

—गोमटसार-जीवकांड गाथा २८ (पृष्ट २३)

दो वक्तव्य

[अ] तेरापंथी । बीसपंथी, श्वेताम्बर, दिगम्बर दो शब्द है। जब भक्ति, आराधना परमार्थ है लडाई शब्द पर हो सकती है किन्तु अर्थ या लक्ष पर उसके लिये कोई गुंजायश नहीं है।

[ब] भक्ति, पूजा, स्तुति, स्तवन, आराधना के कई प्रकार हो सकते है। मीरां का, चैतन्य का, कबीर का, नानक का, प्रहलाद का, रावण का, नरसिंह का, धनंजय का, मानतुंग का, भक्तिमार्ग अलग-अलग होते हुऐ सभी का गंतव्य एक है। लक्ष समान है। एकाएक से ही और दुसरे को अठीक कहेना बडा साहस है।

एक अभिप्राय

(प्रेषक :- तेजकुमार सोनी-कोटा)

(१) बीसपंथी शब्द ठीक नहीं है। आगमपंथी कहें
(२) तेरापंथ ने पुजन-अभिषेक में आरंभ कम करने के बहाने प्रमाद-आलस्य को राह कर दी।
(३) जो साधु का कर्तव्य नहीं है तो भी पक्ष व्यामोह के वश कई साधु अपने जन्मजात तेरा या बीस पंथ का पोषण-समर्थन करते है वह ठीक नहीं है।

(४) यज्ञोपवीतका प्रचलन नहीं है वह जिनाज्ञा का उत्थापन है
(५) श्रावक में श्राविका गर्भित है इसलिये स्त्री को अभिषेक-पुजन से रोकना आपमार्ग नहीं है।
(६) भगवान के चरणों में चंदन चर्चना शास्त्र विहित है। पूजा का अंग ही। श्वेताम्बर नवअंगी पूजा बनाते है। करते है तो इसमें पुण्य होगा कि पाप–यह विचारणीय है।
(७) शुद्ध प्रासुक द्रव्यादिका प्रयोग करना आचार्यों का आदेश है।
(८) पं. मख्खनलालजी ने आगम प्रकाशक शास्त्र में जो मत दिये उनका प्रचार करना चाहिये।

एक मुलाकात

ऋषभदेव में आचार्य संभव सागरजी का चातुर्मास चलता है। उनके दर्शनार्थ गया तब इस पुस्तक बात नोकली पू० महाराज ने इसमें रस आया तो जो प्रश्नोत्तर हुए वह नीचे दिया जाता है।

ब्र० कपिलभाईः—महाराजजी, आपके गुरु पू० महावीर कीर्ति महाराज और धर्म दिवाकर आ० विमल सागरजी तो जन्म जात तेरापंथी होते हुए वे वीसपंथी आम्नाय के समर्थक क्यो हो गये थे ?

आ० संभव सागरजी:–वे दोनो आगम पंथी साधु थे।इसलिये जो शास्त्रों प्राचीन आचार्यों ने लिखा उसको उन्होंने सही

माना और ऐसी श्रद्धा बनवाई और आचरण और प्रचार भी आर्समार्ग का ही किया क्योंकि आगम का एक अक्षर को भी न मानना मिथ्यात्व का द्योतक है।

प्र०कः—महाराजजी तेरापंथी भाई श्रीफल, केले, अनार आदि फल चढ़ाने का क्यों निषेध करते हैं ?

आ०सं:—उनकी मान्यता गलत है इसके लिये में दो आर्स प्रमाण देता हूं। एकता है त्रिलोक पण्णत्ति को गाथा ८४ जिसमें इन्द्र श्रीजी को श्रीफल चढाते हैं ऐसा लिखा है और दुसरा प्रमाण है श्रीमत् रायचंद्र ग्रंथ माला संपादित पुरुसार्थ सिद्ध पाय के पन्ना ६५ पर केशव वर्णीकृत गोम्मटसार टीका में सत्यवचन के भेदों में कही हुई वात—सुक्क पक्क तत्त ...... फासुयं भणिया। इस द्रव्य में प्रासुक द्रव्य का वर्णन है। माने जो सुखा और पक्का है वे सब प्रासुक है इसलिये पूजन में इस्तेमाल किया जाता है। पक्के फल फूल सब प्रासुक है इसलिये उसमें दोस नहीं हैं। और वनस्पति भी जल के समान एकेन्द्रिय ही है और श्रावक का स्थावर घातक नियम नहीं है। वह सावधानी से भक्ति में उसका उपयोग करेगा तो पुण्य भागी होगा ऐसा समर्थ आ० संमतभद्र स्वामी ने सद्गृह में त्रिस कणिका का दृष्टांत द्वारा सिद्ध किया है।

प्र०कः—महाराज इसमें हिंसा का दोस नहीं लगेगा ?

आ०सं:—इसके समाधान के लिये पुरुसार्थ सिद्धयाय-ग्रंथ की गाथा ४८ आदि उपयोगी हैं। आचार्य अमृतचंद्र सूरि ने भाव

और प्रमाद से किये गये कार्यों को ही हिंसा मानी है। जहाँ साव-धानी पूर्वक किया है वहाँ दोस नहीं है।

व०क:—दीप जलाने का पाप के वारे में आपका क्या मत है !

आ०सं:—अग्नि भी एकेन्द्रिय है। गृहस्थ संकल्प हिंसा का त्यागी है। आरंभी हिंसा वह प्रमाद रहित होकर कर सकता है। अपने घर पर दिवारोत्सवमें हजारों दीप जलाने वाला गृहस्थ भगवान को एक दीप चढाने में पाप समजता है वह अपनी मूर्खता प्रदर्शन है। भक्ति तो पुण्योत्पादक है और संसार के सभी कार्य पाप के कारण है।

व०क:—इस विसय में आप और कुछ वतायेगें ?

जयधवलाकार आचार्य वीरसने अपने पुस्तक की गाथा ५५ वगरे द्वारा पन्ने १०० पर प्रश्नकार का अच्छा तर्क संमान समाधान किया है कि शील व्रत पालने में उपवास करने में, दान देने में, अभिपेक करने में पूल फल चढाने में आरंभका दोस है इसलिये तीर्थंकर को ऐसा उपदेश देने में पाप लगता है। उत्तर में आचार्य के वताया कि वहाँ मिथ्यात्व, असंयम और कसाय नहोंने के कारण उपदेशकर्ता तीर्थंकर को कोई आश्रव होता नहीं जिससे कर्मवंध हो। श्रावक को उपदेश दिया कि त्रस जीवों को वचावो इसका अर्थ स्थावर को मारना ऐसा नहीं होता है।

पूजा पाठ का एक नमूना

(१) भव भव भोगे भोग अनेको, फिर भी भोग न पाये
भोग रोग के नाश करन को, सुमन सुगंधित लाये
(२) केवल भोजन के खातिर ही, लाखों जनम गंवाये
अब यह भूख मिटाने स्वामी, उत्तम व्यंजन लाये
(३) मोह और मिथ्यात्व तिमिर ने भव भव में भटकायो
अंर्तज्योति जलाने स्वामी दीपक लेकर आयो

इसमें पुष्प, नैवेद्य और दीप ही लिखा है। अन्य कोई पूजा पाठ में पीले चावल, खोपरा की चटक और केसरी चटक का नाम मिलता नहीं है तो फिर फिजुल हठाग्रह क्यों ?

देहरा-तिजारा चंन्द्राप्रभु पूजन —हजारीलाल 'काका' (१८९९)

सर्मथन शास्त्रों की नामावली

१. श्री नेमिचंद आचार्य प्रतिष्ठा तिलक
२. आशाधरजी कृत पंच परमेष्ठी पूजा
३. श्री वल सूरि प्रतिष्ठा पाठ
४. पूज्यपाद आचार्य कृत साडेश कारण भावना पूजा
आशाधरजी प्रतिष्ठा पाठ दुसरा अध्याय
विद्यानुवादांग प्रतिष्ठा पाठ
...र कलंक संहिता
...ल भूषण विरचित उपदेश रत्नमाला

ग्रं
ध

पुण्यान्दव पुराण कथा

१०. वल सुरि कृत - गोमटस्वामी - पूजा
११. पठ पुराण - पर्व
१२. देव सेनाचार्य - भाव संग्रह
१३. कुंद कुंदाचार्य
१४. पूज्यपाद - महाभिषेक
१५. गुणभद्राचार्य - वृहद् स्नपन
१६. सोम देवाचार्य
१७. वसुनंदी श्रावका चार : पृष्ठ३५७
१८. पद्मनंदी पंच्चीसीति
१९. श्री वसुनंदी जिन संहिता
२०. सट्कर्मोपदेश रत्न माला
२१. आदिपुराण (आराधना कथा कोस)
२२. आराधना कथा कोस
२३. श्री जिनयाजकल्प प्रतिष्ठा शास्त्र
२४. श्रीपाल चरित्र
२५. भैया भगवतीदास कृत ब्रह्म विलास आदि-आदि

शुभं भवतु ——